आचार्य हेमचन्द्र

लेखक
डॉ. वि. भा. मुसलगांवकर

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एक मत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी गयी शिक्षा छात्रो के सर्वांगीण विकास एव मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि मे अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही *स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एव महात्मा गाधी* जैसे देशमान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-सस्थाएँ स्थापित की। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी देश मे शिक्षा सम्बन्धी जो कमीशन या समितियां नियुक्त की गयी, उन्होंने एक मत से इस सिद्धान्त का अनुमोदन किया।

इस दिशा मे सबसे बडी बाधा थी— श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थो का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीकी, अपितु मानविकी के क्षेत्र मे भी विश्व मे इतनी तीव्रता से नये अनुसन्धानो और चिन्तनो का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले अचलो के पिछड जाने की आशका है। भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओ मे विश्वविद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की यह योजना उसके शत प्रतिशत अनुदान से राज्य अकादमियो द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्यप्रदेश मे हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तको के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं मे बिखरे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापको एव विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा

शास्त्री एव शिक्षाप्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे। प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने म हमें सहयोग प्रदान करें, जिससे बिना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण का माध्यम हिन्दी बन सके।

जगदीश नारायण अवस्थी
शिक्षामन्त्री,
अध्यक्ष :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन, साहित्य और साधना के क्षेत्र मे आचार्य हेमचन्द्र का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे न केवल महान् गुरु, समाज-सुधारक एव धर्माचार्य ही थे, अपितु अद्भुत प्रतिभा एव सर्जन क्षमता से सम्पन्न मनीषी भी थे। जहां एक ओर उन्होंने गुजरात के इतिहास को प्रभावित किया, जैन धर्म को एक नया मोड दिया एव राज्य को प्रेरित कर समस्त गुर्जरभूमि को अहिंसामय बना दिया, वहाँ उन्होने साहित्य, दर्शन, योग, व्याकरण, छन्द-शास्त्र, काव्य-शास्त्र, अभिधान कोश आदि वाङ्मय के सभी महत्वपूर्ण अङ्गो पर नवीन साहित्य की सृष्टि कर, इस दिशा मे भी एक नये पथ को आलोकित किया। जैन आचार्यों और ग्रन्थकारो मे वे मूर्धन्य हैं। सस्कृत और प्राकृत दोनो पर उनका समान अधिकार था। लोग उन्हे 'कलिकालसर्वज्ञ' के नाम से पुकारते थे। महाराज भोज के नाम से प्रख्यात सारी रचनाएँ यदि उन्ही की हो, तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भोज को छोडकर अन्य कोई भी रचनाकार इतने अधिक विषयो मे ऐसे सुपुष्ट ग्रन्थो का निर्माण नही कर सका। और भोज का सम्पूर्ण साहित्य केवल सस्कृत मे है।

आचार्य हेमचन्द्र का जीवन, रचना-काल, कृतियाँ तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ, सौभाग्यवश, विवाद का विषय नही है। जैन इतिहास ने उन्हें सम्हाल कर, सँजोकर रखा है। उनके अनेक ग्रन्थों के सुसम्पादित सस्करण निकल चुके हैं। कई विश्वविद्यालयो मे उन पर शोध कार्य हुआ है। हेमचन्द्र के "काव्यानुशासन" ने उन्हे उच्चकोटि के काव्यशास्त्रकारो की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है। उन्होने यदि पूर्वाचार्यों से बहुत कुछ लिया, तो परवर्ती विचारको को चिन्तन के लिए विपुल सामग्री भी प्रदान की। इसलिए यह आवश्यक था कि अकादमी उन्हें सस्कृत काव्याचार्यों की श्रेणी मे उचित स्थान दे। प्रस्तुत ग्रन्थ

इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। इसके प्रणेता डॉ० वी० बी० मुसलगाँवकर राज्य के सुपरिचित विद्वान हैं। आचार्य हेमचन्द्र उनके अध्ययन के प्रमुख विषय रहे हैं। मेरा विश्वास है कि डॉ० मुसलगाँवकर की यह कृति भारतीय काव्य-शास्त्र के विद्यार्थियों की आचार्य-हेमचन्द्र-विषयक जिज्ञासा की पूर्ति करने में सहायक सिद्ध होगी।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री
संचालक :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

विषय सूची

पृष्ठ

प्राक्कथन अ–ब

प्रस्तावना स–द

अध्याय : १

जीवन-वृत्त तथा रचनाएं १–४५

अध्याय : २

हेमचन्द्र के धाम्य-ग्रन्थ ४६–८२

अध्याय : ३

व्याकरण ग्रन्थ

हेमचन्द्र की व्याकरण रचनाएँ ८३–१०२

अध्याय : ४

अलङ्कार ग्रन्थ

हेमचन्द्र के अलङ्कार-ग्रन्थ–

'काव्यानुशासन' का विवेचन– १०३–११८

अध्याय : ५

योग-ग्रन्थ ११९–१३९

अध्याय : ६
दार्शनिक एवं धार्मिक-ग्रन्थ १४०—१६८

अध्याय : ७
उपसंहार
भारतीय साहित्य को हेमचन्द्र की देन
आचार्य हेमचन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा १६६—१६८
हेमप्रशस्तिः १६६—२००
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची २०१—२०७

चित्र-सूची

१. आचार्य हेमचन्द्र
(वि. स. १२६४ की ताड़पत्र-प्रति के आधार पर)
२. आचार्य हेमचन्द्र से सम्बन्धित विशिष्ठ स्थान

आचार्य हेमचन्द्र

आचार्य हेमचन्द्र

[वि. स. १२६४ की ताडपत्र-प्रति के आधार पर]

अध्याय : १

जीवन-वृत्त तथा रचनाएँ

गुजरात की महती परम्परा

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्री मदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥[१]

भगवान् कृष्ण 'विभूतियोग' नामक अध्याय में संक्षेप से अपनी योग शक्ति का वर्णन करते हुए अर्जुन से कहते हैं —"जो जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और प्रभावयुक्त वस्तु है, उस उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान" । आचार्य हेमचन्द्र के जीवन-चरित्र का अध्ययन करने से उपर्युक्त बात सत्य सिद्ध होती है । यद्यपि परिस्थिति मनुष्य का निर्माण करती है, फिर भी अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होते ही महापुरुष जन्म ग्रहण करते हैं–यह बात भी सदैव अनुभव में आती है । सांस्कृतिक दृष्टि से गुजरात–प्रदेश प्रारम्भ में ही अग्रगामी रहा है । भगवान कृष्ण ने द्वापरयुग में वहाँ द्वारका की स्थापना कर उस प्रदेश को विशेष गौरव प्रदान किया था । इसके पश्चात् पौराणिक काल में भी गुजरात सभ्यता एवं विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का गढ रहा है । श्री क० मा० मुन्शी के अनुसार द्वितीय शताब्दी के आरम्भ में ही श्री लाकुलिश के प्रभाव से गुजरात में शैव तथा पाशुपत सम्प्रदाय का बहुत प्रसार हुआ था[२] । ऐतिहासिक काल में भी गुजरात विद्या प्रचार का बड़ा केन्द्र रहा । वलभी का विश्वविद्यालय तो सुप्रसिद्ध है । चीनी यात्रियों ने भी

१–भगवद्गीता –अध्याय १०–४१

२–गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर इन्ट्रोडक्शन - पेज २१. के० एम० मुन्शी

अपने ग्रन्थो मे वलभी विश्वविद्यालय की भूरि-भूरि प्रशसा की है। सुप्रसिद्ध "भट्टिकाव्य" जो हेमचन्द्र के द्वयाश्रय काव्य का आदर्श रहा है —वलभी मे ही रचा गया था। एकमात्र महाकाव्य की रचना कर अमर होने वाले महाकवि माघ ने इसी भू–भाग को अलङ्कृत किया था। कथा सरित्सागर मे भी वलभी की प्रशंसा पायी जाती है[१]। श्रीमाल भी जैन विद्या का बडा केन्द्र था। सिद्धर्षि ने "उपमितिभवप्रपञ्च कथा" वि० स० ९६२ ज्येष्ठ शुक्ल ५ गुरुवार, पुनर्वसु नक्षत्र में समाप्त की[२]। यह भी गुजरात की प्राचीन राजधानी श्रीमाल मे रची गई थी। हरिभद्र-सूरि ने श्रीमाल मे 'षड्दर्शनसमुच्चय' और अन्य बहुत से महत्वपूर्ण जैन ग्रन्थो की रचना की। इनका समय आठवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। आचार्य हेमचन्द्र भी इसी परंपरा के साधको और आचार्यों की श्रेणी मे आते हैं।

श्वेताम्बर जैन परम्परा के अनुसार देवधिगणि क्षमाश्रमण ने वर्तमान जैन संप्रदाय का निर्माण किया। उन्होने भगवान् महावीर के निर्वाण के लगभग ९८० वर्ष बाद अर्थात् ४५४ ई० में विद्या तथा धर्म के केन्द्र वलभी नगर मे जैन सम्प्रदाय को वर्तमान रूप दिया। जैन सम्प्रदाय के सभी प्रमुख विद्वान् वहाँ सभा मे उपस्थित थे तथा पर्याप्त चर्चा एव विचारविनिमय के अनन्तर जैन सम्प्रदाय को अधिकृत रूप प्राप्त हुआ। इसी मुनि-सम्मेलन मे आगम ग्रन्थो को सुसम्पादित किया गया। इस सम्मेलन मे कोई ४५–४६ ग्रन्थो का सकलन हुआ और ये आज तक सुप्रचलित हैं। अत. जैन सम्प्रदाय की दृष्टि से भी वलभी नगर एव गुजरात क्षेत्र का विशेष महत्व है[३]।

आनन्दपुर (आधुनिक वडनगर) १०वी शताब्दी तक विद्या का केन्द्र बना रहा, ऐसा क० मा० मुन्शी का मत है। अणहिलवाड़ का चालुक्य राजकुल मूलराज सोलकी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। गुजरात अनुवृत्त से विदित है कि मूलराज का पिता कन्नौज में राजा था तथा उसकी माता चावडा राजकुल की कन्या थी। अभिलेखो मे भी उसके पिता को महाराजाधिराज लिखा गया है। उसने अपने मामा को मारकर चावडा की गद्दी हथिया ली। साम्भर के

१–स विष्णुदत्तो वयसा पूर्णषोडशवत्सर.।
गन्तु प्रववृते विद्या–प्राप्तये वलभी पुरीम्॥ कथा सरित्सागर –तरंग ३२।
२–प्रभावक चरित–सिद्धर्षि प्रबन्ध।
३–प्राचीन भारत का इतिहास —डा० रमाशंकर त्रिपाठी।

अभिलेख मे उद्धृत तिथि के अनुसार यह घटना ई० ९४१ के आसपास घटी होगी। मूलराज की पूर्वतम ज्ञात तिथि यही है[1]। मूलराज ने कच्छ को जीता, सौराष्ट्र म गृहरिपु को बन्दी बनाया और लाट, शाकम्भरी तथा अनेक राजाओ से युद्ध किया।

मूलराज शिवभक्त था। उसने अनेक शिव मन्दिरो का निर्माण कराया। विद्वानों का आदर करना उसका व्यसन था। श्री क० मा० मुन्शी के अनुसार मूलराज ने सहस्रो ब्राह्मणो को सिद्धपुर मे बसने के लिये बुलाया था। स्वाभाविक ही है कि वे अपना साहित्य वहाँ ले आये और उन्होंने अपनी विद्वत्ता का यहाँ परमोत्कर्ष किया। ताम्रदान-पत्र मे विक्रम स० १०५१ अन्तिम तिथि मिलती है। मूलराज इस तिथि से एकाध वर्ष बाद मरा होगा। मूलराज ने 'त्रिपुरुष प्रासाद'' नामक शिव मदिर बनवाया। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार मूलराज ने "श्री मूलराज वसहिका" नामक जैन मन्दिर भी बनवाया। राजा ने ५५ वर्ष तक निष्कटक राज्य किया।

फिर चामुण्डराज ने १३ वर्ष तक तथा उसके पुत्र वल्लभराज ने ६ मास तक राज किया। पराक्रमी होने से उसे 'जगत् झपन' कहा जाता था। फिर उसका छोटा भाई दुर्लभराज ११ वर्ष तक राज्य करता रहा। यह भी ब्राह्मणो का तथा शिव का भक्त था। इसने 'दुर्लभ सर' नामक सरोवर बनवाया। फिर उसके भाई नागराज का लडका भीम राजा हुआ। दुर्लभराज ने धवल-गृह राज्य प्रासाद बनवाया, 'व्ययकरण हस्ति शाला' बनवाई। दुर्लभराज ने १२ वर्ष राज्य किया।

भीम (१०२१-६४ ई०) ने लगभग ४२ वर्ष राज्य किया। भीम ने कलचुरि लक्ष्मीकर्ण से सन्धि कर मालवा को हराया था। फिर भीम ने लक्ष्मीकर्ण को भी हराया। इसके राज्य म भी विद्या एव कला की उन्नति हुई। भीम के पुत्र कर्ण ने ई० सन् १०६४ से १०९४ तक लगभग ३० वर्ष राज्य किया। इसके राज्य पर परमारो न फिर विजय प्राप्त करली थी। कर्ण अपने पिता के समान ही महापराक्रमी थे। कर्ण ने अनेक निर्माण कार्य किये। उसने कर्णावती नाम का नगर बसाया जहा आज अहमदाबाद स्थित है। कर्ण ने अनेक

१ वैदिक सस्कृति का विकास —ले० तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी
महावीर निर्वाण ५२७ ई पू विक्रमकाल से ४७० वर्ष पूर्व।

मन्दिर बनवाये एव तालाब खुदवाये। इस प्रकार अणहिल्लपुरपाटन को सोलकियो ने धीरे-धीरे विकसित किया और यह नगरी श्रीमाल, वलभी तथा गिरिनगर की नगरश्री की उत्तराधिकारिणी हुई। इस उत्तराधिकार मे कान्य-कुब्ज, उज्जयिनी एव पाटलिपुत्र के भी सस्कार थे। इस अभ्युदय की पराकाष्ठा जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल के समय मे दिखाई दी और पौन शताब्दी से अधिक काल तक स्थिर रही। आचार्य हेमचन्द्र इस युग मे हुए थे। उन्हें इस सस्कार-समृद्धि का लाभ प्राप्त हुआ था। वे इस युग की महान कृति थे, किन्तु आगे चल कर वे युग-निर्माता बन गये।

१२ वी शताब्दी मे पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, वलभी, उज्जयिनी, काशी प्रभृति समृद्धशाली नगरो की उदात्त स्वर्णिम परम्परा मे गुजरात के अणहिलपुर ने भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने का प्रयास किया। आचार्य हेमचन्द्र को पाकर गुजरात अज्ञान, धार्मिक रूढियो एव अन्धविश्वासो से मुक्त हो, शोभा का समुद्र, गुणो का आकर, कीर्ति का कैलास एव धर्म का महान केन्द्र बन गया। शासको की कलाप्रियता ने नयनाभिराम स्थापत्यो का निर्माण कराया। इस प्रकार अनुकूल परिस्थिति' मे'कलिकाल-सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र सर्वजनहिताय एव सर्वोपदेशाय पृथ्वी पर अवतरित हुए।

भीमदेव प्रथम के समय मे शैवाचार्य ज्ञानभिक्षु और सुविहित जैन साधुओ को पाटन मे स्थान दिलाने वाले पुरोहित सोमेश्वर के दृष्टान्त प्रभावक चरित मे वर्णित है[1]। भीमदेव प्रथम और कर्णदेव के काल मे अणहिलपुरपाटन देश-विदेश के विख्यात विद्वानो के समागम और निवास का स्थान बन गया था, ऐसा प्रभावक् चरित के उल्लेखो से मालूम होता है। भीमदेव का सन्धि विग्रहिक 'विप्र डामर', जिसका हेमचन्द्र दामोदर के नाम से उल्लेख करते हैं, अपनी बुद्धिमत्ता के कारण प्रसिद्ध हुआ होगा, ऐसा जान पडता है। कर्ण के दरबार मे काश्मीरी कवि बिल्हण, जिन्होंने 'कर्णसुन्दरी नामक नाटक लिखा था (१०८०-९०), शैवाचार्य ज्ञानदेव, पुरोहित सोमेश्वर, सुराचार्य मध्यदेश के ब्राह्मण पण्डित श्रीधर और श्रीपति, जो आगे जाकर जिनेश्वर और बुद्धिसागर के नाम मे जैन साधुरूप मे प्रसिद्ध हुए, जयराशि भट्ट के तत्वोपप्लव की युक्तियो के बल से पाटन की सभा मे वाद करने वाला भृगुकच्छ(भडोच)का कौलकवि धर्म,

---

१ -प्रभावक् चरित (निर्णय सागर), पृष्ठ २०६ से ३४६।

तर्क-शास्त्र के प्रौढ अध्यापक जैनाचार्य शान्तिसूरि, जिनकी पाठशाला मे बौद्ध तर्क मे से उत्पन्न और समझने मे कठिन प्रमेयो की शिक्षा दी जाती थी और इस तर्कशाला के समर्थ छात्र मुनिचन्द्रसूरि इत्यादि पण्डित प्रख्यात थे। नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरि तथा बिल्हण ने कर्णदेव के राज्य मे पाटन को सुशोभित किया था। इस प्रकार सभी दृष्टियो से सम्पन्न समय मे, अनुकूल युग मे आचार्य हेमचन्द्र अवतरित हुए।

सस्कृत कवियो का जीवन चरित्र लिखना एक कठिन समस्या है। इन कवियो ने अपने विषय मे कुछ भी नही लिखा है। जिन्होने लिखा भी है, वह अत्यल्प है। सौभाग्य की बात है कि आचार्य हेमचन्द्र के विषय मे यत्र-तत्र पर्याप्त तथ्य उपलब्ध होते हैं। आचार्य के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध मे उनके स्वरचित ग्रन्थो मे कुछ सकेत उपलब्ध होते हैं। अपने युग के एक महापुरुष तथा प्रसिद्ध-धर्म प्रचारक होने के नाते समकालीन तथा परवर्ती लेखको ने भी उनकी जीवनी पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। धार्मिक ग्रन्थो मे भी उनके विषय मे यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। गुजरात के तत्कालीन प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिह एव कुमारपाल के धर्मोपदेशक होने के कारण भी ऐतिहासिक लेखको ने आचार्य हेमचन्द्र के जीवन चरित्र पर अपना अभिमत प्रकट किया है। श्री जिनविजय जी के मतानुसार भारत के किसी प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष के विषय मे जितनी प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है उसकी तुलना मे हेमचन्द्र विषयक सामग्री विपुलतर कही जा सकती है। फिर भी आचार्य श्री का जीवन चित्रित करने के लिये वह सर्वथा अपूर्ण है[1]। 'कुमारपाल प्रतिबोध' (वि० स० १२४१) के रचयिता श्री सोमप्रभसूरि तथा 'मोहराज पराजय' के रचयिता यशपाल, आचार्य हेमचन्द्र के लघुवयस्क समकालीन थे। अत 'मोहराज पराजय' एव 'कुमारपाल प्रतिबोध' को आचार्य की जीवन-कथा के लिये मुख्य आधार ग्रन्थ तथा दूसरे ग्रन्थो को पूरक मानना चाहिये।

(१) अन्तःसाक्ष्य के आधार पर जीवनी के सङ्केत —

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने स्वरचित ग्रन्थो मे कही-कही कुछ अपने विषय मे सङ्केत दिया है। अन्तःसाक्ष्य के अन्तर्गत मुख्यतया निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

१. द्व्याश्रयमहाकाव्य (सस्कृत तथा प्राकृत)

---

१ -प्रस्तावना-प्रमाणमीमांसा —जैन-सिन्धी ग्रन्थमाला।

२. सिद्धहेम शब्दानुशासन-प्रशस्ति
३. त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित के अन्तर्गत -महावीरचरितम्

यद्यपि केवल अन्त साक्ष्य के आधार पर उनका सुसम्बद्ध जीवन तो लिपिबद्ध नही हो सकता, किन्तु जीवन की घटनाओ पर तथा उनके विचारो पर अवश्य प्रकाश पडता है।

(२) बहि साक्ष्य की प्रामाणिकता और उसके आधार पर जीवनी के सङ्केत -

बहि साक्ष्य के अन्तर्गत आचार्य हेमचन्द्र के चरित्र विषयक निम्नाङ्कित ग्रन्थ आधार माने जाते हैं—

१.	शतार्थकाव्य]	श्री सोमप्रभसूरि	
२	कुमार-पाल प्रतिबोध]	लघुवयस्क समकालीन	वि. स १२४१
३	मोहराज पराजय	मन्त्री यशपाल	वि. स. १२२८ से १२३२
४	पुरातन प्रबन्धसग्रह	अज्ञात	----
५	प्रभावक् चरित	श्री प्रभाचन्द्रसूरि	वि. स. १३३४
६	प्रबन्धचिन्तामणि	श्री मेरुतुङ्गाचार्य	वि. स. १३६१
७	प्रबन्धकोश	श्री राजशेखरसूरि	वि. स. १४०५
८	कुमारपाल प्रबन्ध	श्री उपाध्याय जिनमण्डन	वि. स. १३६२
६	कुमारपाल प्रबोध प्रबन्ध]	श्री जयसिंहसूरि	वि. स. १४२२
१०	कुमारपाल चरितम्]		
११	विविधतीर्थकल्प	श्री जिनप्रभसूरि	वि स १३८६
१२	रसमाला	श्री अलेक्जण्डर किन्लॉक फार्ब्स	ई. स. १८७८
१३	लाईफ ऑफ हेमचन्द्र	श्री डॉ बूल्हर	ई. स. १८८९

आधुनिक काल मे उपलब्ध सामग्री के आधार पर सर्वप्रथम जर्मन विद्वान डॉ. बूल्हर ने ई स १८८९ मे वियना मे आचार्य हेमचन्द्र का जीवन चरित्र लिखा। उनकी यह पुस्तक मूलत जर्मन भाषा मे प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् प्रो. डॉ मणिलाल पटेल ने ई०स० १९३६ मे इसका अङ्ग्रेजी अनुवाद किया जिसे सिन्धी-जैन ज्ञानपीठ, विश्वभारती, शान्ति-निकेतन ने प्रकाशित किया। आचार्य हेमचन्द्र के जीवन-चरित्र का अध्ययन करने के लिये यह पुस्तक

अत्यन्त महत्वपूर्ण एव उपादेय है। इसमे डॉ बूल्हर ने (१) प्रभावक् चरित (२) प्रबन्ध चिन्तामणि (३) प्रबन्धकोश (४) कुमारपाल प्रबन्ध तथा द्वयाश्रय काव्य, सिद्ध हेमप्रशस्ति और महावीर चरित का उपयोग किया है।

प्रामाणिकता के विषय मे ऊपर निर्दिष्ट चारो ग्रन्थ विश्वसनीय माने जाते हैं। गुजरात के प्राचीन इतिहास की विशिष्ट श्रुति और स्मृति के आधार भूत जितने भी प्रबन्धात्मक और चरित्रात्मक ग्रन्थ, निबन्ध आदि सस्कृत या प्राचीन देशी भाषा मे उपलब्ध होते हैं उन सबमे प्रबन्ध चिन्तामणि का स्थान विशिष्ट और अधिक महत्व का है[1]। श्री राजशेखरसूरि ने अपने 'प्रबन्धकोष' मे, जिनप्रभसूरि ने 'विविधतीर्थकल्प' मे, जिनमण्डनोपाध्याय ने 'कुमारपालप्रबन्ध' मे, जयसिंहसूरि ने 'कुमारपाल प्रबोध प्रबन्ध' मे, तथा इनके बाद कई ग्रन्थकारो ने अपने ग्रन्थो मे प्रबन्धचिन्तामणि का उपयोग किया है। श्री अलेकजेण्डर किन्लॉक फार्बस् ने इसका उपयोग 'रसमाला' मे किया है। बम्बई सरकार ने बम्बई गजेटियर मे भी इसका उपयोग किया है। श्री सी० एच टॉनी ने ई० स० १६०१ मे सर्वप्रथम इसका अङ्ग्रेजी मे अनुवाद किया जो कलकत्ता एशियाटिक सोसायटी ने प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ प्रधानतया ऐतिहासिक प्रबन्धो का सङ्ग्रह रूप है। इसमे सिद्धराज जयसिंह एव कुमारपाल के समय का वर्णन आधारभूत और ऐतिहासिक है। इनकी सत्यता शिला लेखो एव ताम्रपट्टो आदि से सिद्ध होती है। प्रबन्धचिन्तामणि मे सिद्धराजादि एव कुमारपालादि प्रबन्धो मे आचार्य हेमचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित पर्याप्त जानकारी मिलती है।

श्री प्रभाचन्द्रसूरि विरचित प्रभावक् चरित भी बडे महत्व का ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इन्होने आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्ठिशलाका-पुरुषचरित' से प्रेरणा प्राप्त कर हेमचन्द्र के 'परिशिष्ठपर्वन्' मे आगे आचार्यों का वर्णन प्रारम्भ कर हेमचन्द्रसूरि तक आचार्यो के चरित्र का वर्णन किया है। इसमे तत्कालीन राजाओ के तथा आचार्यों के सम्बन्ध मे प्रसगानुसार ऐतिहासिक विवरण है। महाकवि और प्रभावशाली धर्माचार्यो के सम्बध मे ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करनेवाला इस कोटि का दूसरा ग्रन्थ नही है।

श्री राजशेखरसूरि कृत प्रबन्धकोश बहुत कुछ प्रबन्धचिन्तामणि के

---

१ -प्रबन्धचिन्तामणि —अनु हजारीप्रसाद द्विवेदी सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, १६४० प्रस्तावना

समान ही है। हेमचन्द्रसूरी के सम्बन्ध में एक जगह ग्रन्थकार स्वयं कहते है कि इन आचार्य के जीवन के सम्बन्ध में जो-जो बातें प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ मे लिखी गई हैं, उनका वर्णन करना चर्वित-चर्वण मात्र होगा[1]। हम यहाँ पर कुछ नवीन विवरण ही प्रस्तुत करना चाहते हैं। फिर भी प्रबन्धचिन्तामणी की अपेक्षा अनेक विशिष्ट और विश्वसनीय बातो का इसमे सङ्कलन है। इसमे 'हेमसूरि प्रबन्ध' आचार्य हेमचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित है।

'पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह' ऐतिहासिक प्रबन्धो एक का संङ्ग्रह है जो 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से सम्बद्ध है। इसमे हेमचन्द्र के जीवन का विशद रुप से वर्णन किया गया है। उनके विषय मे किंवदन्तियों का भी यहाँ संङ्ग्रह किया गयाहै। 'पुरातन प्रबन्ध-संङ्ग्रह' के हेमचन्द्रसूरि के प्रबन्धो मे ५८, ५६, ६०, ६१ तथा ६३ संख्या के प्रकरणों और 'प्रबन्धकोश सङ्ग्रह' के ८३, ८४, ८५ तथा ८६ प्रकरणो में समानता है। अतः 'पुरातनप्रबन्ध संङ्ग्रह' हेमचन्द्र का जीवन लिपि-बद्ध करने मे अत्यन्त सहायक है। सम्भवत. डॉ. बूल्हर अपने ग्रन्थ मे इसका उपयोग नही कर पाये।

आचार्य जिनमण्डनोपाध्याय के 'कुमारपाल प्रबन्ध' मे विशेष रुप से कुमारपाल द्वारा मान्य हिंसाऽहिंसा का वर्णन है। इसमे हेमचन्द्र-विषयक कोई नवीन जानकारी नही है। प्रबन्धकोश मे वर्णित जानकारी ही इन्होने भी दी है। इसके साथ ही जयसिंहसूरि तथा चारित्र सुन्दरगणि का 'कुमारपाल चरित' भी देखने योग्य है। चन्द्रसूरि का 'मुनिसुव्रतस्वामिचरित' भी इस दृष्टि से उपादेय है।

इतने विश्वसनीय ग्रन्थ होते हुए भी श्री सोमप्रभाचार्य विरचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' तथा यश.पाल के 'मोहराजपराजय' के बिना आचार्य हेमचन्द्र का जीवन प्रामाणिकता से नही लिखा जा सकता। समकालीन होने से इन दोनों का महत्त्व कहीं अधिक है। श्री सोमप्रभसूरि तथा यशपाल दोनो ही हेमचन्द्र के लघुवयस्क समकालीन थे। 'मोहराजपराजय' नाटक में हेमचन्द्र के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है, यद्यपि चरित्राङ्कन करना उसका ध्येय नही है। विशेष रुप से हेमचन्द्र के उपदेश प्रभाव से तत्कालीन राजा कुमारपाल ने किस

---

१ -किं चर्वित चर्वणेन ? नवीनास्तु केचन प्रबन्धाः प्रकाश्यन्ते
प्रबन्धकोशः हेमचन्द्रसूरि प्रबन्ध-१०

प्रकार व्यसनों को छोड़कर वैराग्य धारण किया, इसका वर्णन 'मोहराजपराजय' मे पाया जाता है। सोमप्रभसूरि के 'कुमारपाल प्रतिबोध' मे हेमचन्द्र द्वारा कुमारपाल के लिये समय-समय पर दिया हुआ उपदेश सङ्ग्रहीत है। लेखक का मत है कि *यद्यपि सामग्री बहुत है फिर भी केवल जैन धर्मानुकूल सामग्री का* ही उपयोग किया गया है, जैसे पाकशाला मे अनेक पदार्थ होने पर भी कोई अपनी रुचि के अनुसार ही पदार्थ ग्रहण करता है[1]। यह ग्रन्थ हेमचन्द्र की मृत्यु के ग्यारह-बारह वर्ष पश्चात् ही प्रकाशित हुआ। लोकश्रुति है कि इस ग्रन्थ की रचना हेमचन्द्र के निवासगृह मे ही की गयी थी तथा उनके तीन शिष्यों ने इसका सम्पूर्ण पाठ सुना था। अत. हेमचन्द्र के जीवनचरित्र के विषय मे यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाना चाहिये, किन्तु खेद है कि केवल इसके आधार पर अचार्यजी का जीवन-चरित्र लिपिबद्ध करना कठिन ही नही वरन् असम्भव है। इस ग्रन्थ मे उनके धर्मोपदेश का ही विशेष वर्णन है तथा जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ छोड दी गई हैं और कुछ घटनाओ का काव्यमय अतिरञ्जित वर्णन किया गया है। अत. आचार्य हेमचन्द्र का जीवन-चरित्र लिखने के समय श्री सोमप्रभसूरि के ग्रन्थ को आधार मानकर दूसरे अन्य लेखको द्वारा निर्दिष्ट सामग्री का उपयोग करना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

जीवन-चरित—

आचार्य हेमचन्द्र का जन्म गुजरात मे अहमदाबाद से साठ मील दूर दक्षिण-पश्चिम मे स्थित 'धुन्धुका' नगर मे वि. स. ११४५ मे कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि मे हुआ था[2]। सस्कृत ग्रन्थ मे इसे 'धुन्धुक्क नगर' या 'धुन्धुकपुर' भी कहा गया है। यह प्राचीन काल मे सुप्रसिद्ध एव समृद्धिशाली नगर था। इनके माता-पिता मोढ वशीय वैश्य थे[3]। पिता का नाम 'चाचिग अथवा चाच' और

१-कुमारपाल प्रतिबोध—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा १९२० पृष्ठ ३-श्लोक ३०-३१

२-प्रभावक् चरित-प्रभाचन्द्रसूरि-हेमसूरि प्रबन्ध, श्लोक ११-१२ धुन्धुक्क-पुरातन प्रबन्ध सग्रह, धुन्धुक्कपुर-प्रबन्धकोश, धुन्धुक्क-प्रबन्ध चिन्तामणि बन्धूक—प्रभावक्चरित।
'बधूकमिव बन्धूक देशे तत्रास्ति सत्पुरम्'

३-मोढ़कुले-पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह, मोढ़ज्ञातीय-प्रबन्धकोश, मोढ़वशे—प्रबन्धचिन्तामणि,

माता का नाम 'पाहिणी देवी था'[१]। पिता के चाच्च, चाच, चाचिग ये तीनों नाम मिलते है। इनके वंशजो का निवास (निष्क्रमण) मोढेरा ग्राम से हुआ था। अत यह मोढ़वंशीय कहलाये। आज भी इस वश के वैश्य 'श्री मोढ बणिये' कहे जाते हैं। इनकी कुलदेवी 'चामुण्डा' और कुलयक्ष 'गोनस' था। माता-पिता ने देवता-प्रीत्यर्थ उक्त दोनो देवताओ के आद्यन्ताक्षर लेकर बालक का नाम चाङ्गदेव रखा। अत· आचार्य हेमचन्द्र का मूलनाम चाङ्गदेव पडा[२]। माता-पिता के सम्प्रदाय के विषय मे कुछ सङ्केत मात्र प्राप्त होते हैं। राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश के अनुसार बालक चाङ्गदेव की माता पाहिणी और मामा नेमिनाग दोनो ही जैन धर्मावलम्बी थे[३]। इसकी पुष्टि 'कुमारपाल प्रबन्ध मे' जिनमण्डनोपाध्याय ने भी की है। पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रहकार तथा मेरुतुङ्गाचार्य दोनो इस विषय मे मौन है, किन्तु इनके पिता को मिथ्यात्वी कहा गया है[४]। प्रबन्ध-चिन्तामणि के अनुसार इनके पिता शैव प्रतीत होते हैं, क्योकि उदयनमन्त्री द्वारा रुपये दिये जाने पर उन्होने 'शिव निर्माल्य' शब्द का व्यवहार किया है और उन रुपयो को शिवनिर्माल्य के समान त्याज्य कहा है[५]। कुलदेवी का चामुण्डा होना भी यह सङ्केत करता है कि वश-परम्परा से इनका परिवार शिव-पार्वती का उपासक था। गुजरात मे ग्यारहवी शती मे शैव-मत की प्रधानता रही है क्योकि चालुक्यो के समय मे गुजरात मे गाव-गाव मे सुन्दर शिवालय सुशोभित थे। सध्या समय उन शिवालयो मे होने वाली शख ध्वनि और घण्टानाद से सारा गुजरात गुञ्जित हो जाता था।

पाहिणी के जैन धर्मावलम्बिनी और चाचिग के शैव धर्मावलम्बी होकर एक साथ रहने मे कोई विरोध नही आता है। प्राचीनकाल मे दक्षिण भारत

१-चाहिणी-कुमारपाल प्रतिबोध, तथा पुरातन प्रबन्ध सङग्रह, गेहिनि पाहिनि तस्य देहिनी मन्दिरेन्दरा—प्रभावक् चरित श्लोक-८४८ पृष्ठ ३३७, चङ्गीवीर वशावलि-साहित्य सशोधक त्रैमासिक खण्ड १ अक ३ पुन

२-कुमारपाल प्रतिबोध पृष्ठ ४७८, बॉम्बे गजीटियर पेज १९१।
प्रबन्धचिन्तामणि हेमप्रभसूरि चरित्रम् पृष्ठ ८३।

३-एकदा नेमिनाग नाम्ना,...दीक्षा याचते। प्रबन्धकोश हेमसूरि प्रबन्ध।

४-पुरातन प्रबन्ध सङग्रह तथा प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ७५, ७७ तथा ८३।

५-प्रबन्ध चिन्तामणि हेमसूरि चरित्रम्,... चाचिग त वृतान्त,... शिवनिर्माल्य मिवास्पृश्यो मे द्रव्य-सचय।

और गुजरात मे ऐसे अनेक परिवार थे जिनमे पत्नी और पति का धर्म भिन्न था। स्वय गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह की माता जैन थी और वह स्वय शैव धर्मावलम्बी था[1]। सोमप्रभसूरि ने हेमचन्द्र के पिता के विषय मे इतना ही कहा है कि वे देव और गुरुजन की अर्चा करने वाले थे[2]। उसी प्रकार माता के विषय मे वे केवल शील का वर्णन करते हैं। प्रबधो मे उल्लेख प्राप्त होता है कि आचार्य हेमचन्द्र अपने समय के बहुत बडे आचार्य थे अत उनकी माता को भी उच्चासन मिलता था। बहुत सम्भव है, माता ने बाद मे जैन धर्म की दीक्षा ले ली हो। हेमचन्द्र के मामा नमिनाग अवश्य जैन अथवा जैन धर्मानुरागी मालुम पडते है[3]।

'कुमारपाल प्रतिबोध' मे श्री सोमप्रभसूरि ने आचार्य हेमचन्द्र के जन्म की कोई तिथि नही दी है। धुन्धुका मे जन्म हुआ अथवा अन्यत्र इस विषय मे भी उनका कथन स्पष्ट नही है। उनके पास हेमचरित्र विषयक सामग्री पर्याप्त थी किन्तु उस सामग्री मे से उन्होने रसानुकूल एव जैन-धर्मानुकूल सामग्री का ही उपयोग किया है। इसलिये हमारे चरित्र नायक के विषय मे बहुत सा वृतान्त गूढ भी रह गया है।

बालक चाङ्गदेव जब गर्भ मे था तब माता ने आश्चर्यजनक स्वप्न देखे थे। राजशेखर के अनुसार हेमचन्द्र के मामा नेमिनाग ने अपनी बहन का स्वप्न गुरुदेव के सम्मुख कह सुनाया, "जब चाङ्गदेव गर्भ म था तब मेरी बहन ने स्वप्न म एक आम का सुन्दर वृक्ष देखा था, जो स्थानान्तर मे बहुत फलवान होता हुआ दिखलाई पडा। इस पर देवचन्द्र गुरु ने कहा कि उसे सुलक्षण सम्पन्न पुत्र होगा जो दीक्षा लेने योग्य होगा"[4]। सोमप्रभसूरि भी ऐसे स्वप्नो का वर्णन करते हैं। एक बार आचार्य देवचन्द्र धर्मप्रचारार्थ धुन्धुका आये तब हेमचन्द्र की माता पाहिणी ने कहा—' मैंने स्वप्न मे ऐसा देखा है कि मुझे चिन्तामणि रत्न

१-गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—के० एम० मुन्शी, अध्याय-४ हेम एन्ड हिज टाईम्स।

२-"स्वदेव गुरुजण्च्चो चन्चो"-कुमारपाल प्रतिबोध।

३-प्रबन्ध चिन्तामणि पृष्ठ ८३-जैन सिन्धी ग्रन्थमाला।

४-प्रबन्धकोश-हेमसूरि प्रबन्ध-अस्विश्च गर्भस्थे मम भगिन्या........
महत्पात्रमसौ योग्य सुलक्षणो दीक्षणीयः'।

प्राप्त हो गया है जो मैंने आपको दे दिया"। गुरुजी ने कहा कि इस स्वप्न का यह फल है कि तेरे एक चिन्तामणि-तुल्य[2] पुत्र होगा, परन्तु गुरु को सौंप देने से वह सूरिराज होगा, गृहस्थ नही। इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य हेमचन्द्र अपनी मृत्यु के बारह वर्ष पश्चात् ही दैवी पुरुष बन गये जिनके विषय मे अदभुत किंवदन्तियाँ लोगों मे प्रचलित हो गयी थी[1]। स्वप्न के सम्बन्ध मे अन्य ग्रन्थो मे भी वर्णन मिलता है। 'प्रभावक् चरित' के अनुसार भी पाहिणी ने गर्भावस्था मे स्वप्न मे देखा कि उसने चिन्तामणि रत्न अपने आध्यात्मिक परामर्शदाता गुरु को सौंप दिया[2]। उसने यह स्वप्न साधु देवचन्द्राचार्य के सम्मुख कह सुनाया। साधु देवचन्द्र ने इस स्वप्न का विश्लेषण करते हुए कहा कि उसे एक ऐसा पुत्र-रत्न प्राप्त होगा जो जैन-सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार एव प्रसार करेगा[3]। इस प्रकार हेमचन्द्र के जन्म के पूर्व ही उनकी भवितव्यता के शुभ लक्षण प्रकट होने लगे थे। महापुरुष के जन्म के पूर्व इस प्रकार शुभ लक्षण प्रकट होने की परम्परा भारतवर्ष मे रही है। माता पिता की ओर से उत्कृष्ट सस्कार जिसे प्राप्त हैं, वह सन्तान युगप्रवर्तक निकलती है।

बाल्यकाल —शिक्षा दीक्षा एव आचार्यत्व ।

शिशु चाङ्गदेव बहुत होनहार था। गौतमबुद्ध के समान शैशवकाल से ही धर्म के अतिरिक्त किसी विषय मे बालक चाङ्गदेव का मन नही रमता था। वह अपनी माता के साथ मन्दिर जाया करता था एव प्रवचनो का श्रवण करता था। श्री सोमप्रभसूरि के अनुसार एक बार पूर्णतलगच्छ के देवचन्द्रसूरि विहार करते हुए धुन्धुका आये। वहाँ चाङ्गदेव तथा उसकी माता चाहिनी (पाहिणी) ने देवचन्द्र के उपदेशो को ध्यान से सुना[4]। उपदेशों से प्रभावित होकर वणिक कुमार चाङ्गदेव ने प्रार्थना की "भगवन् सुचारित्र रूपी जलयान द्वारा इस ससार समुद्र से पार लगाइये"। तब मामा नेमिनाग ने गुरु से चाङ्गदेव का परिचय कराया। बालक का साधु बनने का निश्चय हो गया था। गुरु देवचन्द्र ने भी दीक्षा के लिये चाङ्गदेव की माग की, किन्तु वे पिता की आज्ञा अवश्य चाहते थे।

१-कुमारपाल प्रतिबोध ,पृष्ठ ४७८

२-प्रभावक् चरित,पृष्ठ २९८, श्लोक २७ से ४५ गा०, ओ०, सी० १९२०

३-जैन शासन पायोधि कौस्तुभ —सभवी सुत।

तवस्तवच्चतोयस्य देया अपि सुवृत्तत ॥१६॥ प्रभावक् चरित-हेमसूरि प्रबन्ध

४-कुमारपाल प्रतिबोध , गा० ओ० सी० १९४० । पृष्ठ २१—२२

पिता ने सन्तान मोहवश स्वेच्छा से अनुमति नही दी। इसलिये चाङ्गदेव मामा की अनुमति से चल पडा तथा मुनि देवचन्द्र के साथ हो गया और उनके साथ स्तम्भतीर्थ (खम्भात) गया। इस प्रकार सोमप्रभसूरि के अनुसार चाङ्गदेव को पिता की अनुमति नही मिली थी। माता की सम्मति के विषय मे वे मौन हैं। उनके अनुसार बालक चाङ्गदेव स्वयम् ही दीक्षा के लिये दृढ था। इस कार्य मे चाङ्गदेव के मामा ने उसे अवश्यमेव प्रोत्साहन दिया। पाच या आठ वर्ष के बालक के लिये ऐसी दृढता शका का विषय है और इस शका का मनोविज्ञान की दृष्टि से शायद निराकरण हो सकता है। सम्भव है केवल साहित्य की छटा लाने के लिये सोमप्रभसूरि ने यह वर्णन किया हो। खम्बात मे जैन सघ की अनुमति से चाङ्गदेव को दीक्षा दी गई और उनका नाम सोमचन्द्र रखा गया तदन्तर तपश्चर्या मे लीन हेमचन्द्र ने थोडे ही दिनो मे अपार ज्ञान राशि सचित की। गुरुजी ने उन्हें सभी श्रमणो के नेता, गान्धार अथवा आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। सचमुच हेमचन्द्र मे कुछ अलौकिक शक्तियाँ विद्यमान थी। सोमचन्द्र का शरीर सुवर्ण के समान तेजस्वी एव चन्द्रमा के समान सुन्दर था। इसलिये वे हेमचन्द्र कहलाये। श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार एक बार सोमचन्द्र ने शक्ति प्रदर्शन के लिये अपने बाहू को अग्नि मे रख दिया। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से सोमचन्द्र का जलता हाथ सोने का बन गया। इस घटना के पश्चात् सोमचन्द्र हेमचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हो गये[1]।

मेरुतुङ्गसूरि के 'प्रबन्धचिन्तामणि' म यही वृत्तान्त कुछ रूपान्तर मे मिलता है। एक समय श्री देवचन्द्राचार्य अणहिलपत्तन से प्रस्थान कर तीर्थ यात्रा के प्रसग मे धुन्धुका पहुँचे और वहाँ मोढवशियो की वसही-जैन मन्दिर मे देव-दर्शन के लिये गये। उस समय शिशु चाङ्गदेव की आयु आठ वर्ष की थी। खेलते-खेलते अपने समवयस्क बालको के साथ चाङ्गदेव वहाँ आ गया और अपने बालचापल्य स्वभाव से देवचन्द्राचार्य की गद्दी पर बडी कुशलता से जा बैठा। उसके अलौकिक शुभ लक्षणों को देखकर आचार्य कहने लगे, "यदि यह बालक क्षत्रियोत्पन्न है तो अवश्य सर्वभौमराजा बनेगा। यदि यह वैश्य अथवा विप्र

1—"To demonstrate his powers he set his arms in a blazing fire and his father found to his surprise the flashing arm turned into gold." — History of classical sanskrit literature krishnamacharior, Page 173–174

कुलोत्पन्न है तो महामात्य बनेगा और यदि कही इसने दीक्षा ग्रहण करली तो युग-प्रधान के समान अवश्य इस युग मे कृतयुग की स्थापना करने वाला होगा'। चाङ्गदेव के सहज साहस, शरीर सौष्ठव, चेष्टा, प्रतिभा एव भव्यता ने आचार्य के मन पर गहरा प्रभाव डाला और वे सानुराग उस बालक को प्राप्त करने की अभिलाषा से उस नगर के व्यावहारिको को साथ ले स्वय चाचिग के निवास-स्थान पर पधारे। उस समय चाचिग यात्रार्थ बाहर गये हुए थे। अत उनकी अनुपस्थिति मे उनकी विवेकवती पत्नी ने समुचित स्वागत-सत्कार द्वारा अतिथियो को सन्तुष्ट किया[1]।

आचार्य देवचन्द्र ने चाङ्गदेव को प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की। आचार्य द्वारा पुत्रयाचना की बात जानकर पुत्र गौरव से अपनी आत्मा को गौरवान्वित समझ कर प्रज्ञावती हर्ष विभोर हो अश्रुपात करने लगी। पाहिणी देवी ने आचार्य के प्रस्ताव का हृदय से स्वागत किया और वह अपने "अधिकार की सीमा का अवलोकन कर लाचारी प्रकट करती हुई बोली, "प्रभो! सन्तान पर माता पिता दोनो का अधिकार होता है, गृहपति बाहर गये हुए है, वे मिथ्यादृष्टि भी हैं, अत मैं अकेली इस पुत्र को कैसे दे सकूँगी ?" पाहिणी के इस कथन को सुनकर प्रतिष्ठत् सेठ साहूकारो ने उत्तर दिया। 'तुम इसे अपने अधिकार से गुरुजी को दे दो। गृहपति के आने पर उनसे भी स्वीकृति ले ली जायगी"। पाहिणी ने उपस्थित जन-समुदाय का अनुरोध स्वीकार कर लिया और अपने पुत्ररत्न को आचार्य को सौप दिया[2]। आचार्य इस प्रभविष्णु पुत्र का प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने बालक स पूछा 'वत्स! तू हमारा शिष्य बनेगा'? चाङ्गदेव ने उत्तर दिया 'जी हाँ अवश्य बनूँगा'। इस उत्तर से आचार्य अत्यधिक प्रसन्न हुए। उनके मन मे यह आशका बनी हुई थी कि चाचिग यात्रा से वापिस लौटने पर कही इसे छीन न लें। अत वे उसे अपने साथ ले जाकर कर्णावती पहुँचे और वहाँ उदयन मन्त्री के पास उसे रख दिया। उदयन उस समय जैन सघ का सबसे बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति था। अत उसके

१-सच अष्टवर्ष देश्य ----- विवेकिन्या स्वागतादिभि
परितोषित। प्रबन्धचिन्तामणि-हेमसूरिचरित्रम् पृष्ठ ८३।
धुंधुक के चाचिग चाहिणी ' माना स्वागतादिना श्री समस्तोपित पुरातन प्रबध सङ्ग्रह हेमसूरि प्रबन्ध।

२-गेवत पित्रोरनुज्ञा--- ---दीक्षा सनौ---प्रव प्रकोप हेमसूरिप्रबन्ध-१०

सरक्षण मे चाङ्गदेव को रखकर आचार्य देवचन्द्र निश्चिन्त होना चाहते थे[1]।

चाचिग जब प्रवास से लौटा तो वह अपने पुत्र सम्बन्धी घटना को सुनकर बहुत दुखी हुआ तथा तत्काल कर्णावती की ओर चल दिया। पुत्र के अपहार से वह दुखी था, अत गुरु देवचन्द्राचार्य की भी पूरी भक्ति न कर सका। ज्ञानराशि आचार्य तत्काल उसके मन की बात समझकर उसका मोह दूर करने के लिये अमृतमयी वाणी मे उपदेश देने लगे। इसी बीच आचार्य ने उदयन मन्त्री का अपने पास बुला लिया और मन्त्रिवर ने बडी चतुराई के साथ चाचिग से वार्तालाप किया और धर्म के बडे भाई होने के नाते श्रद्धापूर्वक अपने घर ले गया और बडे सत्कार के साथ उसे भोजन कराया। तदनन्तर उसकी गोद मे चाङ्गदेव को बिठा कर पञ्चाङ्ग सहित तीन दुशाले और तीन लाख रुपये भेंट किये[2]। कुछ तो गुरु के उपदेश से चाचिग का चित्त द्रवीभूत हो गया था और अब इस सम्मान को पाकर वह स्नेहविह्वल होकर बोला, 'आप तो ३ लाख रुपये देते हुए उदारता के छल मे कृपणता प्रकट कर रहे है। मेरा पुत्र अमूल्य है। परन्तु साथ ही, मैं देखता हू कि आपकी भक्ति उसकी अपेक्षा कही अधिक अमूल्य है अत इस बालक के मूल्य मे अपनी भक्ति ही रहने दीजिये। आपके द्रव्य का तो मैं शिवनिर्माल्य के समान स्पर्श भी नही कर सकता"। चाचिग के इस कथन को सुनकर उदयन मन्त्री बोला "आप अपने पुत्र को मुझे सौंपेंगे, तो उसका कुछ भी अभ्युदय नही हो सकेगा, परन्तु यदि इसे आप पूज्यपाद गुरुवर्य के चरणारविन्द मे समर्पित करेंगे तो वह गुरुपद प्राप्त कर बालेन्दु के समान त्रिभुवन मे पूज्य होगा। अत आप सोच विचार कर उत्तर दीजिये। आप पुत्र हितैषी है साथ ही आप मे धर्म सस्कृति के सरक्षण की ममता भी है"। मन्त्री के इन वचनो को सुनकर चाचिग ने कहा, 'आपका वचन ही प्रमाण है। मैंने अपने पुत्र रत्न को गुरुजी को भेंट कर दिया"। देवचन्द्राचार्य इन वचनो को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और धर्म प्रचार की महत्त्वकाक्षा से उनका मुखकमल विकसित हो गया। इसके पश्चात् उदयन मन्त्री के सहयोग से चाचिग ने चाङ्गदेव का दीक्षा

१-तैं गुरुभि "पाल्यमान—प्रबन्धचिन्तामणि।

आचार्य प्रश्ने "बान्धवभव्रत्या प्रीत—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह।

२-तावदा ग्रामान्तरादागत""अस्पृश्यो मे द्रव्यसञ्चय—प्रबन्धचिन्तामणि।

तदु चाङ्गदेव तदुत्सङ्गे निवेश्य ' ततौ गुकल्योदरी—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह।

महोत्सव सम्पन्न किया[१]। चतुर्विध सङ्घ के समक्ष देवचन्द्राचार्य ने स्तम्भतीर्थ के पार्श्वनाथ चैत्यालय में धूमधामपूर्वक दीक्षा सस्कार सम्पादित किया और चाङ्गदेव को दीक्षानाम सोमचन्द्र दिया[२]। बाद मे वह बालक प्रतिभायुक्त होने के कारण अगस्त्य ऋषि के समान समस्त वाङ्मयरुप समुद्र को चुल्लू मे रखकर पी गया। गुरु के दिये हुए हेमचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह ३६ सूरिगुणो से अलङ्कृत सूरिपद पर अभिषिक्त हुआ।

उपाध्याय जिनमण्डन के अनुसार एक बार जब चाङ्गदेव गुरु देवचन्द्रसूरि के आसन पर जा बैठा तब उन्होंने माता पाहिणी से कहा "सुश्राविके! तूने एक बार जो स्वप्न की चर्चा की थी उसका फल आँखो के सामने आ गया है[३]"। तदनन्तर देवचन्द्र सङ्घ के साथ चाङ्गदेव की याचना करने के लिये पाहिणी के निवास स्थान पर गये। पाहिणी ने घरवालो का विरोध सहकर भी अपना पुत्र देवचन्द्र को सौंप दिया[४]।

राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश के अनुसार आचार्य देवचन्द्र की धर्मोपदेश सभा मे नेमिनाग नामक श्रावक ने उठकर कहा कि 'भगवन्, यह 'मेरा भानजा आपका उपदेश सुनकर प्रबुद्ध हो दीक्षा मांगता है। जब यह गर्भ में था तब मेरी बहन ने स्वप्न देखा था'। गुरुजी ने कहा 'इसके माता-पिता की अनुमति आवश्यक है।' इसके पश्चात् मामा नेमिनाग ने बहन के घर पहुँच कर भानजे के व्रत के लिये याचना की। माता-पिता के विरोध करने पर भी चाङ्गदेव ने दीक्षा धारण करली[५]।

प्रभावक्चरित के अनुसार जब चाङ्गदेव पाँच वर्ष का हुआ तब वह अपनी माता के साथ देव मन्दिर म गया। वहाँ माता पूजा करने लगी तो वह आचार्य देवचन्द्र की गद्दी पर जाकर बैठ गया। आचार्य ने पाहिणी को स्वप्न की याद दिलाई और उसे आदेश दिया कि वह अपने पुत्र को शिष्य के रुप मे उन्हें समर्पित करदे। पाहिणी ने अपने पति की ओर से कठिनाई उपस्थित होने

१-इत्थ श्राचिगे···मुमुदेतराम—प्रबन्धचिन्तामणिक—कुमारपालादि प्रबन्ध।
२-चतुर्विध सङ्घ ···श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी।
३-प्रभावक्चरितम्——हेमचन्द्रसूरि प्रबन्धम् श्लोक ३६।
४-कुमारपाल प्रबन्ध श्लोक,४५–५०।
५-प्रबन्धकोश-१० हेमसूरिप्रबन्ध।

की बात कही। इस पर देवचन्द्राचार्य मौन हो गये। तब पाहिणी ने अनिच्छापूर्वक अपना पुत्र आचार्य को भेंट कर दिया। तत्पश्चात् देवचन्द्र बालक को अपने साथ स्तम्भ तीर्थ ले गये। यह स्तम्भ तीर्थ आजकल खम्भात कहलाता है। यह दीक्षा संस्कार वि० स० ११५० मे माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को हुआ[1]।

ज्योतिष के अनुसार कालगणना करने पर माघ शुक्ल चतुर्दशी को शनिवार वि० स० ११५४ मे पडता है, वि० स० ११५० मे नही। अत प्रभावक्चरित का उक्त सवत् अशुद्ध मालूम पडता है। जिनमण्डन कृत 'कुमारपाल प्रबन्ध' मे वि०स० ११५४ ही दिया है। दीक्षा देने के समय हेमचन्द्र की आयु सम्भवत आठ वर्ष की रही होगी। जैन शास्त्रो के अनुसार दीक्षा के समय ८ वर्ष की आयु ही होनी चाहिये। 'प्रबन्धचिन्तामणि','प्रबन्धकोश','पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह' आदि ग्रन्थ दीक्षा के समय हेमचन्द्र की आयु आठ वर्ष की ही बताते हैं। अत दीक्षा समय स० ११५४ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। वि०स० ११५० मे हेमचन्द्र कर्णावती पहुँचे तथा माता-पिता की अनुमति प्राप्त करने मे तीन वर्ष लग गये हो, यह अनुमान अपेक्षाकृत सत्य एव सन्तुलित प्रतीत होता है। इस विषय मे प्रो० पारीख ने श्री बूल्हर के मत का जो खण्डन किया है वह उचित प्रतीत होता है। श्री पारीख का ऐसा अनुमान है कि धुन्धुका मे आचार्य देवचन्द्र की दृष्टि चाङ्गदेव पर विक्रम सम्वत् ११५० मे पडी होगी। 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' के अनुसार चाङ्गदेव प्रथम देवचन्द्रसूरि के साथ कर्णावती आया। वहाँ उदयन मन्त्री के पुत्रो के साथ उसका पालन हुआ। अन्त मे चच्च या चाचिग के हाथो ही दीक्षा महोत्सव खम्भात मे सम्पन्न हुआ। उस समय हेमचन्द्र की आयु आठ वर्ष की रही होगी। पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा मे तीन वर्ष लग जाना स्वाभाविक बात है[2]।

दीक्षित होने के उपरान्त सोमचन्द्र का विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने तर्क, लक्षण एव साहित्य विद्या पर बहुत थोडे ही समय मे अधिकार प्राप्त कर लिया[3]। तर्क, लक्षण और साहित्य उस युग की महाविद्याएँ थी और

---

१ प्रभावक्चरित, पृष्ठ ३४७, श्लोक ८४८

२-काव्यानुशासन प्रस्तावना-पृष्ठ २६७-६८, महावीर विद्यालय, बम्बई

३-सोमचन्द्र स्ततश्चन्द्रोज्ज्वल प्रज्ञा बलादसौ।
तर्क लक्षण साहित्य विद्या पर्यच्छिनद्द्रुतम्। प्रभावक्चरितम्-
हेमचन्द्रसूरि प्रबन्धम्-श्लोक ३७

इस महत्त्रयी का पाण्डित्य राजदरबार और जनसमाज मे अग्रगण्य होने के लिये आवश्यक था । इन तीनो मे हेमचन्द्र को अनन्य पाण्डित्य था । यह उनके उस विषय के ग्रन्थो से स्पष्ट दिखाई देता है । सोमचन्द्र की शिक्षा का प्रबन्ध स्तम्भतीर्थ मे उदयन मन्त्री के घर ही हुआ था । प्रो० पारीख के मत से हेमचन्द्र ने गुरु देवचन्द्र के साथ देश-देशान्तर परिभ्रमण कर शास्त्रीय एव व्यावहारिक ज्ञान की अभिवृद्धि की[1] । 'प्रभावकचरित' के अनुसार आचार्य देवचन्द्रसूरि ने सात वर्ष आठ मास एक स्थान से दूसरे स्थान परिभ्रमण करते हुए और चार मास किसी सद्‌गृहस्थ के यहाँ निवास करते हुए व्यतीत किये । सोमचन्द्र भी बराबर उनके साथ रहे । अत वे अल्पायु मे ही शास्त्रो मे तथा व्यावहारिक ज्ञान मे निपुण हो गये । डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री के मतानुसार[2] हेमचन्द्र नागपुर (नागौर मारवाड) मे धनद नामक सेठ के यहाँ तथा देवचन्द्रसूरि और मलयगिरि के साथ गौड देश के खिल्लर ग्राम गये थे तथा स्वय काश्मीर गये थे। २१ वर्ष की अवस्था मे ही इन्होंने समस्त शास्त्रो का मथन कर अपने ज्ञान की वृद्धि की । अत नागपुर के धनद नामक व्यापारी ने विक्रम स० ११६६ मे सूरिपद प्रदान महोत्सव सम्पन्न किया । इस प्रकार २१ वर्ष की अवस्था मे सूरिपद को प्राप्त कर आचार्य हेमचन्द्र ने साहित्य और समाज की सेवा करना आरम्भ किया । इस नवीन आचार्य की विद्वता, तेज, प्रभाव और स्पृहणीय गुण, दर्शको को सहज ही मे अपनी ओर आकृष्ट करने लगे । 'प्रभावकचरित' के अनुसार सोमचन्द्र के हेमचन्द्रसूरि बनने के पश्चात् उनकी माता ने भी जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की और पुत्र के आग्रह पर वह सिंहासन पर बैठायी गयी । (श्लोक ६१-६३)

जिसकी विद्या प्राप्ति इतनी असाधारण थी उसने विद्याभ्यास किससे कहाँ और कैसे किया! यह कुतूहल स्वाभाविक है। परन्तु इस विषय मे आवश्यक ज्ञातव्य सामग्री उपलब्ध नही है । उनके दीक्षा गुरु देवचन्द्रसूरि स्वय विद्वान् थे । स्थानाङ्गसूत्र पर उनकी टीका प्रसिद्ध है ।

आचार्य हेमचन्द्र के गुरु कौन थे इस विषय मे कुछ मतभेद हैं । डॉ० बूल्हर का मत है कि उन्होंने अपने गुरु का नामोल्लेख किसी भी कृति मे नहीं

१-काव्यानुशासन की अग्रेजी प्रस्तावना—प्रो० पारीख ।

२-आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-एक अध्ययन, पृष्ठ १३, —नेमिचन्द्र शास्त्री ।

किया है। यह असत्य प्रतीत होता है। 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' के १०वें पर्व की प्रशस्ति मे आचार्य हेमचन्द्र ने अपने गुरु का स्पष्ट उल्लेख किया है[१]। 'प्रभावकचरित' एव 'कुमारपालप्रबन्ध' के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्रसूरि ही रहे होंगे। विण्टरनित्ज महोदय ने एक मालाधारी हेमचन्द्र का उल्लेख किया है जो अभयदेवसूरि के शिष्य थे[२]। डॉ० सतीशचन्द्र, आचार्य हेमचन्द्र को प्रद्युम्नसूरि का गुरुबन्धु लिखते है[३]। हेमचन्द्र के गुरु श्री देवचन्द्रसूरि प्रकाण्ड विद्वान् थे[४]। उन्होने 'शान्तिनाथ चरित' एव 'स्थानाङ्गवृत्ति' ऐसे दो ग्रन्थ लिखे। अत इसमे किसी प्रकार की आशङ्का की सम्भावना नही है कि हेमचन्द्र को किसी अन्य विद्वान् आचार्य ने शिक्षा प्रदान की होगी। देवचन्द्र ही उनके दीक्षागुरु तथा शिक्षागुरु या विद्यागुरु भी थे। यह सम्भव है कि उन्होंने कुछ अध्ययन अन्यत्र भी किया हो क्योकि ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ काल उपरान्त हेमचन्द्र का अपने गुरु से अच्छा सम्बन्ध नहीं रहा। इस कारण उन्होने अपनी कृतियो मे गुरु का उल्लेख नही किया है। इस सम्बन्ध मे श्री मेरुतुङ्गाचार्य ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' मे एक उपाख्यान दिया है जिससे उनके गुरुशिष्य सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश पडता है। एक बार गुरु देवचन्द्र ने हेमचन्द्र को स्वर्ण बनाने की कला बताने से इन्कार कर दिया क्योकि उसने अन्य सरल विज्ञान की सुचारु रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, अतएव स्वर्णगुटिका की शिक्षा देना उन्होने अनुचित समझा[५]। हो सकता है, उक्त घटना ही गुरुशिष्य के मनमुटाव का कारण बन गई हो।

१—शिष्यस्तस्य च तीर्थमकमवने पाविण्यकृजङ्गमम्।
सूरर्भूरितप प्रभावसति श्री देवचन्द्रोऽभवत्।
आचार्यो हेमचन्द्रोऽभूत्तत्पादाम्बुजषट्पद
तत्प्रसादादधिगतज्ञानसम्पन्महोदय॥ त्रि०श०पु०च० प्रशस्ति-श्लोक १४, १५

२—ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर-विण्टरनित्ज, वाल्यूम द्वि, पृष्ठ ४८२-४८३।

३—दी हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक, पृष्ठ २०५, —डा० सतीशचन्द्र।

४—श्रीमान्चन्द्रकुलेऽभवद्गुणनिधि प्रद्युम्नसूरि प्रभु, बन्धुर्यस्य च सिद्धहेमविधये श्री हेमसूर विधि। उत्पाद सिद्धि प्रकरण टीकाया चन्द्रसेन कृतायाम्।

५—हीरालाल हंसराज कृत जैन इतिहास, भाग १, तथा गीतावलि, पृष्ठ २१६।

'प्रभावकचरित' से ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र ने ब्राह्मीदेवी की, जो विद्या की अधिष्ठात्री मानी गई है—साधना के निमित्त काश्मीर की यात्रा आरम्भ की। वे इस साधना के द्वारा अपने समस्त प्रतिद्वंदियो को पराजित करना चाहते थे। मार्ग मे जब ताम्रलिप्त (खम्बात) होते हुए रैवन्तगिरि पहुँचे तो नेमिनाथ स्वामी की इस पुण्य भूमि मे इन्होंने योग विद्या की साधना आरम्भ की। नेमितीर्थ मे नासाग्रदृष्टियुक्त समाराधना से देवी शारदा प्रसन्न हो गयी[१]। इस साधना के अवसर पर ही साक्षात् सरस्वती उनके सम्मुख प्रकट होकर कहने लगी "वत्स, तुम्हारी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होगी। समस्त वादियो को पराजित करने की क्षमता तुम्हे प्राप्त होगी"। इस वाणी को सुनकर हेमचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी आगे की यात्रा बिलकुल स्थगित करदी। वे वापिस लौट आये। ब्राह्मी देवी ने उन्हे काश्मीर जाने के लिये अनुमति नही प्रदान की। हेमचन्द्र इस प्रकार देवी को कृपा से सिद्ध सारस्वत बन गये।

काश्मीरवशिनी ब्राह्मीदेवी की साधना का अर्थ यह है कि हेमचन्द्र ज्ञानवृद्धि करने के लिये काश्मीर जाना चाहते थे। उस समय काश्मीर पण्डितो के लिये प्रसिद्ध था क्योंकि श्री अभिनव गुप्त, मम्मट, आदि उद्भट विद्वान् उस समय काश्मीर मे थे। काश्मीरवासिनी देवी की घटना से यद्यपि हेमचन्द्र के काश्मीर जाने की घटना का मेल नही बैठता, फिर भी सम्भव है कि उन्होंने काश्मीर के पण्डितो से अध्ययन किया हो। यद्यपि हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्र अत्यन्त विद्वान् थे तथापि उन्होंने ही सारे विषय हेमचन्द्र को पढाये होगें यह व्यवहार्य प्रतीत नही होता। स्तम्भतीर्थ मे उन्हें पढने के लिये पर्याप्त सुविधाएँ मिली होगी, यह सम्भव है। किन्तु अणहिलपुर के समान विद्या केन्द्र के रूप मे स्तम्भ तीर्थ को प्रसिद्धि नही मिली। अत सम्भव है, उन्होंने कुछ समय अणहिलपुर मे भी अध्ययन किया हो। ब्राह्मी देवी की घटना से हेमचन्द्र की रचनाओ का काश्मीर ग्रन्थो से सम्बन्ध प्रतीत होता है। काश्मीरी पण्डित उस समय गुजरात मे आते-जाते थे, यह बिल्हण के आगमन से ही पता लगता है।

१-प्रबन्धचिन्तामणि हेमसूरिचरितम् ८३—पृष्ठ ७७-९८।

२-प्रभावक्चरित हेमप्रबन्ध श्लोक ३७-४६ तक पृष्ठ २९८-९९
विशेष के लिये लाईफ आफ हेमचन्द्र—द्वितीय अध्याय—डा० बूल्हर तथा प्रो० पारिख कृत काव्यानुशासन की प्रस्तावना पृष्ठ CCLXVI–CCLXIX

"मुद्रित कुमुदचन्द्र" नाटक के अनुसार 'उत्साह' सिद्धराज जयसिंह का एक सभा पण्डित था। इस नाटक के रचयिता यशश्चन्द्र थे तथा यह नाटक वि० स० ११८१ में खेला गया था। काश्मीरी पण्डितो ने आठ व्याकरणो के साथ 'उत्साह' नामक वैयाकरण को भी भेजा था तथा इन आठ व्याकरणों की सहायता से हेमचन्द्र ने अपना 'शब्दानुशासन' ग्रन्थ पूरा किया था। अतः अनुमान किया जा सकता है कि प० उत्साह हेमचन्द्र को कुछ मार्गदर्शन मिला हो। काश्मीरी पण्डितो के साथ सम्पर्क की पुष्टि आन्तरिक प्रमाणो के आधार पर भी सिद्ध होती है। यह निर्विवाद है कि हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' (सूत्र) मम्मट के 'काव्यप्रकाश' पर आधारित है। यह निर्विवाद है। रसशास्त्र पर चर्चा करते हुए 'नाट्यवेदविवृति' से उद्धरण देकर अभिनवगुप्तपादाचार्य का अनुसरण करने के विषय मे वे बार-बार कहते है। 'काव्यप्रकाश' की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति (ताडपत्र पर) वि० स० १२१५ की अणहिलपट्टन मे लिखी गई अर्थात् कुमारपाल के राज्य तक विद्या के सम्बन्ध मे काश्मीर और गुजरात का घनिष्ठ सम्बन्ध था।

ब्राह्मी देवी के वरदान से हेमचन्द्र के सिद्ध सारस्वत बनने की घटना भी असम्भव प्रतीत नही होती। इसका समर्थन उनके 'अलङ्कारचूडामणि' से भी होता है[1]। भारत मे कई मनीषी विद्वानो ने मन्त्रो की साधना द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है। हम नैषधकार श्री हर्ष तथा महाकवि कालिदास के सम्बन्ध मे भी ऐसी बातें सुनते हैं। आचार्य सोमप्रभ के अनुसार हेमचन्द्र विविध देशो मे परोपकारार्थ विहार करते रहे, किन्तु बाद म गुरुदेव के निषेध करने पर गुर्जर देश के पाटन नगर मे ही भव्य-जनो को जागरित करते रहे। इस वर्णन से यह अनुमान किया जा सकता है कि गुर्जर एवम पाटन मे स्थिर होने के पूर्व भारतवर्ष का भ्रमण आचार्यजी ने किया होगा। आचार्य हेमचन्द्र मे 'शतसहस्रपद' धारण करने की शक्ति विद्यमान थी।

राजाश्रय —हेमचन्द्र और सिद्धराज जयसिंह

आचार्य हेमचन्द्र का गुजरात क राजा सिद्धराज जयसिंह के साथ सर्वप्रथम मिलन कब और कैसे हुआ, इसका सन्तोषजनक विवरण अभी तक उपलब्ध नही हुआ है। तर्क, लक्षण और साहित्य ये उस युग की महाविद्याएँ थीं। विद्या-प्राप्ति के हेतु एव अपने पाण्डित्य को कसौटी पर कसने के लिये आचार्य होने के पूर्व उनका अणहिल्लपुर, पाटन मे आना-जाना हुआ हो, यह सम्भव प्रतीत होता है।

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि–सिद्धराजादि प्रबन्ध ५३-७६ पृष्ठ ६०

'प्रभावक्चरित' एव 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अनुसार कुमुदचन्द्र के लोकविश्रुत शास्त्रार्थ के समय आचार्य हेमचन्द्र सभा-पण्डित के नाते उपस्थित थे । यह शास्त्रार्थ वि० स० ११८१ मे हुआ था[१] ।

उस समय उनकी आयु ३६ वर्ष की थी तथा सूरिपद प्राप्त हुए १५ वर्ष व्यतीत हो चुके थ । 'प्रबन्धचिन्तामाण' के अङ्ग्रेजी अनुवादक प्रो० टॉनी के मतानुसार हेमचन्द्र ने सर्वप्रथम अपनी बहुमुखी विद्वत्ता मे ही राजा को प्रभावित किया होगा तथा बाद मे धार्मिक प्रभाव आया होगा । 'प्रभावक्चरित' के अनुसार हेमचन्द्र का सिद्धराज जयसिंह से प्रथम मिलन अणहिल्पुर के एक सकरे मार्ग पर हुआ । यहाँ से जयसिंह के हाथी को गुजरने मे रुकावट पडी और इस प्रसङ्ग पर एक तरफ से हेमचन्द्र ने 'सिद्ध को निश्शक होकर अपने गजराज को ले जाने के लिये कहा और श्लेष से स्तुति की'[२] । परन्तु इस उल्लेख मे कितना ऐतिहासिक तथ्य है, यह कहना कठिन है । 'कुमारपालप्रबन्ध' मे उल्लेख प्राप्त होता है कि हेमचन्द्र और जयसिंह का प्रथम समागम इस प्रसङ्ग से पूर्व भी हुआ था ।

कहा जाता है कि इस श्लोक को सुनकर जयसिंह प्रसन्न हुए और उन्होने हेमचन्द्रसूरि को अपने दरबार मे बुलाया । यही वृत्तान्त कुछ रूपान्तर से 'प्रबन्धकोश' मे मिलता है । 'एक दिन सिद्धराज जयसिंह हाथी पर बैठ कर पाटन के राजमार्ग से विचरण कर रहे थे । उनकी दृष्टि मार्ग मे शुद्धिपूर्वक गमन करने वाले हेमचन्द्र पर पडी । मुनीन्द्र की शान्त मुद्रा ने राजा को प्रभावित किया और अभिवादन के पश्चात् उन्होंने कहा', "प्रभो ! आप राजप्रासाद मे पधारकर दर्शन देने की कृपा करें[३]" । तदनन्तर हेमचद्र ने यथा समय राजसभा

१– प्रबन्धचिन्तामणि–जयसिंहदेव हेमसूरिसमागम : पृष्ठ वही
प्रभावक्चरित हेमचन्द्र ! श्लोक ६८–७२

२– कारय प्रसर सिद्धहस्तिराजमशङ्कितम् ।
त्रस्यन्तु दिग्गजा कि तै भूस्त्वयैवोद्धृतायता ।१। प्रभावक्चरित-श्लोक ६५

३– प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ६७
"ओ सिद्ध, तुम्हारे सिद्ध गज निर्भयता से भ्रमण करे । दिग्गजो को कॉपने दो । उनसे क्या लाभ ? क्योंकि तुम पृथ्वी का भार वहन कर रहे हो ।"

मे प्रवेश किया और अपनी विद्वत्ता तथा चारित्र-बल से राजा को प्रसन्न किया। इस प्रकार राज-सभा मे हेमचन्द्र का प्रवेश प्रारम्भ हुआ और इनके पाण्डित्य, दूरदर्शिता, तथा सर्व धर्म-स्नेह के कारण इनका प्रभाव राजसभा म उत्तरोत्तर बढता गया।

कुमुदचद्र के शास्त्रार्थ के अवसर पर सभा-पण्डित के नाते हेमचद्र की उपस्थिति की घटना सत्य हो, तो नि सन्देह वि० स० ११८१ के पूर्व वे सिद्धराज जयसिह् के सम्पर्क मे आये होगे। किन्तु उस समय सभा म इनका अपूर्व प्रभाव परिलक्षित नही होता। अत इस लोक-विख्यात वाद-विवाद के निकटभूत-काल मे ही इनका जयसिह की राज सभा मे प्रवेश हुआ होगा, यह सम्भव प्रतीत होता है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' तथा 'प्रभावकचरित' के अनुसार कुमारपाल तथा आचार्य हेमचन्द्र की प्रथम भेंट सिद्धराज जयसिह् के दरबार मे हुई थी। यदि इस घटना को सत्य माना जाय तो यह सिद्ध होता है कि हेमचन्द्र वि० स० ११८१ के कई वर्ष पूर्व ही अणहिलपुर में आ गये थे क्योंकि उस समय कुमारपाल को जयसिह् से भय नही था। प्रो० पारीख का मत है कि यह घटना वि० स० ११६६ के आसपास घटी होगी[1]। जब सिद्धराज जयसिह् ने मालवा पर विजय प्राप्त की तब उस विजय के उपलक्ष मे आचार्य हेमचन्द्र ने जैन प्रतिनिधि के नाते उनका स्वागत किया[2]। यह घटना वि० स० ११६१–६२ मे घटित हुई होगी।

सिद्धराज जयसिह और आचार्य हेमचन्द्र का सम्बन्ध कैसा रहा होगा इसका अनुमान करने के लिए श्री सोमप्रभसूरि पर्याप्त जानकारी देते हैं[3]। "बुधजनो के चूडामणि आचार्य हेमचन्द्र भुवन-प्रसिद्ध सिद्धराज को सम्पूर्ण स्थानो मे पृष्टव्य हुए। मिथ्यात्व से मुग्धमति होने पर भी उनके उपदेश से जयसिह् जिनेन्द्र के धर्म मे अनुरक्तमना हुआ[4]। हेमचन्द्र के प्रभाव मे आकर जयसिह ने रम्य राजविहार बनवाया। इनके सस्कृत द्वयाश्रय महाकाव्य के

१– प्रो० पारीख – काव्यानुशासन – पृष्ठ ४०, प्रस्तावना

२– प्रभावकचरित – पृष्ठ ३०० श्लोक ७२.
 प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ६०–७३

३– कुमारपाल प्रतिबोध, पृष्ठ २२ गा० ओ० सी० बडोदा

४– महालयो महायात्रा महास्थान महासर।
 यत्कृत सिद्धराजेन क्रियते तत्रकेनचित्॥

अनुसार सिद्धराज ने सिद्धपुर मे महावीर स्वामी का मन्दिर भी बनवाया, सिद्धपुर मे चार जिन् प्रतिमाओ से समृद्ध सिद्धविहार बनवाया[१]।

मालव विजय के पश्चात् जयसिंह की मृत्यु पर्यन्त हेमचन्द्र का उससे सम्बन्ध रहा अर्थात् वि० सं० ११९१ से वि० स० ११९९ तक लगभग ७ वर्ष उनका जयसिंह से अटूट सम्बन्ध रहा। इन सात वर्षों मे हेमचन्द्र की साहित्यिक प्रवृत्ति के अनेक फल गुजरात के माध्यम से भारत को मिले। साहित्यक दृष्टि से पहला श्रेष्ठ फल है—सुप्रसिद्ध "शब्दानुशासन"। मालव विजय के पश्चात् भोज-व्याकरण के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए गुजरात का पृथक् व्याकरण ग्रन्थ सिद्धराज जयसिंह के आग्रह एव अनुरोध पर आचार्य हेमचन्द्र ने बनाया[२]। प्रत्येक पाद के अन्त में चालुक्य वशीय राजाओ की स्तुति मे श्लोक लिखे। काकल कायस्थ जो आठ व्याकरणो के ज्ञाता थे, इस व्याकरण के अध्यापक नियुक्त किये गये। सिद्धराज जयसिंह की प्रेरणा से ही हेमचन्द्र को व्याकरण, कोश, छन्द तथा अलङ्कारशास्त्र रचने का अवसर प्राप्त हुआ और अपने आश्रय-दाता राजा का कीर्तन करने वाले, व्याकरण सिखाने वाले, तथा गुजरात के लोक-जीवन के प्रतिबिम्ब को धारण करने वाले 'द्वयाश्रय' नामक महाकाव्य रचने की इच्छा हुई।

सिद्धराज जयसिंह के लिए "मिथ्यात्वमोहितमति" विशेषण संस्कृत ग्रन्थो में मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि वे अन्त तक शैव ही रहे हैं। फिर भी आचार्य हेमचन्द्र के साथ धर्म-चर्चा से उनमे जैनानुरक्ति जगी थी, ऐसा दिखाई देता है। अरबी भूगोलज्ञ अली इदसी ने लिखा है कि "जयसिंह बुद्ध प्रतिमा की पूजा करता था"। यह उल्लेख डॉ. बूल्हर ने किया है[३]। हेमचन्द्र का अमृतमय वाणी में उपदेश न मिलने पर जयसिंह के चित्त मे एक क्षण भी सन्तोष नही होता था, किन्तु सिद्धपुर मे महावीर स्वामी का मन्दिर बनवाने पर उसकी देखभाल करने के लिये ब्राह्मणो को नियुक्त करने से सिद्धराज जयसिंह की केवल जैनानुरक्ति ही परिलक्षित होती है।

सिद्धराज जयसिंह स्वय भी महान् विद्वान् था। 'मुद्रित—कुमुदचन्द्र' नाटक मे जयसिंह की विद्वत्सभा का वर्णन आता है। वह जैन सङ्घो का

१— सस्कृत द्वयाश्रय महाकाव्य — सर्ग १५, श्लोक १६

२— प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ६० तथा प्रबन्ध कोश —राजशेखरसूरि

३— लाईफ आफ हेमचन्द्र — डॉ. बूल्हर।

सम्मान करता था[1]। जब किसी सिद्धान्त के सम्बन्ध मे शङ्का उत्पन्न होती थी तब जयसिंह स्वय उसे दूर करता था। जयसिंह विद्वान् था। धर्मचर्चा सुनने की उसे बडी अभिरुचि थी। एक बार ससार-सागर से पार होने के इच्छुक सिद्धराज ने देवतात्व की पात्रता के विषय मे सब दार्शनिको से पूछा। सभी ने अपने-अपने मत की स्तुति एव पर मत की निन्दा की। तब उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के सम्मुख शङ्का प्रकट की कि "प्रभो! ससार सागर से पार करने वाला कौन सा धर्म है?" इस प्रश्न के उत्तर मे हेमचन्द्र ने शाम्ब का निम्न लिखित पुराणोक्त आख्यान कहा :—

"शंखपुर मे शाम्ब नामक एक सेठ और यशोमती नाम की उसकी पत्नी रहती थी। पति ने अपनी पत्नी से अप्रसन्न होकर एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। अब वह नवोढा के वश होकर बेचारी यशोमती को फूटी आँखो से देखना भी बुरा समझने लगा। यशोमती को अपने पति के इस व्यवहार से बडा कष्ट हुआ और वह प्रतिकार का उपाय सोचने लगी।

एक बार कोई कलाकार गौड देश से आया। यशोमती ने उसकी पूर्ण श्रद्धाभक्ति से सेवा की और उससे एक ऐसी औषधि ली, जिसके द्वारा पुरुष पशु बन सकता था। यशोमती ने आवेशवश एक दिन भोजन मे मिलाकर उक्त औषधि अपने पति को खिला दी, जिससे वह तत्काल बैल बन गया। अब उसे अपने इस अधूरे ज्ञान पर बडा दु ख हुआ। वह सोचने लगी कि वह उस बैल को पुरुष किस प्रकार बनाए? अत लज्जित और दु खित होकर जङ्गल मे एक वृक्ष के नीचे बैलरूपी पति को घास चराया करती थी और बैठी-बैठी विलाप करती रहती। दैवयोग से एक दिन शिव और पार्वती विमान मे बैठे हुए आकाश मार्ग से उसी ओर जा रहे थे। पार्वती ने, उसका करुण विलाप सुनकर शङ्कर भगवान् से पूछा, 'स्वामिन् इसके दु:ख का क्या कारण है?' शङ्कर ने पार्वती की शङ्का का समाधान किया और कहा कि इस वृक्ष की छाया मे ही इस प्रकार की औषधि विद्यमान है जिसके सेवन से यह पुन पुरुष बन सकता है। इस सवाद को यशोमती ने भी सुन लिया और उसने तत्काल ही उस छाया को रेखाङ्कित कर दिया और उसके समस्त मध्यवर्ती अङ्कुरो को तोड-तोड कर बैल के मुख मे डाल दिया। घास के साथ साथ औषधि के चले जाने पर वह बैल पुन पुरुष बन गया।"

१— मुद्रित-कुमुदचन्द्र अङ्क ५ – पृष्ठ ४५

आचार्य हेमचन्द्र ने आख्यान का उपसहार करते हुए कहा, "राजन् जिस प्रकार नाना प्रकार की घास के मिल जाने से यशोमती को औषधि की पहचान नही हो सकी, उसी प्रकार इस युग मे कई धर्मों से सत्य-धर्म तिरोभूत हो रहा है, परन्तु समस्त धर्मों के सेवन से उस दिव्य औषधि की प्राप्ति के समान पुरुष को कभी न कभी शुद्ध-धर्म की प्राप्ति हो ही जाती है[1]। जीव-दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवम् अपरिग्रह के सेवन से बिना किसी विरोध के समस्त धर्मों का आराधन हो जाता है। आचार्य के इस उत्तर ने समस्त सभासदो को प्रभावित किया। आचार्य हेमचन्द्र अनेकान्त को सर्व-दर्शन-सङ्ग्रह के रूप मे भी घटाते हैं[2]। यह सर्व-दर्शन मान्यता की दृष्टि साम्प्रदायिक चातुरी थी (जैसा कि डा० बूल्हर मानते है), अथवा सारग्राही विवेक-बुद्धि मे से परिणत थी, इसका निर्णय करने का कोई बाह्य साधन नहीं। परन्तु अनेकान्तवाद के रहस्यज्ञ हेमचन्द्र मे ऐसी विवेक-बुद्धि की सम्भावना है।

आचार्य हेमचन्द्र तथा उनके आश्रयदाता सिद्धराज जयसिंह लगभग समवयस्क थे। सिद्धराज का जन्म उनसे केवल तीन वर्ष पूर्व ही हुआ था। अत इन दो महानुभावो का परस्पर सम्बन्ध गुरु-शिष्य के समान कभी नही रहा प्रतीत होता है। फिर भी सिद्धराज सदैव हेमचन्द्र के प्रभाव मे रहे। हेमचन्द्र ने सर्व-दर्शन के सम्मत होने का उपदेश किया तो सिद्धराज ने सर्व धर्मों का समान आराधन किया। यही कारण है कि सिद्धराज ने प्रजाजनो के साथ सदैव अत्यन्त उदार व्यवहार किया। उसके राज्य मे वैदिक, सनातन धर्म के साथ जैन सम्प्रदाय की भी बहुत अभिवृद्धि हुई। जैन सम्प्रदाय की अभिवृद्धि मे सम्भवत सिद्धराज की माता मयणल्लादेवी भी कारण रही होगी, क्योकि वे स्वय जैन-धर्म मे दीक्षित थी। सिद्धसेन, दिवाकरसेन, उदयन आदि कुछ मन्त्री-गण भी जैन थे। जयसिंह ने वि० स० ११५१—११९९ तक राज्य किया। इनके स्वर्गवास के समय हेमचन्द्र की आयु ५४ वर्ष की थी। वे तब तक अच्छी प्रतिष्ठा पा चुके थे।

हेमचन्द्र और कुमारपाल—

सिद्धराज के कोई पुत्र नही था, इससे उनकी मृत्यु के पश्चात्

१— सर्वदर्शनमान्यता नामक प्रबन्ध—प्रबन्धचिन्तामणि-पृष्ठ ७०

२— सिद्धहेम— सकल दर्शनसमूहात्मकम् स्याद्वादसमाश्रयणम् अतिरमणीयम् पृष्ठ ८—सि हे शब्दानुशासन तत्व प्रकाशिका महार्णवन्यास Edited by प० भगवानदास, १९२१, पाटन

राजगद्दी का झगडा खडा हुआ और अन्त म कुमारपाल वि० स० ११९९ मे मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी को राज्याभिषिक्त हुआ ।

सिद्धराज जयसिंह अपने जीवन काल मे कुमारपाल को मारने की चेष्टा मे था[1] । अत यह अपने प्राण बचाने के लिए गुप्तवेष धारण कर भागता हुआ स्तम्भतीर्थ पहुँचा । यहाँ पर वह हेमचन्द्र और उदयन मन्त्री से मिला । दुखी होकर कुमारपाल ने हेमसूरि से कहा, "प्रभो ! क्या मेरे भाग्य मे इसी तरह कष्ट भोगना लिखा है, या और कुछ भी ?" सूरीश्वर ने विचार कर कहा, "मार्गशीर्ष बदी १४ मे आप राज्यासनासीन होंगे । मेरा यह कथन कभी असत्य नही हो सकता ।" उक्त वचन सुनकर कुमारपाल बोला, "प्रभो ! यदि आपका वचन सत्य सिद्ध हुआ तो आप ही पृथ्वीनाथ होंगे, मैं तो आपके चरणकमलो का सेवक बना रहूँगा ।" इस पर स्मित हास्य करते हुए सूरीश्वर बोले, हमे राज्य से क्या काम ? यदि आप राजा होकर जैन धर्म की सेवा करेंगे तो हमे प्रसन्नता होगी[2] । तदनन्तर सिद्धराज के भेजे हुए राजपुरुष कुमारपाल को ढूँढते हुए स्तम्भतीर्थ में ही आ पहुँचे । इस अवसर पर हेमचन्द्राचार्य ने उसे अपने वसतिगृह के भूमिगृह मे छिपा दिया और उसके द्वार को पुस्तकों से ढँक कर उसके प्राण बचाए । तत्पश्चात् सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु हो जाने पर हेमचन्द्र की भविष्यवाणी के अनुसार कुमारपाल सिंहासनासीन हुआ ।

राजा बनने के समय कुमारपाल की अवस्था ५० वर्ष की थी । इसका समर्थन 'प्रबन्धचिन्तामणि', 'पुरातनप्रबन्धगृह' तथा 'कुमारपालप्रबन्ध' से भी होता है । इसका लाभ यह हुआ कि उसने अपने अनुभव और पुरुषार्थ द्वारा राज्य की सुदृढ़ व्यवस्था की । यद्यपि यह सिद्धराज के समान विद्वान् और विद्या-रसिक नही था, तो भी राज्य प्रबन्ध के पश्चात् वह धर्म तथा विद्या से प्रेम करने लगा था ।

कुमारपाल की राज्य प्राप्ति का समाचार सुनकर हेमचन्द्रसूरि कर्णावती से पाटन आए । उदयन मन्त्री ने उनका स्वागत किया । इन्होंने मन्त्री

१– कुमारपाल को हीनकुल मे समझने के कारण ही सिद्धराज उसे मारना चाहते थे –नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ६ पृष्ठ ४४३–४६८

२– प्रबन्धचिन्तामणि –कुमारपालादि प्रबन्ध, पृष्ठ ७७–९८
कुमारपाल हेमसूरि समागम वर्णनम्, पृष्ठ ८२

से पूछा, "अब राजा मेरा स्मरण करता है या नही ?" इस पर मन्त्री ने सङ्कोच का अनुभव करते हुए, स्पष्ट कहा "नही, अब स्मरण नही करता"। सम्भवतः राज्य-प्रबन्ध मे बहुत अधिक व्यस्त होने के कारण तथा शत्रुओ का दमन करने मे रत होने के कारण कुमारपाल को स्वस्थ चिंतन करने का अवकाश नही मिला होगा। अस्तु।" तब सूरीश्वर हेमचन्द्र ने मन्त्री से कहा, "आज आप राजा से कहे कि वह अपनी नयी रानी के महल मे न जाए। वहाँ आज दैवी उत्पात होगा। यदि राजा आपसे पूछे कि यह बात किसने बतलायी तो बहुत आग्रह करने पर ही मेरा नाम बतलाना।" मन्त्री ने ऐसा ही किया। रात्रि को महल पर बिजली गिरी और रानी की मृत्यु हो गई। इस चमत्कार से अतिविस्मित हो राजा मन्त्री से पूछने लगा कि यह बात किस महात्मा ने बतलायी थी ? राजा के विशेष आग्रह करने पर मन्त्री ने गुरुजी के आगमन का समाचार सुनाया। राजा ने प्रमुदित होकर उन्हें महल मे बुलाया। सूरीश्वर पधारे। राजा ने उनका सम्मान किया और प्रार्थना की, 'उस समय आपने हमारे प्राणो की रक्षा की और यहाँ आने पर हमे दर्शन भी नही दिये। लीजिए अब आप अपना राज्य सम्हालिए'। सूरि ने प्रत्युत्तर मे कहा, "राजन् ! यदि कृतज्ञता के कारण प्रत्युपकार करना चाहते है तो आप जैन धर्म स्वीकार कर उस धर्म का प्रसार करें।" राजा ने शनै शनै उक्त आदेश को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की। कुमारपाल ने अपने राज्य मे प्राणिवध, मासाहार, असत्य भाषण द्यूत-व्यसन, वेश्या-गमन, पर-धन हरण, मद्य-पान आदि का निषेध कर दिया। कुमारपाल के आचार-विचार और व्यवहार देखने से अनुमान होता है, कि उसने जीवन के अन्तिम दिनो मे जैन धर्म स्वीकार कर लिया होगा।

आचार्य हेमचन्द्र के महावीर-चरित के कतिपय श्लोको के आधार पर कुमारपाल और हेमचन्द्र के मिलने के सम्बन्ध मे डा बूल्हर ने बताया है कि हेमचन्द्र कुमारपाल से तब मिले जब उनके राज्य की समृद्धि और विस्तार चरम सीमा पर पहुँच गया था[1]। डा. बूल्हर की इस मान्यता की आलोचना 'काव्यानुशासन' की भूमिका मे प्रो. रसिकलाल पारीख ने की है। उन्होंने उक्त कथन को विवादास्पद सिद्ध किया है। उनके मत के अनुसार महावीर चरित का वर्णन उन दोनो की परिपक्व सम्बन्ध-अवस्था का वर्णन है, प्रारम्भिक नही। फिर भी धर्म का विचार करने का अवसर उस प्रौढ़ वय मे राजा को राज्य की सुस्थिति के बाद ही मिला होगा।

१– महावीर-चरित श्लोक ५३ (४५-५८)

दोना के प्रथम मिलन के सम्बन्ध मे एक और घटना प्रकाश मे आयी है। एक बार कुमारपाल जयसिंह से मिलने गया था। मुनि हेमचन्द्र को व्यासपीठ पर बैठे देखकर वह अत्यधिक आकृष्ट हुआ और उनके भाषणकक्ष मे जाकर भाषण सुनने लगा। उसने पूछा, मनुष्य का सबसे बडा गुण क्या है ? हेमचन्द्र ने प्रत्युत्तर मे कहा, "दूसरो की स्त्रियो मे माँ–बहन की भावना रखना, सबसे बडा गुण है"। यदि यह घटना ऐतिहासिक है तो अवश्य ही वि स. ११६६ के आसपास घटी होगी क्योंकि उस समय कुमारपाल को अपने प्राणो का भय नही था[1]।

"कुमारपाल प्रतिबोध" के अनुसार मन्त्री वाग्भटदेव वाहडदेव द्वारा कुमारपाल के राजा होने के पश्चात् वह हेमचन्द्र के साथ गाढ परिचय मे आया होगा[2]।

प्रभावकचरित से ज्ञात होता है कि जब कुमारपाल अर्णोराज को जीतने मे असफल रहा तो मन्त्री वाहड की सलाह से उसने अजितनाथ स्वामी की प्रतिमा का स्थापन समारोह किया, जिसकी विधि आचार्य हेमचन्द्र ने सम्पन्न करायी थी[3]।

यह तो सत्य है कि राज्य-स्थापना के आरम्भ में कुमारपाल को धर्म के विषय मे सोच-विचार करने का अवकाश नही था, क्योकि पुराने राज्याधिकारियो से उसे अनेक प्रकार से सङ्घर्ष करना पडा था। वि स १२०७ के लगभग उसका जीवन आध्यात्मिक होने लगा था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हेमचन्द्र का सम्पर्क कुमारपाल से पहले ही हो चुका था। राजा होने के १६ वर्ष बाद उसने जैन धर्म अङ्गीकार किया था अथवा नही, इस विषय मे पर्याप्त मत-भेद है। श्री ईश्वरलाल जैन के अनुसार कुमारपाल न मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी वि स १२१६ को श्रावक धर्म के १२ व्रत स्वीकार कर विधि पूवक जैन धर्म मे दीक्षा ग्रहण की। जैन धार्मिक ग्रन्थो मे भी इस कथन की पुष्टि की है[4] किन्तु अन्य ग्रन्थो से इसकी पुष्टि न होने के कारण, यह बात विवादास्पद

१– काव्यानुशासन–भूमिका– PPcc Lxxxiii—ccLxxxIV

२– कुमारपाल प्रबन्ध, पृष्ठ १८–२२

३– प्रभावकचरित, पृष्ठ ३००–४००

४– द्वादशव्रत-अणुव्रत-५ गुणव्रत-३, शिक्षाव्रत-४, (पृष्ठ ४५)

प्रतीत होती है। प्रभासपट्टन के गण्ड 'भाव बृहस्पति' ने वि. सं. १२२६ के भद्रकाली शिलालेख मे कुमारपाल को "माहेश्वरनृपाग्रणी" कहा है। हेमचन्द्राचार्य के संस्कृत 'द्वयाश्रय' काव्य के २० वें सर्ग मे कुमारपाल की शिवभक्ति का उल्लेख है। यह सत्य प्रतीत होता है कि आचार्य हेमचन्द्र के उपदेश से कुमारपाल का जीवन क्रमश. उत्तरावस्था मे प्राय द्वादशव्रतधारी श्रावक जैसा हो गया था[1]। आचार्य हेमचन्द्र स्वय अपने ग्रन्थो मे कुमारपाल को "परमार्हत्' कहते हैं[2]। सोमप्रभकृत 'कुमारपाल प्रतिबोध' के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र ने राजा कुमारपाल को जैन धर्मावलम्बी बनाया[3]। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि उसने अपने कुलदेव शिव की पूजा छोड दी थी। कुमारपाल की सुप्रसिद्ध सोमेश्वर यात्रा से उसका शैव रहना ही अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है।

आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव से उनके निर्देशन मे ही कुमारपाल ने गुजरात को दुर्व्यसनो से मुक्त करने का योग्य प्रयास किया। द्यूत और मद्य का प्रतिबन्ध कर निर्वश के धनापहरण का नियम भी उसने बन्द करवाया। यज्ञ मे पशुहिंसा बन्द करवायी। कुमारपाल के सामन्तो के शिलालेखो के अनुसार उसके अधीन १८ प्रान्तो मे १४ वर्ष तक पशुवध के निषेध का आदेश प्रसारित हुआ[4]।

गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल के समकालीन होने पर भी आचार्य हेमचन्द्र का कुमारपाल के साथ गुरु-शिष्य जैसा सम्बन्ध था। इसी महापुरुष के प्रभाव मे कुमारपाल के राज्य मे जैन सम्प्रदाय ने सर्वाधिक उन्नति की। उसने अनेक जैन मन्दिर बनवाये; चौदह सौ (१४००) विहार भी बनवाये एव जैन धर्म को राज्य-धर्म बनाया। उसके कुमार विहार का वर्णन हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्रसूरि ने 'कुमारविहारशतक' मे किया है। 'मोहराज पराजय' नाटक मे इन घटनाओ का रूपकमय उल्लेख है। 'कुमारपाल'

१– ईश्वरलाल जैन–हेमचन्द्राचार्य–आदर्श ग्रन्थमाला मुलतान शहर

२– त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरितम्–पर्व १० प्रशस्तिः
चौलुक्यः परमार्हतो विनयवान् श्रीमलराजान्वयी।

३– भारतीय संस्कृति मे जैन धर्म का योगदान। –हीरालाल जैन, पृष्ठ १५

४– पूर्व वीरजिनेश्वरे—श्री हेमचन्द्रो गुरु।
पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह–कुमारपाल देव–तीर्थ यात्रा प्रबन्धः

ने अनेक तालाब, धर्मशालाएँ, विश्राम-स्थल, विहारादि आचार्य हेमचन्द्र की प्रेरणा से ही बनवाये। इनमे दीक्षाविहार, धुन्धुका मे झोलिकाविहार, पिता की स्मृति मे त्रिभुवनपालविहार, अपनी स्मृति मे कुमारविहार, मूषकविहार, करम्बविहार इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। श्री तारङ्गतीर्थ अजितनाथ भगवान का विशाल एवम् गगनचुम्बी शिखर, सैंकडो नवीन मन्दिर, हजारो पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार कुमारपाल ने करवाया। केदार तथा सोमनाथ का भी उद्धार उसी ने किया। उसने सात बडी यात्राएँ की और ९ लाख रत्न पूजा मे चढाये[1]।

कुमारपाल की प्रार्थना पर आचार्य हेमचन्द्र ने 'योगशास्त्र', 'वीतरागस्तुति' एवम् 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' पुराण की रचना की। सस्कृत मे 'द्वयाश्रय काव्य के अन्तिम सर्ग तथा प्राकृत द्वयाश्रय कुमारपाल के समय मे ही लिखे गये। 'प्रमाणमीमासा' की रचना इसी समय मे हुई। हेमचन्द्र ने पूर्व रचित ग्रन्थो मे सशोधन, स्वोपज्ञ टीकाएँ एव 'अभिधान चितामणि' मे कुमारपाल की प्रशस्ति लिखी है। कुमारपाल ने ७०० लेखको को बुलवाकर हेमचन्द्र के ग्रन्थ लेखबद्ध करवाये। उसन २१ बडे ज्ञान भाण्डार निर्मित कराये।

आचार्य हेमचन्द्र के आस्थान (विद्या-मण्डप) का मनोहर वर्णन 'प्रभावक चरित' में मिलता है। 'हेमचन्द्र का आस्थान, जिसमे विद्वान प्रतिष्ठित थे, ब्रह्मोल्लास का निवास और भारती का पितृगृह था। यहाँ महाकवि अभिनव ग्रन्थ निर्माण मे निमग्न थे। वहाँ पट्टिका और पट्ट पर लेख लिखे जा रहे थे एवम् शब्द-व्युत्पत्ति के लिए उहापोह होते रहने से वहाँ पुराण कवियो द्वारा प्रयुक्त शब्द दृष्टान्त रूप से उल्लिखित किये जाते थे। सम्भवत सिद्धराज ने आचार्यजी को एक विशाल ग्रथालय सुगम किया होगा। जैन लोग कहते हैं कि १०० शिष्यो का परिवार उन्हे नित्य घेरे रहता था और जो ग्रन्थ गुरु लिखाते थे, उनको वह लिख लिया करता था।

साहित्यिक जीवन— प्रभावशाली व्यक्तित्व—अवसान

आचार्य हेमचन्द्र का जीवन जैन धर्म के प्रचार मे तथा कुमारपाल को उपदेश देते हुए साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे सर्जना करते हुए ही व्यतीत होने लगा। उन्होने ४–५ हजार सूत्रो मे 'शब्दानुशासन' को पूरा करके १८,००० श्लोको की बृहद्वृत्ति तथा सामान्य पाठको के लिए लघुवृत्ति भी लिखी। उसमे गणपाठ, धातुपाठ, उणादि लिङ्गानुशासन प्रकरण भी जोडे। समस्त व्याकरण

१—हेमचन्द्राचार्य–ईश्वरलाल जैन

को सूत्रानुक्रम से उद्घृत करते हुए 'कुमारपाल-चरित्र' भी एक विशाल द्वयाश्रय काव्य के रूप मे रचा, एक व्यक्ति की व्याकरणशास्त्र की यह उपासना अनुपमेय है। फिर जब पुराण, काव्य, दर्शन, कोश, छन्द आदि विपयो की उनकी अन्य कृतियो का भी लेखा-जोखा लगाया जाता है ; तब उनकी आश्चर्यजनक प्रतिभा के प्रति अपार श्रद्धा जागृत होती है।

आचार्य हेमचन्द्र के प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे विन्टरनित्ज महोदय ने लिखा है कि 'आचार्य हेमचन्द्र के कारण ही गुजरात श्वेताम्बरियो का गढ बना तथा वहाँ १२ वी १३ वी शताब्दी मे जैन–साहित्य की विपुल समृद्धि हुई। विन्टरनित्ज महोदय के अनुसार वि० स० १२१६ मे कुमारपाल पूर्णतया जैन बने तथा उनकी दीक्षा के दिन पृथ्वीपाल मन्त्री की प्रार्थना पर हरिभद्रसूरि ने "नेमिचरित" को पूरा किया। इसीलिये जैन साहित्य मे विशेषकर धार्मिक क्षेत्र मे हेमचन्द्र का नाम अग्रणी है। गुजरात मे तो जैन सम्प्रदाय के विस्तार का सबसे अधिक श्रेय इन्हे ही है।

आचार्य हेमचन्द्र उत्कृष्ट ज्योतिषी थे। उन्होने कुमारपाल को राज्यारोहण की तिथि बता दी थी तथा दैवी दुर्घटना की सूचना देकर कुमारपाल के प्राण बचाये थे।

हेमचन्द्र अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे। धार्मिक उदारता भी उनमे थी। प्रबन्धचिन्तामणि मे इस विषय मे एक सुन्दर उपाख्यान दिया है। 'एक बार राजा कुमारपाल के सामने किसी मत्सरी ने कहा, "जैन प्रत्यक्ष देव सूर्य को नही मानते।" इस पर हेमचन्द्र ने उत्तर दिया "वाह ! कैसे नही मानते ?"

अधाम धाम धामैव वयमेव हृदिस्थितम् ।
यस्यास्तव्यसनें प्राप्ते त्यजामो भोजनोदके ॥

अर्थात् हम जैन लोग ही प्रकाश के धाम श्री सूर्यनारायण को अपने हृदय मे

१—प्रभावक्चरित पृष्ठ ३१४ श्लोक २६२–२६४

२—मोहराजपराजय अङ्क ५ तथा काव्यानुशासन प्रस्तावना पृष्ठ २८६ तथा २६१

3. History of Indian Literature by Winternitz, Vol. II Page – 482 – 83; 5 II

स्थित रखते हैं, उनके अस्तरूपी व्यसन को प्राप्त होते ही हम लोग अन्न-जल तक त्याग देते हैं। इस उत्तर को सुनकर उन ईर्ष्यालुओं का मुँह बन्द हो गया।

आचार्य हेमचन्द्र मे सर्वधर्म-सहिष्णुता बहुत थी। एक बार देवपत्तन के पुजारियो ने आकर राजा से निवेदन किया "सोमनाथ का मन्दिर बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गया है"। उनकी प्रार्थना सुनते ही राजा ने जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ कर दिया। कुछ दिनो पश्चात् फिर वहाँ के मन्दिर के सम्बन्ध मे पञ्चकुल का पत्र आया। तब राजा कुमारपाल ने गुरु हेमचन्द्र से पूछा "इस धर्म-भवन के निर्माणार्थ क्या करना चाहिये।" हेमचन्द्र ने कहा "आपको या तो ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए देवार्चन मे सलग्न रहना चाहिये अथवा मन्दिर के ध्वजा-रोपण तक मद्य-मास के त्याग का व्रत धारण करना चाहिये।" राजा ने सूरीश्वर के परामर्शानुसार उक्त व्रत धारण किया। 'प्रबन्धचिन्तामणि' मे अन्य उपाख्यान भी हैं जिनसे उनकी धार्मिक उदारता प्रकट होती है।

जब राजा कुमारपाल ने सोमनाथ की यात्रा की तो आचार्य हेमचन्द्र को भी साथ मे चलने का निमन्त्रण दिया। उन्होने तुरन्त स्वीकार कर उत्तर दिया– 'भला भूखे से निमन्त्रण का आग्रह क्या? हम तपस्वियो का तो तीर्थाटन मुख्य धर्म ही है"। इसके पश्चात् राजा ने उनको सुखासन वाहनादि ग्रहण करने को कहा। परन्तु उन्होने पैदल यात्रा करने की इच्छा प्रकट की और कहा कि हमारा विचार शीघ्र ही प्रयाण करने का है जिससे शत्रुञ्जय, गिरनारादि महा-तीर्थों की भी यात्रा कर आपके पहुँचते-पहुँचते हम देवपत्तन पहुँच जाएँ। राजा ने यात्रा आरम्भ की। वे देवपत्तन के निकट आ पहुँचे, परन्तु वहाँ आचार्यजी के दर्शन नहीं हुए, पर जब नगर मे राजा का प्रवेशोत्सव सम्पन्न किया जा रहा था उस समय सूरीश्वर भी उपस्थित थे। राजा ने बहुत भक्ति से सोमनाथ के लिङ्ग की पूजा की और गुरु से कहा कि आपको कोई आपत्ति न हो तो आप भी त्रिभुवनेश्वर श्री सोमेश्वर देव का अर्चन करें। आचार्य हेमचन्द्र ने आह्वान अवगुण्ठन मुद्रा, मन्त्र, न्यास विसर्जनादि स्वरूप पचोपचार विधि से शिव की पूजा की तथा निजनिर्मित श्लोको से स्तुति की[१]। कहा जाता है कि उन्होने

१ —भव बीजाङ्कुर जननारा गाढा क्षयमुपा गता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णु वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै।।

इस अवसर पर राजा को साक्षात् महादेव के दर्शन कराये। इस पर राजा ने कहा कि महर्षि हेमचन्द्र सब देवताओं के अवतार और त्रिकालज्ञ हैं। इनका उपदेश मोक्षमार्ग को देने वाला है। संस्कृत द्वयाश्रय काव्य के सर्ग ५, श्लोक १३३–१४१ मे शिवस्तुति द्रष्टव्य है।

कुमारपाल ने जीवहिंसा का सर्वत्र निषेध करा दिया था। इनकी कुल-देवी कण्टेश्वरी देवी के मन्दिर मे पशुबलि होती थी। आश्विन मास का शुक्ल-पक्ष आया तो पुजारियो ने राजा से निवेदन किया कि यहाँ पर सप्तमी को ७०० पशु और ७ भैसे, अष्टमी को ८०० पशु और ८ भैसे, तथा नवमी को ६०० पशु और ६ भैसे राज्य की ओर से देवी को चढाये जाते हैं। राजा इस बात को सुनकर आचार्य हेमचन्द्र के पास गया, और इस प्राचीन कुलाचार का वर्णन किया। उन्होने कान मे ही राजा को समझा दिया। इसे सुनकर राजा ने कहा, अच्छा, जो दिया जाता है वह हम भी यथाक्रम देंगे। तदनन्तर राजा ने देवी के मन्दिर मे पशु भेजकर उनको ताले मे बन्द करा दिया और पहरा रख दिया। प्रात काल स्वयम् राजा आया और देवी के मन्दिर के ताले खुलवाये। वहाँ सब पशु आनन्द से लेटे थे। राजा ने कहा देखिये, ये पशु मैंने देवी को भेंट किये थे, यदि उन्हे पशुओं की इच्छा होती तो वे इन्हे खा लेती, परन्तु देवी ने एक पशु को भी नही खाया। इससे स्पष्ट है कि उन्हे मास अच्छा नही लगता। तुम उपासको को ही यह भाता है। राजा ने सब पशुओ को छुडवा दिया। दशमी की रात को राजा को कण्टेश्वरीदेवी स्वप्न मे दिखायी दी और उन्होने राजा को शाप दिया जिससे वह कोढ हो गया। मन्त्री उदयन ने बलि देने की सलाह भी दी, परन्तु राजा ने किसी के प्राण लेने की अपेक्षा अपने प्राण देना अच्छा समझा। जब आचार्य हेमचन्द्र को इस सङ्कट का पता लगा तो उन्होने जल मन्त्रित करके दे दिया जिससे राजा का दिव्यरूप हो गया। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र की महत्ता के सम्बन्ध मे अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं[1]।

कहा जाता है कि काशी से विश्वेश्वर नामक कवि पाटन आया और वहाँ हेमचन्द्र की विद्वत्समिति मे सम्मिलित हुआ। उसने वक्रोक्ति से हेमचन्द्र के प्रति

१– हेमसूरी दर्शित कुमारपालस्य सोमेश्वर प्रत्यक्षम्-पृष्ठ ८४-८५ तथा 'प्रबन्ध-कोश'-पृष्ठ ४७-४८।

इङ्गित करते हुए कहा "कम्बल और लट्ठ लिये हुए हेमग्वाल तुम्हारी रक्षा करे।" इतना कह वह चुप हो गया। कुमारपाल भी वहाँ विद्यमान थे। इस वाक्य को निन्दाविधायक समझ उनकी त्योरी चढ गई। हेम कवि को तो लोगो के हृदय और मस्तिष्क की परीक्षा करनी थी, उसने यह दृश्य देखकर तुरन्त अधोलिखित श्लोकार्ध पढा जिसका आशय है कि वह गोपाल जो षड्दर्शन रूपी पशुओं को जैन तृणक्षेत्र मे हाँक रहा है[1]। इस उत्तरार्द्ध से उसने समस्त सभ्यो को सन्तुष्ट कर दिया।

कुमारपाल ने अपने धर्मगुरु आचार्य हेमचन्द्रसूरी के पास जैन धर्म की गृहस्थ दीक्षा (श्रावक धर्म-व्रत) स्वीकार करते समय सबसे पहले जब अहिंसा-व्रत स्वीकार किया, उस समय को लक्ष्य करके रूपकात्मक प्रबन्ध का प्रणयन प्रबन्धचिन्तामणि के परिशिष्ट मे किया गया है। इसमे अहिंसा को एक राजकन्या माना है जो हेमचन्द्र के आश्रम मे पलकर बडी उम्रवाली वृद्धाकुमारी हो गई है। अन्यान्य राजाओ के अधार्मिक आचरण देखकर वह किसी के साथ विवाह करना नही चाहती। कुमारपाल, जो हेमचन्द्र का शिष्य बना है, उसके धर्मभाव से मुग्ध होता है। आचार्य के आदेश से वह उसका पाणिग्रहण कर लेता है।

कुमारपाल हेमचन्द्र के पास विद्याध्ययन करते थे। वे विद्वत्सभा मे समस्या-पूर्ति तो करते ही थे; तीर्थयात्रा मे वे कुमारपाल के साथ यात्रा भी करते थे। एक बार यात्रा करते हुए वे सम्पूर्ण सङ्घ के साथ धुन्धुक्क नगर मे आये। वहाँ उन्होने आचार्य के जन्मस्थान मे स्वयम् बनाये हुए १७ हाथ ऊँचे झोलिकाविहार मे महोत्सव किया[2]।

हेमचन्द्र के प्रभाव से महान शैव मठाधीश गण्ड बृहस्पति जैन आचार्यों का वन्दन करते थे। इतना होने पर भी वे अन्ध-श्रद्धा के पक्षपाती नही थे। उन्होंने महावीर-स्तुति मे स्पष्ट कहा है—"हे वीर प्रभु केवल श्रद्धा से ही आपके

१– पातु वो हेमगोपाल कम्बलं दण्डमुद्वहन्।
षड्दर्शनपशुग्रामं चारयन् जैन-गोचरे॥ प्रभावकचरित-पृष्ठ ३१२ श्लोक ३०४

२– प्रबन्धचिन्तामणि कुमारपालादि प्रबन्ध-पृष्ठ ८४

प्रति पक्षपात नही है और नही किसी के द्वेष के कारण दूसरे से अरुचि है; मन्त्रो, आगमो के ज्ञान और यथार्थ परीक्षा के बाद तेरी शरण ली है[१]। आचार्य केवल भावनाप्रधान नही थे, बुद्धिप्रधान थे तथा वे कालिदास की उक्ति "सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते" के अनुसार व्यवहार करने वाले थे।

वृद्धावस्था मे हेमचन्द्रसूरि को लूता रोग लग गया, परन्तु अष्टागयोगाभ्यास द्वारा लीला के साथ उन्होने उस रोग को नष्ट किया। ८४ वर्ष की अवस्था मे अनशनपूर्वक अन्त्याराधन क्रिया उन्होने आरम्भ की तथा कुमारपाल से कहा "तुम्हारी आयु के भी ६ मास शेष हैं।" कुमारपाल को धर्मोपदेश देते हुए दशम् द्वार से उन्होने प्राण-त्याग कर दिया[२]। इस प्रकार वि० स० १२२९ मे आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की। उनके शरीर की भस्म को इतने लोगो ने अपने मस्तक पर लगाया कि अन्त्येष्टि-क्रिया के स्थान पर एक गडढा हो गया जो आज भी हेमखड्ड के नाम से प्रसिद्ध है। श्री हेमचन्द्राचार्य का समाधि-स्थल शत्रुञ्जय पहाड पर स्थित है। दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनो-ही इन स्थानो की भक्तिभाव से यात्रा करते हैं। प्रभावकचरित के अनुसार राजा कुमारपाल को आचार्य का वियोग असह्य रहा और छ. मास पश्चात् वह भी स्वर्ग सिधार गया।

इस तरह यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति नही होगी कि तर्क, लक्षण, और साहित्य मे पाण्डित्य प्राप्त करने के साधन देकर हेमचन्द्र ने गुजरात को स्वावलम्बी बनाया। हेमचन्द्र गुजरात के विद्याचार्य हैं। भारतवर्ष के संस्कृत-साहित्य के इतिहास मे इन्हें महापण्डितो की प्रथम पद्धति मे स्थान प्राप्त है गुजरात मे उनका स्थान राजा-प्रजा के आचार सुधारक रूप से महान् आचार्य का है। हेमचन्द्र का व्यक्तित्व बहुमुखी था। ये एक साथ महान् सन्त, शास्त्रीय विद्वान, वैयाकरण, दार्शनिक, काव्यकार, योग्य लेखक और लोक-चरित के अमर सुधारक थे। इनके व्यक्तित्व मे स्वर्णिम प्रकाश की वह आभा थी जिसके प्रभाव से सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल जैसे सम्राट आकृष्ट हुए थे। ये

१— न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचि परेषाम्
यथावदाप्तता तात परीक्षयाच त्वामेव वन्दे। प्रभुमाश्रिता स्मः॥
महावीर स्तुति—श्लोक ५

२— हेमाचार्य कुमारपालयो मृत्युवर्णनम्—प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ—९५

विश्वबन्धुत्व के पोषक और अपने युग के प्रकाश-स्तम्भ ही नहीं, अपितु युग-युग के प्रकाश-स्तम्भ हैं। इस युग-पुरुष को साहित्य और समाज सर्वदा नतमस्तक हो नमस्कार करता रहेगा।

हेमचन्द्र और उनका युग

आचार्य हेमचन्द्र का युग गुजरात के साहित्य एवम् संस्कृति के इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इस समृद्धि के लिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ पूर्णतया अनुकूल थीं। अनहिलवाड मे चालुक्य वंश के मूल प्रतिष्ठापक श्री मूलराज से लेकर कुमारपाल के उत्तराधिकारियों तक जो नृप हुए उनमे चरित्र एवम् सद्गुणो का उत्तरोत्तर विकास पाया जाता है। मन्दिरो का जीर्णोद्धार करना, नवनिर्माण करना तथा धर्मप्रसार मे योगदान देना इन राजाओ का आनुवंशिक कार्य था[१]। सातवी शती के दो गुर्जर नरेशों जयभट और दण्ड के दानपत्रों मे 'वीतराग' और 'प्रशान्तराग' विशेषण पाये जाते हैं, वे उनके जैनानुराग को ही प्रकट करते है[२]। मूलराज ने अनहिलवाड मे 'मूलवसतिका' नामक जैन मन्दिर बनवाया। देवगुप्त के शिष्य शिवचन्द्र तथा उनके शिष्यो ने गुर्जर देश मे जैन धर्म का खूब प्रचार किया और उसे बहुत से जैन मन्दिरो के निर्माण द्वारा अलङ्कृत किया।

भीम के राज्य मे जैन धर्म का विशेष प्रसार हुआ। उसके मन्त्री प्राग्वाट वंशी विमलशाह ने आबू पर आदिनाथ का वह जैन मन्दिर बनवाया जिसमे भारतीय स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट दर्शन होते है। इसकी सूक्ष्म चित्रकारी, बनावट की चतुराई तथा सुन्दरता जगत्-विख्यात है। इस प्रकार १२ वी शताब्दी मे गुजरात के सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास की विधायक कड़ी के रूप मे आचार्य हेमचन्द्र युगान्तरकारी और युगसंस्थापक व्यक्तित्व को लेकर अवतीर्ण हुए थे।

आचार्य हेमचन्द्र ने पूर्व प्रसिद्ध सभी आचार्यों से प्रेरणा प्राप्त की होगी। संस्कार समृद्धि का उन्हे जरूर लाभ मिला होगा। हरिभद्रसूरि, जिन्होने 'षड्दर्शनसमुच्चय' की रचना श्रीमाल नगर मे ही की थी, हेमचन्द्र की महत्वा-

१ —चौलुक्य कुमारपाल—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी।

२— "भारतीय संस्कृति मे जैन धर्म का योगदान" डा० हीरालाल जैन

भाषा के प्रेरणा-स्रोत बन होंगे। 'रत्नाकरावतारिका' के रचयिता श्री रत्नप्रभसूरि हेमचन्द्र के ज्येष्ठ समकालीन ही थे। इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियो का लाभ हेमचन्द्र को पूरा-पूरा मिला होगा।

हेमचन्द्र सिद्धराज जयसिंह के सभापण्डित थे। उस समय सिंह नामक साख्यवादी, जैन वीराचार्य, 'प्रमाणनयतत्त्वालोक', और 'स्याद्वाद-रत्नाकर' नामक टीका के रचयिता, प्रसिद्ध तार्किक वादि देवसूरि प्रख्यात विद्वान् थे। 'कुमुदचन्द्र' नाटक मे जयसिंह की विद्वत्सभा का वर्णन है। उसमे तर्क, भारत, पाराशर, महर्षिसम महर्षि, शारदा देश के सुविख्यात 'उत्साह' पण्डित, सागरसम सागर पण्डित तथा प्रमाणशास्त्र पारङ्गत 'राम' का उल्लेख है। वडनगर की प्रशस्ति के रचयिता प्रज्ञाचक्षु प्राग्वाट् (पोरवाड), कवि श्रीपाल और महाविद्वान् महामति भागवत एवम् देवबोध परस्पर स्पर्धा करते हुए भी जयसिंह को मान्य थे। वाराणसी के भावबृहस्पति ने भी पाटन मे आकर शैवधर्म के उद्धार के लिए जयसिंह को समझाया था। इसी भावबृहस्पति को कुमारपाल ने सोमनाथ पाटन का गण्ड (रक्षक) भी बनाया था। इसके अतिरिक्त मलधारी हेमचन्द्र 'गणरत्नमहोदधि' के कर्ता वर्धमानसूरि, 'वाग्भटालङ्कार' के कर्ता वाग्भट आदि विद्वान् पाटन मे प्रसिद्ध थे। जिस पण्डित-मण्डल मे आचार्य हेमचन्द्र ने प्रसिद्धि प्राप्त की वह साधारण नही था, किन्तु उनका प्रभाव प्रारम्भ से ही अक्षुण्ण रहा।

श्री देवसूरि, जो वादिदेवसूरि नाम से प्रसिद्ध थे, आचार्य हेमचन्द्र के साथ सिद्धराज जयसिंह की सभा मे थे। एक बार कुमुदचन्द्र नामक दिगम्बर विद्वान् कर्णावती मे आये। शास्त्रार्थ का दिन निश्चित हुआ। मयणल्ला देवी कुमुदचन्द्र की पक्षपातिनी थी। उस सभा मे प्रभु श्री देवसूरि ने मुनीन्द्र हेमचन्द्र के साथ एक ही आसन को अलङ्कृत किया था। हेमचन्द्र ने अवस्था मे कम होने पर भी आचार्यत्व की दृष्टि से वरिष्ठ होने के नाते, देवसूरि की सहायता की। उस समय सम्भवत देवसूरि के समान हेमचन्द्र प्रसिद्ध नही थे। वाद-विवाद के अन्त मे कुमुदचन्द्र ने कहा, 'श्री देवाचार्य ने मुझे जीत लिया'। श्री हेमचन्द्र ने कहा, 'सूर्य के समान देवाचार्य कुमुदचन्द्र को न जीत पाते तो श्वेताम्बर ससार मे कौन कटि मे वस्त्र पहनने पाता।' 'प्रबन्धचिन्तामणि' के अनुसार

इस वाद-विवाद सभा मे काक्ल कायस्थ भी उपस्थित थे। प्रभावक् के अनुसार उत्साह पण्डित भी वहाँ विद्यमान थे।

समकालीन आचार्यो मे हेमचन्द्र का स्थान सर्वोपरि माना जाता है, क्योकि समकालीन आचार्यो ने विशेषकर धार्मिक एवम् दार्शनिक पक्ष का ही मण्डन किया था। कुछ विद्वानो ने तीर्थङ्करो के चरित्र भी लिखे। किन्तु साहित्य, दर्शन एवम् धर्म के प्रत्येक पहलू पर समान रूप से साधिकार प्रकाश डालने वाला एक भी लेखक नही हुआ। देवसूरी ने 'प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कार' तथा 'स्याद्वादरत्नाकर' नामकवृहट्टीका की रचना की, किन्तु वे टीकाएँ हेमचन्द्र की प्रमाणमीमासा से निकृष्ट हैं। श्री दत्तसूरि के प्रशिष्य और यशोभद्रसूरि के, जिनका निर्वाण गिरनार मे हुआ, शिष्य प्रद्युम्नसूरि ने 'स्थानक प्रकरण' लिखा। उनके शिष्य देवचन्द्र ने स्थानक प्रकरण पर टीका तथा 'शान्तिजिन चरित' लिखा। देवचन्द्र ने 'चन्द्रलेखा विजय प्रकरण' भी लिखा। हरिभद्रसूरि ने स० १२१६ मे 'नेमिचरित' पूरा किया। सोमप्रभसूरि ने 'कुमारपाल प्रति बोध' लिखा जिसमे हेमचन्द्र की महत्ता पर प्रकाश डाला गया। यशपाल ने 'मोहराज विजय' नाटक मे कुमारपाल के जैनधर्म-वरण के विषय मे वर्णन किया है। सोमदेव के पुत्र वाग्भट ने 'नेमिनाथ चरित' लिखा। आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य-सम्प्रदाय भी बहुत बडा था। सम्राट कुमारपाल, उदयन मन्त्री आम्रभट्ट, वाग्भट, चाहड, खोलक, राजवर्गीया प्रजावर्गीय, आदि श्रावक शिष्यो के अतिरिक्त प्रबन्धशतकर्तृ कवि रामचन्द्रसूरि, अनेकार्थ कोश के टीकाकार महेन्द्रसूरि, गुणचन्द्रगणि, वर्धमानगणि, देवचन्द्रगणि, यशश्चन्द्रगणि, महान्वैयाकरण उदयचन्द्रगणि आदि इनके शिष्य थे।

इस प्रकार इस युग मे साहित्य-सर्जना पर्याप्त मात्रा मे हुई यद्यपि इसमे टीकाएँ तथा सार अधिक हैं। वास्तु-कला पर इस युग का प्रभाव पडा। कला की दृष्टि से भी यह युग बडा सफल रहा है। वास्तु कला की विभिन्न शैलियो का विकास हेमचन्द्र-युग मे ही हुआ। जैनो ने भवन-निर्माण मे बहुत अधिक रुचि दिखायी। हेमचन्द्र के प्रभाव से गुजरात, काठियावाड, कच्छ, राजपूताना एवम् मालवा मे जैनधर्म फैला। कुमारपाल प्रतिबोध के अनुसार पाटन मे कुमार-विहार, पार्श्वनाथ मे २४ तीर्थंकरो के सोने, चाँदी एवम् तांबे की प्रतिमाएँ हैं, तथा त्रिभुवन विहार मे ७२ मन्दिर, जिनमे नेमिनाथ की सोने की प्रतिमा है, बने हैं। कुमार विहार मे चैत्र और आश्विन की पूर्णिमा को रथ-यात्रा निकलती थी।

माण्डलिक राजाओं ने भी अपने-अपने नगरो मे विहार बनवाये । गुजरात मे वास्तु-कला मे निष्णात लोगों की मांग दक्षिण मे भी की जाती थी । उस युग मे विद्या और कला को जो प्रेरणा मिली थी, उससे हेमचन्द्र को भी विद्वान् होने के साधन सुलभ हुए होंगे ।

अनुश्रुति के अनुसार मालवा-विजय के पश्चात् सिद्धराज जयसिंह ने अवन्तिनाथ का विरुद धारण किया था । चालुक्य वश मे मालवा के साथ प्रतिस्पर्धा एवम् ईर्ष्या की भावना राजा भीमदेव प्रथम से चली आरही थी । अचार्य हेमचन्द्र के समय यह राजनीतिक स्पर्धा साहित्यिक स्पर्धा मे परिणत हो गयी । मालवा की विजय के पश्चात् साहित्य एवम् सस्कृति के क्षेत्र मे भी मालवा पर विजय प्राप्त कर सिद्धराज जयसिंह ने अवन्तिनाथ विरुद यथार्थ किया । साहित्यिक क्षेत्र मे गुजरात को विजयश्री प्रदान करने हेतु आचार्य हेमचन्द्र ने प्रत्येक क्षेत्र मे मौलिक साहित्य की रचना की ।

हेमचन्द्र का रचनाकाल

आचार्य हेमचन्द्र का सिद्धराज जयसिंह के साथ प्रथमपरिचय लगभग वि० स० ११६६ के बाद हुआ होगा, क्योकि सूरिपद प्राप्त होने के बाद ही उन्हे राजाश्रय मिला होगा । जयसिंह ने वि० स० ११९१-९२ मे मालवा पर विजय प्राप्त कर अवन्तिनाथ का विरुद धारण किया । तब सिद्धराज के आग्रहानुसार हेमचन्द्र ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ शब्दानुशासन 'सिद्धहेम' व्याकरण नाम से लिखा । प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार यह ग्रन्थ एक वर्ष मे पूर्ण हुआ । 'सपादलक्षप्रमाण ग्रन्थ सवत्सरे रचयाचक्रे' इस व्याकरण मे सवा लाख पङ्क्तियाँ थी । इतना बडा ग्रन्थ एक वर्ष मे पूरा हुआ होगा इसमे सन्देह है । डा० बूल्हर ने 'सिद्धहेम' की प्रशस्ति के आधार पर यह कहा है कि मालव-विजय के पश्चात् एवम् तीर्थ-यात्रा से पूर्व व्याकरण-रचना सम्पन्न हुई होगी जिसके लिये वे ३ वर्ष का समय मानते हैं । दो-तीन वर्ष का समय ग्रहीत कर लेने पर शब्दानुशासन का रचनाकाल वि० स० ११९२-९५ तक माना जा सकता है । डा० बूल्हर के मत से दोनो कोश जयसिंह की मृत्यु के पूर्व रचे गये होंगे । इसी प्रकार सस्कृत द्वयाश्रय के प्रथम चौदह सर्गों की भी रचना उनके सामने ही हुई होगी, किन्तु सम्पूर्ण द्वयाश्रय काव्य वि० स० १२२० के पूर्व नही हो सका होगा ।

तदनन्तर उन्होंने 'काव्यानुशासन' लिखा होगा । 'काव्यानुशासन' मे कुमारपाल का कही भी नाम नही है । अत उक्त ग्रन्थ कुमारपाल से पूर्व जय-

सिंह के राज्य मे ही 'शब्दानुशासन' के बाद लिखा गया होगा। इसका रचना-काल वि. सं. ११९५–९६ तक होना सम्भव है। 'हैम बृहद्‌वृत्ति' के व्याख्याकार पं. चन्द्रसागर सूरि के मतानुसार हेमचन्द्राचार्य ने व्याकरण की रचना सं० ११९३–९४ मे की थी। डा० बूल्हर के मत से 'काव्यानुशासन' तथा 'छन्दोऽनुशासन' कुमारपाल के प्रारम्भिक राज्यकाल में रचे गये होंगे। बूल्हर का का मत, कि 'छन्दोऽनुशासन' में राजा की स्तुति नहीं है, भ्रान्त है। 'छन्दोऽनुशासन' मे सिद्धराज जयसिंह एवम् कुमारपाल दोनों की स्तुतियाँ है। जिनमे ४ जयसिंह के लिए तथा ४९ दूसरे चालुक्य नृपो के लिए हैं; किन्तु अधिकाश मे कुमारपाल की स्तुतियाँ है। अतः 'छन्दोऽनुशासन' कुमारपाल के राज्यकाल मे ही रचा गया होना चाहिये।

राजा कुमारपाल के आग्रह से आचार्य हेमचन्द्र ने 'योगशास्त्र', 'वीतरागस्तुति', 'कुमारपाल चरित' (प्राकृत द्वयाश्रय काव्य) एवम् 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' की रचना की। उनकी अन्तिम रचना 'प्रमाणमीमासा' थी, यह उनकी स्वलिखित प्रस्तावना से सिद्ध होता है[१]। कुमारपाल का शासन-काल वि० सं० १२२९ तक था और वही हेमचन्द्र का जीवन-काल था। वे कुमारपाल के ६ मास पूर्व ही स्वर्गवासी हो चुके थे, अत हेमचन्द्र का रचना-काल निश्चित रूप से वि० सं० ११९२ से १२२८ तक माना जा सकता है। डा० बूल्हर के मत से कुमारपाल के प्रारम्भिक राज्यकाल मे कोशो के शेष परिशिष्ट तथा 'देशी नाममाला' की रचना हुई होगी। तीन निघण्टु इसी काल के हैं। देशी नाममाला की विस्तृत टीका का रचना-काल डा० बूल्हर वि० स० १२१४–१५ मानते हैं। 'योगशास्त्र' तथा 'वीतरागस्तोत्र', वि० स० १२१६ के पश्चात् लिखे गये होंगे। तत्पश्चात् टीका लिखी गयी होगी। 'त्रिषष्ठिशलाका-पुरुष चरित' का रचना-काल डा० बूल्हर वि० स० १२१६–१२२९ के बीच मानते हैं। 'कुमारपाल चरित', 'सस्कृत द्वयाश्रय काव्य' के अन्तिम पाँच सर्ग तथा 'अभिधान चिन्तामणि' की टीका भी इसी काल की समझनी चाहिये; क्योंकि 'अभिधान चिन्तामणि' मे 'योगशास्त्र' एवम् 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' दोनो

१ —आनन्तर्यो वाय शब्दः शब्दकाव्यछन्दो नु शासनेभ्योऽनतर प्रमाण मीमास्यत इत्यर्थः इति स्वयमेव आचार्योक्त्यैव प्रतीयते—आर्हतमत प्रभाकर प्रकाशन प्रमाणमीमासा-मोतीलाल लाधाजी, १९६ भवानी पेठ, पूना, तथा त्रि० प० पु० च० १८–१९

का उल्लेख है। निश्चित रूप से वि० सं० १२१६ के पश्चात् अनेकार्थ कोश की टीका आचार्य की दृष्टि के पश्चात् महेन्द्रसूरि शिष्य ने लिखी होगी। डा० बूल्हर 'प्रमाणमीमांसा' को वि० सं० १२१६–२९ के बीच मे रखते है। इस तरह, आचार्य का रचना-काल सं० ११९२ से आरम्भ होता है तथा १२२९ तक समाप्त होता है।

हेमचन्द्र के संस्कृत ग्रन्थों की संख्या और उनका विषयानुसार वर्गीकरण

हेमचन्द्र द्वारा रचित पङ्क्तियों की संख्या ३॥ करोड़ बतायी जाती है। यदि हम इसे अतिशयोक्ति मान लें, तो उनकी १०० से अधिक रचनाएँ होगी। रचनाओ को देखने से यह स्पष्ट होता है कि हेमचन्द्र अपने समय के अद्वितीय विद्वान थे। साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास मे किसी दूसरे ग्रन्थकार की इतनी अधिक और विविध विषयो की रचनाएँ उपलब्ध नही हैं। रचनाओ की संख्या के सम्बन्ध मे 'प्रभावकचरित' का हेमसूरि प्रबन्ध द्रष्टव्य है *जिसमे* १२ *ग्रन्थों* के नाम गिनाये हैं–

> व्याकरणं पंचागं प्रमाणशास्त्रं प्रमाणमीमांसाम्।
> छन्दोलकृति चूडामणीच शास्त्रे विभुर्व्यधित॥
> एकार्थानकार्था देश्या निगण्टु इति च चत्वारः।
> विहिताश्च नाम कोशाः भुवि कविता नयुपाध्यायाः॥
> त्रयुत्तरषष्ठिशलाका–नरेशव्रत गृहिव्रत विचारे।
> अध्यात्म योगशास्त्रं विदधेच द्वयाश्रयं महाकाव्यम्॥
> चक्रे विंशतिमूच्चैः स वीतरागस्तवानाच।
> इति तद्विहित ग्रन्थ-सङ्ख्यैव हि न विद्यते॥
> नामापि न विदन्त्यन्येत्वा मादृशा मंदबुद्धयः॥ ८३२–८३६

काव्यमाला सीरीज् के अन्तर्गत काव्यानुशासन की प्रस्तावना मे औफ्रेचेट कॅटलॉग (Aufrech's catalogus) दिया हुआ है। उस सूची के अनुसार 'अनेकार्थ कोश' अनेकार्थ शेष, 'अभिधानचिन्तामणि', (नाममाला व्याख्या) 'अलङ्कार चूडामणि', 'उणादि सूत्रवृत्ति', 'काव्यानुशासनम्' 'छन्दोऽनुशासनम्' तदवृतिः 'देशीनाममाला', सवृत्ति, द्वयाश्रय काव्य, सवृत्ति, धातुपाठ सवृत्ति, धातुपारायण सवृत्ति, धातुमाला, नाममाला शेष, निघण्टु शेष, प्रमाणमीमासा सवृत्तिः बलाबल सूत्र बृहदवृतिः बालभाषा व्याकरण सूत्रवृत्ति, योग-शास्त्र, विभ्रमसूत्र लिङ्गानुशासन सवृत्ति, शब्दानुशासन सवृत्ति, शेष सङ्ग्रह, शेष सङ्ग्रह सारोद्धार इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ मानी गयी हैं।

डा० हीरालाल जैन के अनुसार हेमचन्द्र ने 'उत्तराध्ययन' पर टीका लिखी थी। 'सर्वदर्शन सङ्ग्रह' मे हेमचन्द्र के नाम पर दो ग्रन्थो के नाम और हैं 'आवश्यक सूत्र भाष्यवृत्ति' तथा 'आप्तनिश्चयालङ्कार'। सम्भवतः माधवाचार्य के समय इन ग्रन्थो की प्रसिद्धि रही होगी, इसलिये 'सर्वदर्शन सङ्ग्रह' मे उनका उल्लेख है। 'आप्तनिश्चयालङ्कार' का उल्लेख श्री वरदाचारी ने भी किया है। साथ मे 'लघुअर्हन्नीति' नामक नवीन सक्षिप्त ग्रन्थ का उल्लेख किया है। कही-कही 'न्याय बलाबलसूत्राणि' तथा 'सप्तसन्धान महाकाव्यम्' के उल्लेख मिलते हैं। विषयानुसार महत्वपूर्ण रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

(१) पुराण—'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित'— इसमे सस्कृत काव्य शैली द्वारा जैनधर्म के २४ तीर्थंकरो, १२ चक्रवर्तियो, ९ नारायणो, ९ प्रतिनारायणों एवम् ९ बलदेवो, इस प्रकार ६३ प्रमुख व्यक्तियो के चरितो का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ पुराण और काव्य-कला दोनो ही दृष्टि से उत्तम है। परिशिष्ट पर्व तो भारत के प्राचीन इतिहास की गवेषणा मे बहुत उपयोगी है।

(२) काव्य—'द्वयाश्रय काव्य'— इस नाम के दो कारण हैं। प्रथम कारण तो यह है कि संस्कृत और प्राकृत दोनो ही भाषाओ मे लिखा गया है। द्वितीय कारण यह भी सम्भव है कि इस कृति का उद्देश्य अपने समय के राजा कुमारपाल का चरित्र वर्णन करना है। और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य सस्कृत और प्राकृत व्याकरण के सूत्र-क्रमानुसार नियमो के उदाहरण प्रस्तुत करना है।

(३) स्तोत्र—'द्वात्रिंशिकाएँ'— स्तोत्र-साहित्य की दृष्टि से उत्तम कृतियाँ 'वीतरागस्तुति' और 'महावीर स्तोत्र' भी सुन्दर मान जाते हैं। 'वीतराग स्तोत्रो की सख्या २० है।

(४) व्याकरण —'शब्दानुशासन'— सस्कृत- प्राकृत दोनो भाषाओ के लिए यह व्याकरण उपयोगी और प्रामाणिक माना जाता है। इसमे सूत्रवृत्ति, लघु तथा बृहद्वृत्ति, तथा गणपाठ, धातुपाठ, उणादि सूत्र मिलाकर ८४००० श्लोक हैं।

(५) छन्द —'छन्दोऽनुशासन' —इसमें सस्कृत, प्राकृत एवम् अपभ्रंश-साहित्य के छन्दों का निरूपण किया गया है। इन्होने छन्दो के उदाहरण अपनी मौलिक रचनाओ द्वारा दिये है। इसमें रसगङ्गाधर के समान सब कुछ आचार्य का अपना है।

(६) अलङ्कार —'काव्यानुशासन'— यह अपने विषय का साङ्गो-

पाठ्य ग्रन्थ है। ग्रन्थकार ने स्वयम् ही सूत्र, अलङ्कार–चूडामणि नाम की वृत्ति एवम् विवेक नाम की टीका लिखी है। इसमे काव्य के प्रयोजन, हेतु अर्थालङ्कार, गुण-दोष, ध्वनि इत्यादि सिद्धान्तो पर हेमचन्द्र ने गहन एवम् विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है।

(७) **कोश** —इनके ४ प्रसिद्ध कोश हैं– १, 'अभिधान चिन्तामणि' २, 'अनेकार्थसङ्ग्रह' ३, 'निघण्टु' ४, देशीनाममाला'। प्रथम मे"अमरकोश के समान संस्कृत की एक वस्तु के लिए अनेक शब्दो का उल्लेख है। दूसरा कोश एक शब्द के अनेक अर्थों का निरूपण करता है। तीसरा वनस्पति शास्त्र का कोश है। चौथा ऐसे शब्दो का कोश है जो उनके संस्कृत अथवा प्राकृत व्याकरण से सिद्ध नही होते। प्राकृत, अपभ्रंश एवम् आधुनिक भाषाओ के अध्ययन के लिए यह कोश बहुत ही उपयोगी है।

(८) न्याय– 'प्रमाणमीमांसा — इसमे प्रमाण और प्रमेय का सविस्तार विवेचन विद्यमान है।

(९) **योगशास्त्र**– इसमे जैन-दर्शन के ध्येय के साथ योग की प्रक्रिया के समन्वय का प्रयास किया गया है। इसकी शैली पतंजली के योगसूत्र से मिलती है। पर विषय और वर्णनक्रम दोनो मे मौलिकता और भिन्नता है।

द्वादश व्रत—
अणुव्रत–५– १ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह।
गुणव्रत–३– १ दिग्विरति, २ भोगोपभोगमान और ३ अनर्थ दण्ड विरमण।
शिक्षाव्रत–४– १ सामयिकव्रत, २ देशावकासिक, ३ पोषध और अतिथि संविभाग।

आचार्य के ३६ गुण—
(१) तप १२– १ अनशन, २ अवमौदर्य, ३ वृत्तिपरिसंख्यान, ४ रसपरित्याग, ५ विविक्तशैय्यासन, ६ कायक्लेश, ७ प्रायश्चित्त, ८ विनय, ९ वैयावृत्य, १० स्वाध्याय, ११ व्युत्सर्ग और १२ ध्यान।
(२)धर्म १०– १ उत्तमक्षमा, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ शौच, ५ सत्य, ६ संयम, ७ तप, ८ त्याग, ९ आकिंचन्य और १० ब्रह्मचर्य।

अध्याय–२

हेमचन्द्र के काव्य-ग्रन्थ

द्वयाश्रय काव्य तथा कुमारपालचरितम्

आचार्य हेमचन्द्र ने अनेक विषयो पर विविध प्रकार के काव्य रचे हैं। उनके काव्य-साहित्य मे इतिहास है, पुराण है, दर्शन है एवम् भक्ति भी है। सत्य बात यह है कि आचार्य मूलत. जैनधर्म के उद्धारक एवम् प्रचारक रहे हैं। जीवन का प्रधान लक्ष्य जैनधर्म का प्रचार होने के कारण उनकी प्रत्येक साधना उसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर अग्रसर हुई। अश्वघोष के समान हेमचन्द्र भी सोद्देश्य काव्य-रचना मे विश्वास रखते थे। इनका काव्य "काव्यमानन्दाय," न होकर 'काव्यम् धर्म-प्रचाराय' है। ऐसी रचनाओ मे काव्य-तत्व के विशेषरूप से न रहने पर भी समाज के अभ्युदय के लिए योजना अवश्य होती है। काव्य के मुख्य प्रयोजन के साथ आश्रयदाता की पाण्डित्यपूर्ण प्रशसा एवम् धर्म-गुरु तीर्थङ्करो के प्रति भक्ति-भावयुक्त श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना भी उनके काव्य का उद्देश्य प्रतीत होता है। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र के काव्य तीन श्रेणियों मे विभाजित किये जा सकते हैं-- (१) ऐतिहासिक काव्य (२) पुराण (३) भक्ति एवम् दर्शन काव्य। उनका द्वयाश्रय महाकाव्य निश्चितरूप से ऐतिहासिक काव्य है। 'त्रिषष्ठिश लाका पुरुष चरित' एक पुराण काव्य है, जिसमे जैनधर्म एवम् संस्कृति का विशद् वर्णन है। 'द्वात्रिंशिका' के अन्तर्गत दो छोटे-छोटे काव्य हैं जिनमे जैन-दर्शन की दृष्टि से स्वमत मण्डन एवम् परमत खण्डन विद्यमान है। 'वीतराग स्तोत्र' विशुद्ध रूप से भक्तिकाव्य है जिसका सस्कृत स्तोत्र-साहित्य मे महत्व पूर्ण स्थान है।

संस्कृत द्वयाश्रय काव्य—

शास्त्र-काव्य की परम्परा मे आचार्य हेमचन्द्र के द्वयाश्रय काव्य का स्थान अपूर्व है। उनका यह काव्य व्याकरण, इतिहास और काव्य तीनो का वाहक है[1]। "द्वयाश्रय" काव्य मे दो भाग है। "द्वयाश्रय" नाम से ही स्पष्ट है कि उसमे दो तथ्यो को सन्निवद्ध किया गया है। प्रथम भाग मे २० सर्ग और २८८८ श्लोक है। द्वितीय भाग ८ सर्गो मे विभाजित है। यह प्राकृत-भाषा का काव्य है। ऐतिहासिक लक्ष्य के साथ-साथ निश्चित् रूप से व्याकरण भी इसका लक्ष्य है। क्योंकि अपने ही व्याकरण मे दिये हुए नियमों के उदाहरणो को दिखाना भी इस काव्य का प्रयोजन है। अत इसमे चालुक्य वश के चरित्र के साथ व्याकरण के सूत्रो के उदाहरण प्रस्तुत किये गये है[2]। इस काव्य मे कुमारपाल एवम् उनके पूर्वजो का वृत्तान्त विस्तृत रूप मे मिलता है जो चालुक्य वंश के इतिहास के लिए स्पष्टतया मूल्यवान है। कल्हण के अनन्तर रचे गये ऐतिहासिक काव्यो मे जैन मुनि हेमचन्द्र विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अनहिलवाड के चालुक्य वशीय राजा कुमारपाल के सम्मानार्थ 'द्वयाश्रय' काव्य की रचना की। प्राकृत द्वयाश्रय काव्य को कुमारपालचरित भी कहते हैं। जैन कवि हेमचन्द्र ऐतिहासिक विषय पर निबद्ध महाकाव्यो की रचना में नितान्तदक्ष हैं; परन्तु इनका साहित्यिक तथा ऐतिहासिक मूल्य परिवर्तनशील है[3]। हेमचन्द्र ने द्वयाश्रय काव्य मे गुजरात के राजाओ का चरित अपने आश्रयदाता एवम् प्रिय-शिष्य कुमारपाल तक निबद्ध किया है। यह ऐतिहासिक होने के साथ-साथ शास्त्र-काव्य भी है तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ के व्याकरण जानने के लिए नितान्त उपयोगी है।

हेमचन्द्र का संस्कृत द्वयाश्रय[4] काव्य बहुगुण सम्पन्न है। इस महाकाव्य मे उन्होंने सूत्रो का सन्दर्भ देकर अपनी विशिष्ठ प्रतिभा का परिचय दिया है। इसमे सृष्टि-वर्णन, ऋतु-वर्णन, रस-वर्णन, आदि सभी महाकाव्य के गुण वर्तमान हैं।

---

१ —विश्व-साहित्य की रूप-रेखा—भगवतशरण उपाध्याय।

२ —संस्कृत-साहित्य का इतिहास—ए०बी०कीथ—तथा बलदेव उपाध्याय

३ —संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा—नाथूराम व्यास और चन्द्रशेखर पाण्डे तथा रामजी उपाध्याय का संस्कृत-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

४ —द्वयाश्रय काव्य Commentary by अभयतिलक गणी Vor I & II by A. V. Kathawate ; Bombay, Sanskrit and Prakirt series vol I, 1921, Vol II, 1915

सक्षेप मे द्वयाश्रय महाकाव्य की विषय-वस्तु निम्नानुसार है :—

संस्कृत-कवि परम्परा का अनुसरण करते हुए आचार्य हेमचन्द्र भी मङ्गलाचरण से काव्य का आरम्भ करते हैं। तत्पश्चात् चालुक्य वश की स्तुति, अणहिलपट्टन का रस-भरित वर्णन करके चालुक्य वश के मूल-पुरुष मूलराज का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। यहाँ प्रथम सर्ग समाप्त होता है। मूलराज के स्वप्न मे श्री शम्भु का उपदेश, बन्दीकृत प्रभात-वर्णन, ग्राहरिपु को दण्ड देने के लिए मन्त्रियो को प्रोत्साहन, इत्यादि वर्णन मे द्वितीय सर्ग समाप्त होता है। तृतीय सर्ग शरत्काल-वर्णन से आरम्भ होता है। तत्पश्चात् मूलराज की विजय-यात्रा का उपक्रम, प्रस्थान, जम्बूमालि मे सरोवर के किनारे सेना-निवास का सुन्दर वर्णन आता है। चौथे सर्ग मे मूलराज के पास ग्रहारि के दूत का आगमन, सम्भाषण, मूलराज का सम्यक् उत्तर, मूलराज के द्वारा प्रेषित दूत का ग्रहारि को सन्देश, ग्रहारि का रण के लिए प्रस्थान, मार्ग मे अरिष्ट दर्शन, देवतायन तोडते हुए जम्बूमालि मे आगमन, इत्यादि बातें समाहित है। पञ्चम सर्ग मे वीर-रसपूर्ण युद्ध-वर्णन है। ग्रहारि की प्राण-रक्षा के लिए उसकी पत्नी की याचना, मूलराज के राजधानी मे पुनरागमन के साथ यह सर्ग समाप्त होता है। मूलराज के चामुण्डराज नाम का पुत्र होता है। चामुण्डराज का वर्णन यहाँ प्रारम्भ होता है। लाट देश के राजा को दण्ड देने के लिए मूलराज तथा चामुण्डराज दोनो प्रवप्रवती तटपर गये। दोनो के युद्ध-वर्णन, लाट हनन के पश्चात् चामुण्ड के राज्याभिषेक तथा मूलराज के स्वर्ग-गमन वर्णन मे छठा सर्ग समाप्त होता है। [illegible]ामुण्डराज के वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज के नाम तीन पुत्र हुए। वल्लभराज द्वारा मालव देश पर आक्रमण, वहाँ शीतलिका रोग से पीडित होकर वल्लभराज का स्वर्ग-गमन, चामुण्ड का पुत्र शोक, दूसरे पुत्र दुलभराज को गद्दी पर बैठाकर नर्मदा किनारे तप करने के लिए चामुण्डराज का गमन दुर्लभराज का महेन्द्र की बहन दुर्लभ देवी के स्वयम्वर मे जाना, विवाह करना, विवाहोत्सव का वर्णन, नागराज का भी महेन्द्र की दूसरी भगिनी से विवाह, तत्पश्चात् युद्ध के लिए तैयार नृप-गण को मार कर राजधानी मे दुर्लभराज का पुनरागमन, इत्यादि विषय सप्तम सर्ग मे वर्णित हैं। नागराज को भीम नाम का पुत्र हुआ। भीम का राज्याभिषेक, भीम का चर से भाषण, सिन्धु-पति हम्मुक और भीमराज का युद्ध, हम्मुक की पराजय, इत्यादि विषय अष्टम सर्ग मे सम्मिलित हैं। भीमदेव का चेदि देश,गमन, दूत का आगमन, सम्मान, भीमराज का वापस चला आना; भीमराज के क्षेमराज और कर्णदेव नामक दो पुत्र हुए।

क्षेमराज के देवप्रसाद नाम का पुत्र हुआ। कर्ण का राज्याभिषेक, भीमराज का स्वर्गगमन,क्षेमराज का सरस्वती नदी के पास मण्डूकेश्वर पुण्यक्षेत्र मे तप करना, उनकी सेवा के लिए पुत्र देवप्रसाद का जाना, उसे दधिस्थली का प्राप्त होना, जयकेशी की पुत्री मयणल्ल देवी से कर्ण का विवाह; इन सब बातो का वर्णन नवम् सर्ग मे है। दशम् सर्ग मे कर्ण का सन्तान रहित रहना, लक्ष्मी देवी भवनगमन, लक्ष्मी देवी की उपासना, वर्षा ऋतु का वर्णन, प्रलोभनार्थ अप्सराओ का आगमन, कर्ण का स्थिरत्व, भग्नमनोरथा अप्सराओ का चला जाना, फिर किसी उग्र पुरुष का कर्ण को खाने के लिए दौडना, कर्ण का अविचलित रहना, अन्त मे लक्ष्मी देवी का प्रसन्न होना, कर्ण के द्वारा लक्ष्मी की स्तुति, पुत्र-प्राप्ति का वर देकर लक्ष्मी का अतर्द्धान होना, कर्णराज का राजधानी वापस लौटना वर्णित है। ग्यारहवें सर्ग मे लक्ष्मी देवी की कृपा से श्रीमती मयणल्ला देवी गर्भवती रहती है तथा दसवें मास मे जयसिंह का जन्म होता है। यहाँ बाल-वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है। जयसिंह का राज्याभिषेक कर कर्ण देव स्वर्ग सिधार जाते हैं। देवप्रसाद अपना पुत्र त्रिभुवनपाल जयसिंह के हाथो मे देकर चिता में प्रवेश करते हैं। बारहवें सर्ग मे राक्षसो का उपद्रव बताने के लिए ऋषियो का आगमन होता है। तदनुसार बर्बर राक्षसो का वध करने के लिए जयसिंह प्रस्थान करते हैं। युद्ध होता है। अन्त मे पत्नी की प्रार्थना पर जयसिंह राक्षस को छोड देते हैं और फिर घर आते हैं। तेरहवें सर्ग मे बर्बर राक्षसो ने कई भेंटें दी उनसे जयसिंह का अच्छा मनोरंजन होता है। जनश्रुति सुनने के लिए जयसिंह नगर के बाहर जाते हैं। वहाँ सरस्वती नदी के किनारे नागमिथुन-दर्शन होता है। दूसरे दिन रात मे योगिनी के साथ राजा का वार्तालाप होता है। चौदहवें सर्ग में यशोवर्मा राजा को मित्र बनाकर कालिका योगिनी की पूजा करता है। राजा सेना के साथ प्रस्थान करता है। अन्त मे यशोवर्मा राजा को बाँधता है। पन्द्रहवें सर्ग मे सिद्धराज जयसिंह राजधानी मे आकर उद्दण्डो को दण्ड देता है। सोमनाथ की पवित्र यात्रा करता है। वहाँ कुमारपाल राजा होगा, ऐसा कहकर शम्भु अतर्द्धान हो जाते हैं। यहाँ यात्रा-वर्णन, ऋतु-वर्णन, तथा मन्दिर-स्थापना का अति सुन्दर वर्णन है। अन्त मे जयसिंह का स्वर्ग-गमन होता है। सोलहवें सर्ग मे कुमारपाल का राज्याभिषेक होता है। उस समय पर्याप्त लोग इसका विरोध करते हैं। कुमारपाल अर्बुदगिरि जाते हैं। यहाँ अर्बुद पर्वत का सुन्दर वर्णन है। प्राय सभी ऋतुओ का वर्णन यहाँ आता है। सत्रहवें सर्ग मे स्त्रियो का पुष्पोच्चय, वल्लभो के साथ गमन, नदी, जलक्रीडा, निशा, सुरत, सूर्योदय, आदि का

सुन्दर वर्णन है। अट्ठारहवें सर्ग मे कुमारपाल का अर्णोराज से युद्ध का वर्णन है तथा उसमे अर्णोराज का पराभव बतलाया गया है। उन्नीसवें सर्ग मे अर्णोराज जल्हण कन्या को कुमारपाल को देते हैं। कुमारपाल उससे विवाह करते है। इस बात का विरोध करने वाले वल्लाल का सेनापति पराभव करते हैं। अन्यान्य शत्रुओ को जीतकर कुमारपाल पृथ्वी का न्यायपूर्वक शासन करते हैं। बीसवें सर्ग मे एक दिन रात मे उनका एक ग्रामीण से सवाद होता है। कुमारपाल आर्मा घोषणा कर पति-पुत्र हीन स्त्री की आत्मोत्सर्ग से रक्षा करते हैं तथा अनाथो की सम्पत्ति न लेने का नियम बनाते है। यहाँ केदार हर्म्य का सुन्दर वर्णन है। अणहिलपुर मे कुमारपालेश्वर नामक देवपत्तन, पितृवेश्मन कुमारपाल बनवाते है।

इस काव्य की श्लोक-सख्या सर्गानुसार इस प्रकार है—

सर्ग १,-२०१, सर्ग २-११०, सर्ग ३-१६०, सर्ग ४-०६४, सर्ग ५-१४२, सर्ग ६-१०७, सर्ग ७-१४२, सर्ग ८-१२५, सर्ग ९-१७२, सर्ग १०-०९०, सर्ग ११-११८, सर्ग १२-८१, सर्ग १३-११०, सर्ग १४-०७४, सर्ग १५-१२४, सर्ग १६-०९७, सर्ग १७-१३८, सर्ग १८-१०६, सर्ग १९-१२७, सर्ग २०-१०२,

वर्णन की दृष्टि से प्रथम सर्ग मे नगर-वर्णन, दूसरे सर्ग में प्रभात-वर्णन, तीसरे, दसवें, पन्द्रहवे, और सोलहवें सर्ग मे विविध ऋतुओ का वर्णन, पाँचवें, छठे, आठवें, बारहवें, तथा अठ्ठाहरवें सर्ग मे युद्ध वर्णन, सातवें तथा पन्द्रहवें सर्ग मे यात्रा वर्णन, सोलहवें सर्ग मे पर्वत-वर्णन, उन्नीसवें सर्ग मे विवाह वर्णन, सत्रहवें सर्ग मे स्त्रियो का पुष्पोच्चय, वल्लभो के साथ गमन, नदी, जलक्रीडा, निशा, सुरत, एवम् सूर्यदोय आदि का वर्णन है। सस्कृत महाकाव्य के सभी लक्षण इसमे विद्यमान हैं। अत महाकाव्य की दृष्टि से भी यह एक अत्यन्त सफल रचना है।

प्राकृत द्वयाश्रय काव्य अथवा कुमारपालचरित—

आचार्य हेमचन्द्र ने स्वरचित प्राकृत-व्याकरण के नियमो को स्पष्ट करने के लिए प्राकृत-द्वयाश्रय काव्य की रचना की। इसमे ८ सर्ग है। आरम्भ के ६ सर्गों मे महाराष्ट्रीय प्राकृत के उदाहरण और नियम वर्णित हैं। शेष दो सर्गों मे शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश भाषा के उदाहरण प्रयुक्त हैं। 'कुमारपालचरित' के अन्तिम सर्ग मे १४-८२ तक पद्य अपभ्रंश मे मिलते हैं। इन पद्यो मे धार्मिक उपदेश भावना प्रधान है। अपभ्रंश

मे अनेक नये छन्दो का प्रादुर्भाव हुआ जिनका संस्कृत मे अभाव है। अपभ्रंश मे ह्रस्व और दीर्घ स्वर के व्यत्यय के नियम का हेमचन्द्र ने निर्देश किया है। जैसे–सरस्वती-सरसई, माला-माल, ज्वाला-जाल, मारिअ-मारिआ। इस काव्य का प्राकृत मे वही महत्व और स्थान है जो संस्कृत मे भट्टि काव्य का, किन्तु भट्टि काव्य मे वह पूर्णता तथा क्रमबद्धता नही है जो हेमचन्द्र की कृति मे मिलती है। यह शास्त्रीय काव्य है। इस पर पूर्ण कलश गणी की संस्कृत टीका भी है।

कथावस्तु—

अणहिलपुर नगर मे कुमारपाल शासन करता था। इसने अपने भुजबल से राज्य की सीमा को बहुत विस्तृत किया था। प्रात.काल स्तुति-पाठक अपनी स्तुतियाँ सुनाकर राजा को जाग्रत करते थे। शयन से उठकर राजा नित्यकर्म कर तिलक लगाता और द्विजो से आशीर्वाद प्राप्त करता था। वह सभी लोगो की प्रार्थनाएँ सुनता, मातृगृह मे प्रवेश करता और लक्ष्मी की पूजा करता था। तत्पश्चात् व्यायाम शाला मे जाकर व्यायाम करता था। इन समस्त क्रियाओ के अनन्तर वह हाथी पर सवार होकर जिन-मन्दिर में दर्शन के लिए जाता था। वहाँ जिनेन्द्र भगवान की विधिवत पूजा-स्तुति करने के अनन्तर संगीत का कार्यक्रम आरम्भ होता था। तदनन्तर वह अपने अश्व पर आरूढ होकर धवलगृह मे लौट आता था।

मध्याह्न के उपरात कुमारपाल उद्यान-क्रीडा के लिए जाता था। इस प्रसङ्ग मे कवि ने वसन्त ऋतु की सुषमा का व्यापक वर्णन किया है। क्रीडा मे सम्मिलित नर-नारियो की विभिन्न स्थितियाँ वर्णित हैं। जब ग्रीष्मऋतु का प्रवेश होता है, तो कवि ग्रीष्म की उष्णता और दाह का वर्णन करता है। इस प्रसङ्ग मे राजा की जल-क्रीडा का विवरण दिया गया है। वर्षा, हेमन्त और शिशिर, इन तीनो ऋतुओ का चित्रण भी सुन्दर किया है। उद्यान से लौटकर राजा कुमारपाल अपने महल मे आता है और सान्ध्य-कर्म करने मे सलग्न हो जाता है। चन्द्रोदय होता है। कवि आलङ्कारिक शैली मे चन्द्रोदय का वर्णन करता है। कुमारपाल मण्डपिका मे बैठता है, पुरोहित मन्त्रपाठ करता है। बाजे बजते हैं, और वारवनितायें थाली मे दीपक रखकर उपस्थित होती हैं। राजा के समक्ष सेठ, सार्थवाह आदि महाजन आसन ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् सन्धि-विग्राहिक राजा के बलवीर्य का यशोगान करता हुआ विज्ञप्ति पाठ आरम्भ

करता है—"हे राजन् ! आपकी सेना के योद्धाओ ने कोकण देश मे पहुँच कर मल्लिकार्जुन नामक कोकणाधीश की सेना के साथ युद्ध किया और मल्लिकार्जुन को परास्त किया है। दक्षिण दिशा को जीत लिया गया है। पश्चिम का सिन्धु देश आपके अधीन हो गया है। यवन नरेश ने आपके भय से ताम्बूल का सेवन त्याग दिया है। वाराणसी, मगध, गौड, कान्यकुब्ज, चेदि, मथुरा और दिल्ली आदि नरेश आपके वशवर्ती हो गये हैं।"

इन क्रियाओ के अनन्तर राजा शयन करने चला जाता है। सोकर उठने पर परमार्थ की चिन्ता करता है। आठवें सर्ग मे श्रुतदेवी के उपदेश का वर्णन है। इसमे मागधी पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश के उदाहरण आये हैं। इस सर्ग मे आचार सम्बन्धी नियमो के साथ उनकी महत्ता एवम् उनके पालन करने का फल भी प्रतिपादित है।

आलोचना—

इस महाकाव्य की कथा-वस्तु एक दिन की प्रतीत होती है। यद्यपि कवि ने कथा को विस्तृत करने के लिए ऋतुओ तथा उन ऋतुओ मे सम्पन्न होने वाली क्रीडाओ का व्यापक चित्रण किया है, तो भी कथा का आयाम महाकाव्य की कथा-वस्तु के योग्य बन नही सका है। विज्ञप्ति निवेदन मे दिग्विजय का चित्रण आ गया है। पर यह भी कथा-प्रवाह मे साधक नही है। कथा की गति वर्तुलाकार-सी प्रतीत होती है। और, दिग्विजय का चित्रण उस गति मे मात्र बुलबुला बनकर रह गया है। अत सक्षेप मे इतना ही कहा जा सकता है कि इस महाकाव्य की कथा-वस्तु का आयाम बहुत छोटा है। एक अहोरात्र की घटनाएँ रस-सचार करने की पूर्ण क्षमता नही रखती है।

नायक का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र समक्ष नही आ पाता है। उसके जीवन का उतार-चढ़ाव प्रत्यक्ष नही हो पाया है। अत धीरोदात्त नायक के चरित्र का सम्पूर्ण उद्घाटन न होने के कारण कथा-वस्तु मे अनेकरूपता का अभाव है। अवान्तर-कथाओ की योजना भी नही हो पायी है। विज्ञप्ति मे निवेदित घटनाएँ नायक के चरित्र का अग बनकर भी उससे पृथक जैसी प्रतीत होती हैं। अतएव कथा-वस्तु मे शैथिल्य दोष होने के साथ कथानक की अपर्याप्तता नामक दोष भी है।

वस्तु-वर्णन की दृष्टि से यह महाकाव्य सफल है। ऋतु-वर्णन, सन्ध्या, उषा, प्रात काल एवम् युद्ध आदि के दृश्य सजीव हैं। व्याकरण के उदाहरणो को समाविष्ट करने के कारण कृत्रिमता अवश्य है। पर इस कृत्रिमता ने काव्य के सौन्दर्य को अपकर्षित नही किया है। प्राकृतिक दृश्यो के मनोरम चित्रण और प्रौढ़ व्यञ्जनाओ ने काव्य को प्रौढता प्रदान की है। इसमे सन्देह नही कि शास्त्रीय काव्य में व्याकरण के जटिल नियमो के उदाहरण उपस्थित करने हेतु कथानक में सर्वाङ्गपूर्णता का सन्निवेश होना कठिन हो गया है। वस्तु-विन्यास में प्रबन्धात्मक प्रौढता आडम्बर युक्त उदाहरणो के कारण नही आने पायी है। फिर भी कथानक में चमत्कार-कमनीयता का अभाव नही है। यह काव्य कलावादी है। इसमें शाब्दी क्रीडा भी वर्तमान है। सुन्दर-सुन्दर वर्णनो की योजना कर कवि ने उक्त कथा-वस्तु मे अलङ्कार-वैचित्र्य और कल्पना-शक्ति के मिश्रण द्वारा चमत्कृत करने की सफल योजना की है। कवि हेमचन्द्र की अनेक उक्तियो मे स्वाभाविकता, व्यग्य तथा पाण्डित्य भरा हुआ है। कुमारपाल की दिनचर्या पाठको को सुसस्कृत जीवन बनाने के लिए प्रेरणा देती है। जिनेन्द्र-वन्दन एवम् अन्य धार्मिक कार्यों मे राजा का प्रतिदिन भाग लेना वर्णित है। इस काव्य म केवल राजा के विलासी जीवन का ही वर्णन नही है, अपितु उसके कर्मठ एवम् नित्य-कार्य करने मे अप्रमादी जीवन का चित्रण है। नायक का चरित्र उदात्त और भव्य है। उसके महनीय कार्यो का सटीक वर्णन किया गया है।

त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरितम्—

जैन-कवि धर्मभावना को काव्य के माध्यम से व्यक्त करना आवश्यक मानते हैं। इसीलिये जैन-सस्कृति के काव्य-ग्रन्थो में भी धार्मिक भावना का विशेष प्रभाव रहता है। जैन धर्म मे प्राचीन पौराणिक परम्परा का अभाव-सा था। इसी अभाव की पूर्ति के लिए बारहवी शताब्दी मे हेमचन्द्र द्वारा त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित नामक पुराण काव्य की रचना की गयी। यह ग्रन्थ गुजरात नरेश कुमारपाल की प्रार्थना से लिखा गया था, और ई० स० ११६०—७२ के बीच पूर्ण हुआ। इसमे १० पर्व हैं, जिनमे २४ तीर्थङ्करादि ६३ महापुरुषो का चरित वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का विषय क्रम निम्नानुसार है—

पर्व १— आदिनाथ चरित्र—भरतचक्रवर्ती—दो महापुरुषो के चरित इसमे हैं।
पर्व २— अजितनाथ चरित्र—सगर चक्रवर्ती—इन दो महापुरुषो के चरित इसमे हैं।

पर्व ३– सम्भवनाथ से लेकर शीतलानाथ तक ८ तीर्थङ्करो के चरित इसमे वर्णित है।

पर्व ४– श्रेयासनाथ जी से धर्मनाथ जी तक ५ तीर्थङ्करो, ५ वासुदेव, ५ बलदेव, ५ प्रतिवासुदेवो, और चक्रवर्ती मघवा व सनतकुमार कुल २२ महापुरुषो के चरित इसमे वर्णित है।

पर्व ५– *शान्तिनाथ जी का चरित १ भव म तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती दो पदवी* वाला होने से दो चरित गिने गये हैं।

पर्व ६– कुन्थुनाथ जी से मुनि सुव्रतस्वामी तक ४ तीर्थङ्करो का, ४ चक्रवर्तियो का, २ वासुदेव, २ बलदेव, २प्रतिवासुदेव मिलकर १४ महापुरुषो के चरित इसमे वर्णित है। इसमे भी ४ चक्रवर्ती मे कुन्थुनाथ जी और अरिनाथ जी उसी भव मे चक्रवर्ती भी हुए थे, अत उन्हे भी सम्मिलित किया गया है।

पर्व ७– निमिनाथ चरित तथा १०, ११ वें चक्रवर्ती, ८ वें वासुदेव, वलदेव, प्रतिवासुदेव, अर्थात राम, लक्ष्मण एव रावण का चरित, कुल ६ महापुरुषो का चरित इसमे वर्णित है। इस पर्व मे बडा भाग रामचन्द्रादि के चरित का होने से इसे जैन रामायण कहते हैं।

पर्व ८– *नेमिनाथ जी तथा ९ वें* वासुदेव, बलदेव, प्रतिवासुदेव अर्थात् कृष्ण, बलभद्र तथा जरासन्ध को मिलाकर ४ महापुरुषो के चरित इसमे हैं। पाण्डव नेमिनाथ जी के समकालीन होने से अत उनके चरित भी इस पर्व मे समाविष्ट हैं।

पर्व ९– पार्श्वनाथ जी तथा ब्रह्मदत्त नाम के १२ वें चक्रवर्ती को मिलाकर दो महापुरुषो के चरितो का वर्णन इसमे है।

पर्व १०– इसमे श्री महावीरस्वामी का चरित है, किन्तु प्रसङ्गोपात्त श्रेणिक (बिम्बसार या भिम्बसार) अभयकुमार, आदि अनेक महापुरुषो के अधिक विस्तार पूर्वक चरित इसमे लिखे गये हैं। यह पर्व सब पर्वो की अपेक्षा बड़ा है और वीर भगवान का चरित इतने विस्तार से दूसरे ग्रन्थो मे उपलब्ध नही होता। इस प्रकार १० पर्वो मे कुल मिलाकर ६३ शलाका महापुरुषो का चरित इसमे सम्मिलित किये गये हैं।

साधारण जानकारी के लिये ६३ महापुरुषो के नाम दिये जाते हैं–

तीर्थङ्कर २४– १ ऋषभ, २ अजित, ३ सम्भव, ४ अभिनन्दन ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि,

१० शीतल, ११ श्रेयास, १२. वासुपूज्य, १३ विमल, १४ अनन्तजित्, १५. धर्म, १६. शान्ति, १७ कुन्थु, १८. अर, १९. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि (निमि), २२. नेमि, २३. पार्श्व (नाथ) और २४. वीर।

चक्रवर्ती १२— १. भरत, २. सगर, ३. मघवा, ४. सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुन्थु, ७. अर, ८. सुभूम., ९ पद्म, १०. हरिषेण, ११. जय और १२. ब्रह्मदत्त ।

वासुदेव ९— १. त्रिपृष्ट, २. द्विपृष्ट, ३. स्वयम्भू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुषपुण्डरीक, ७ दत्त, ८ नारायण और ९ कृष्ण।

बलदेव ९— १. अचल, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७ नन्दन, ८. पद्म और ९ राम ।

प्रतिवासुदेव ९- १. अश्वग्रीव, २. तारक, ३. मेरक, ४. मधु, ५. निशुम्भ, ६. बलि, ७. प्रह्लाद, ८. लङ्केश (रावण) और ९ मगधेश्वर (जरासन्ध) ।

"त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित" ३२००० श्लोक प्रमाण पुराण है । इसमे त्रैलोक्य का वर्णन पाया जाता है । इसमें परलोक, ईश्वर, आत्मा, कर्म, धर्म, सृष्टि आदि विषयो का विशद विवेचन किया गया है । इसमे दार्शनिक मान्यताओ का भी विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। इतिहास, कथा एव पौराणिक तथ्यो का यथेष्ट समावेश किया गया है । सृष्टि, विनाश, पुनर्निर्माण, देवताओ की वंशावली, मनुष्यो के युगो, राजाओ की वंशावलि का वर्णन आदि पुराणो के सभी लक्षण पूर्णरूपेण इस महद् ग्रन्थ मे पाये जाते है ।

"स्थाविरावलिचरित" अथवा 'परिशिष्टपर्वन्' यह 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' का ही एक परिशिष्ट है। डा० हर्मन जेकोबी ने इसे सम्पादित कर १८८३ ई० मे कलकत्ता से प्रकाशित किया । इसमे कुल १३ सर्ग तथा ३४२० श्लोक हैं । विषयानुक्रमणिका निम्न प्रकार है—

सर्ग १ श्लो० स० ४७४ : जम्बूस्वामी पूर्वभव वर्णन ।

" २ " " ७४५ : जम्बूस्वामी विवाह, कुबेरदत्त कथा, महेश्वर दत्तकथा मर्पक कथा, वानर-वानरी कथा, नूपुर पण्डिता, शृगाल कथा, विद्युन्मालिक कथा, शंखधर्म कथा, शिलाजतु वानर कथा ।

सर्ग ३ श्लो० सं० २९२ : सिद्धिबुद्धि कथा, जात्यश्वकिशोर कथा, ग्राम कूटसुत

कथा, सोल्लक कथा, शकुनि कथा, चित्र सुहृद कथा, विप्र दुहितृ नाग श्री कथा, ललिताङ्ग कथा, सपरिवार जम्बू प्रव्रज्या प्रभव, प्रव्रज्या वर्णन ।

सर्ग ४ श्लो० स० ६९ : जम्बूस्वामी का महानिर्वाण ।
,, ५ ,, ,, १०७ : प्रभवदेवत्वशय्यम्भव चरित वर्णन ।
,, ६ ,, ,, २५२ : यशोभद्र, देवीभाव, भद्रबाहु शिष्य चतुष्टयवृत्तान्त, अन्निका पुत्र कथा, पाटलीपुत्र प्रवेश, उदयितारक कथा, नन्दराज्य लाभ कीर्तन ।
सर्ग ७ श्लो० स० १३८ : काल्पकामात्य सकीर्तन ।
,, ८ ,, ,, ४६६ शकटारमरण—स्थूलभद्रदीक्षाव्रतचर्या, सम्भूत विजय स्वर्गगमन, चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथा, बिन्दुसार-जन्म, राज्य-वर्णन ।
सर्ग ९ श्लो० स० ११३ : बिन्दुसार-अशोक, श्री कुणाल कथा, सम्प्रति-जन्म, राज्य-प्राप्ति स्थूलभद्रपूर्वग्रहण, श्री भद्रबाहू, स्वर्ग-गमन वर्णन ।
सर्ग १० श्लो० स० ४० : आर्य महागिरि, आर्यसुहस्ति, दीक्षा, स्थूलभद्र स्वर्ग-गमन ।
सर्ग ११ श्लो० स० १७८ : सम्प्रतिराज चरित्र, आर्य महागिरि, स्वर्ग गमन, अवन्ति सुकुमार नलिनी गुल्मगमन, आर्य सुहस्ति स्वर्ग-गमन वर्णन ।
सर्ग १२ श्लो० स० ३८८ : वज्रस्वामी जन्मव्रत प्रभाव वर्णन ।
सर्ग १३ श्लो० स० २०३ . आर्यरक्षित व्रत ग्रहण पूर्वाधिगम, वज्रस्वामी स्वर्ग-गमन, सद्ध शविस्तार वर्णन ।

भारत के प्राचीन इतिहास की गवेषणा मे 'परिशिष्ट पर्व' बहुत उपयोगी है । प्रो० जैकोवी ने 'स्थविरावलि चरित' सहित 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' को रामायण, महाभारत की शैली मे रचे गये एक जैन महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया है[1] । यह ग्रन्थ पुराण और काव्य-कला दोनों ही दृष्टियों से उत्तम है । इस विशाल ग्रन्थ का कथा-शिल्प महाभारत की तरह है । आचार्य हेमचन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ को महाकाव्य कहा है । उसकी सवाद-शैली, उसके लोक तत्वों और उसकी अवान्तर कथाओं का समावेश इस ग्रन्थ को पौराणिक

१ — डॉ जैकोवी—स्थविरावलिचरित—इन्ट्रोडक्शन पृ. २४; ऐशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १८८३ ।

शैली के महाकाव्यों की कोटि मे ले जाता है ।

इस पुराण-काव्य का सप्तम् भाग जैन रामायण कहलाता है ; क्योंकि इसमे राम-कथा वर्णित है जिसमे प्राकृत 'पउमचरियम' तथा सस्कृत 'पद्म पुराण' का अनुसरण किया गया है । हेमचन्द्र केवल किसी एक परम्परा के व्यक्ति नही थे बल्कि एक महान् शिल्पी भी थे । उनके इस रूपान्तर मे कुछ महत्वपूर्ण सशोधन, विशेषकर चरित्र-चित्रण में, हैं । इसमें राम न तो अवतारस्वरूप माने गये हैं, और न रावण खल-नायक । भरत की माता कैकेयी का शोभनीय वर्णन हैं । जब भरत राज्यगद्दी छोड देते हैं तो वह पश्चाताप् करती है और राम की खोज में भरत का साथ देती है । वह अश्रुमिश्रित चुम्बनो द्वारा राम को अभिभूत कर देती है और उनसे वापिस लौटने का आग्रह करती है । रावण के चरित्र को भी उभार कर प्रस्तुत किया गया है ।

यह महाकाव्य सुदीर्घ होने के कारण आयासकर प्रतीत होता है । किन्तु इसकी भाषा जटिल न होकर, सरल है । १० पर्व मे महावीर तीर्थङ्कर का जीवन-चरित्र वर्णित है जो स्वतत्र प्रतियों के रूप में भी पाया जाता है । इसमें सामान्यत आचाराग व कल्पसूत्र में वर्णित वृत्तान्त समाविष्ट किया गया है । हाँ, मूल घटनाओ का विस्तार व काव्यत्व हेमचन्द्र का अपना है । यहाँ महावीर के मुख से वीर निर्वाण मे १६६६ वर्ष पश्चात् होने वाले आदर्श नरेश कुमारपाल के सम्बन्ध की भविष्यवाणी करायी गयी है । इसमें राजा श्रेणिक, युवराज अभय, एवम् रोहिणेय चोर आदि की अनेक कथाएँ भी आयी हैं । महावीर के जीवन-चरित्र वर्णन में बहुतकुछ सयत ऐतिहासिक दृष्टि पायी जाती है । इससे हमें हेमचन्द्र के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चित् जानकारी प्राप्त होती है । इसी पर्व मे अनेक रचनाओं की कथानक सम्बन्धी पुराकथाएँ तीर्थ-स्थानो के विषय में है । जैन धर्म के विभिन्न धर्माचार्यों के विगत अवतारो के समावेश से कथानक और भी वृहत् हो गया है । सामान्य कथानको को बहुधा आलङ्कारिक तथा विस्तृत रूप प्रदान किया जाता है । इसमें अनेक धर्म निरपेक्ष निदर्शन भी प्रस्तुत किये गये हैं । समय-समय पर हम नाटकीय सम्भावनाओ से परिपूर्ण मर्मस्पर्शी कथाओ का विवरण पाते हैं । दीक्षा लेने के बाद भगवान् महावीर के पास एक ही वस्त्र था । राजकुमार होने के कारण वह वस्त्र अत्यन्त मूल्यवान था । एक गरीब ब्राह्मण ने उन्हे राजपुत्र समझकर याचना की । महावीर ने कहा "मैंने अब सब कुछ छोड दिया है । देने के लिये मेरे पास कुछ भी नही है । वस्त्र का आधा भाग मैं तुम्हे देता हूँ ।" ब्राह्मण ने

वह आधा वस्त्र लेकर उसे सुधारने के लिए कारीगर के पास दिया। कारीगर ने कहा इसका दूसरा टुकडा यदि लाओगे तो इसकी कीमत बढेगी। वह ब्राह्मण महावीर के पीछे-पीछे घूमने लगा। महावीर का आधा वस्त्र किसी पेड में उलझ गया, ब्राह्मण ने उसे निकालकर ले लिया। महावीर ने उस दिन से फिर कभी भी वस्त्र ही धारण नहीं किया।

इसी प्रकार एक दूसरी कथा है। वर्षाऋतु में भगवान महावीर एक कुलपति के आश्रम में रहे। कुलपति ने उनके लिए एक घास की झोपडी बना दी। समीप के गाँव से गायें आयीं। उन्होंने उस कुटी का तृण भक्षण किया। महावीर ने कुटिया की रक्षा न करते हुए गायों को उसी प्रकार खा‍ने दिया। आश्रम-वासियों ने इसके लिए महावीर को ही दोष दिया। महावीर ने आश्रम छोड दिया। इस प्रकार वैराग्य, धैर्य, दीर्घदर्शिता, क्षमा इत्यादि गुणों का आदर्श बतलाने वाली अनेक कथाएँ महावीर-चरित में हैं।

इस ग्रन्थ का अन्तिम भाग परिशिष्टपर्व यथार्थत एक स्वतन्त्र ही रचना है और वह ऐतिहासिक दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण है। इसमें महावीर के पश्चात् उनके केवली शिष्यों तथा दशपूर्वी आचार्यों की परम्परा पायी जाती है। इस भाग को स्थविरावलि चरित भी कहते है। यह केवल आचार्यों की नामावली मात्र नहीं है, किन्तु यहाँ उनसे सम्बद्ध नाना लम्बी-लम्बी कथाएँ भी कही गयी है, जो उनसे पूर्व आगमों की नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि टीकाओं से और कुछ सम्भवत मौखिक परम्परा से सकलित की गयी है। इनमें स्थूलभद्र और कोशा वेश्या का उपाख्यान, कुबेरसेना नामक गणिका के कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता नामक पुत्र-पुत्रियों में परस्पर प्रेम की कथा, आर्य स्वयम्भव द्वारा अपने पुत्र मनक के लिए दशवैकालिक सूत्र की रचना का वृत्तान्त तथा आगम के सकलन से सम्बन्ध रखने वाले उपाख्यान, नन्द राजवश सम्बन्धी कथानक, एवम् चाणक्य और चन्द्रगुप्त द्वारा उस राजवश के मूलोच्छेद का वृत्तान्त आदि अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ग्रन्थ-कर्ता ने अपने इस पुराण को महाकाव्य कहा है। यद्यपि रचना का बहुभाग कथात्मक है और पुराणों की स्वाभाविक सरल शैली का अनुसरण करता है, तथापि उसमें अनेक स्थलों पर रस-भाव व अलङ्कारों का ऐसा समावेश है, जिससे इसका महाकाव्य-पद भी प्रमाणित होता है। डा० ए० बी० कीथ के अनुसार इसमें वर्णित कथाएँ पौराणिक उपाख्यानों के ढग की न होकर विशेष रूप से साधारण-लोक-कथा के प्रकार की हैं। ये पुराकथाएँ शैली और महाकाव्यों में धार्मिक साहित्य की कृति के निकट पहुँचने की प्रवृत्ति

प्रदर्शित करती है। स्थूलभद्र की कथा इस प्रकार की एक दृष्टान्त है। तीन भिक्षुओं ने अपने आचार्य के सम्मुख व्रत धारण किया। प्रथम ने कहा कि वह सम्पूर्ण वर्षाकाल में एक सिंह की गुहा के सम्मुख बैठेंगे। दूसरे ने कहा कि इस अवधि में एक ऐसे सर्प की बांबी के सम्मुख आवास ग्रहण करेंगे जिसका दर्शन मात्र ही प्राणघातक होता है। तृतीय ने कहा कि सम्पूर्ण वर्षाऋतु में वह एक जल चक्र पर बैठेंगे। तब भिक्षु स्थूलभद्र आये, उन्होंने यह जान लिया कि मन का नियन्त्रण शरीर के संयम की अपेक्षा कहीं दुष्कर है। भिक्षु होने के पूर्व वह एक वेश्या कोशा के प्रेमी रह चुके थे। अब वह यह घोषित करते हैं कि चार मास तक वह उसके घर में ब्रह्मचर्य की अपनी प्रतिज्ञा खण्डित किये बिना ही निवास करेंगे। वह इस कार्य में केवल सफल ही नहीं होते, बल्कि कोशा के हृदय में भी परिवर्तन ले आते हैं। आचार्य उनका जयघोष करते हैं। इसके अतिरिक्त जैन-लोकाचार जानने के लिए यह उपयुक्त ग्रन्थ है। बहुत-सी जैन-प्रथाओं का उद्‌गम इसमें देखने को मिलता है[1]।

वीतरागस्तोत्रम्— यह एक भक्तिस्तोत्र है। आचार्य हेमचन्द्र को भक्त का हृदय मिला था, अर्हन्स्तोत्र, महावीर स्तोत्र एवम् महादेव स्तोत्र इसके प्रमाण हैं। वीतरागस्तोत्र में १८६ पद्य हैं। कुल २० स्तवों में इनका विभाजन किया गया है। अधिकांश स्तवों में ८-८ श्लोक हैं। विषय विवरण इस प्रकार है—

(१) प्रस्तावना स्तव (२) सहजातिशय वर्णन स्तव (३) कर्मक्षय जातिशय वर्णन स्तव (४) सुरकृतातिशय वर्णन स्तव (५) प्रतिहार्यस्तव (६) विपक्ष-निरास स्तव (७) जगत कर्तृत्वनिरास स्तव (८) एकान्त निरास स्तव (९) कलि-प्रशम स्तव (१०) अद्‌भुत स्तव (११) अचिन्त्य महिमा स्तव (१२) वैराग्य स्तव (१३) विरोध स्तव (१४) योगसिद्ध स्तव (१५) भक्ति स्तव (१६) आत्म-गर्हा स्तव (१७) शरणगमन स्तव (१८) कठोरोक्ति स्तव (१९) अज्ञास्तव और (२०) आशीस्तव।

वीतराग स्तोत्र के अन्त में आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि इन स्तवों को

१– Helen–M Johnson त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरितम्
Book II vol II & III Preface 20-40 G O S 1931
"It is in itself almost a hand book of Jainism for Lexi cographer It has a largea-mount of new materl al and for the student of folkloreans and the origin of customs, it gives the Jain tradition which is very different from Hindu,"

पढकर कुमारपाल चालुक्य नरेश अपने मनोरथ पूर्ण करें। अत अपने आश्रय-दाता एवम् शिष्यस्वरूप कुमारपाल के लिए वीतराग स्तोत्रो की उन्होंने रचना की, यह बात सिद्ध है। वीतराग स्तोत्र का उल्लेख 'मोहराज-पराजय' नामक नाटक में 'बीस दिव्य गुलिका' के नाम से आया है।

सस्कृत स्तोत्र काव्यो में 'वीतराग स्तोत्र' का विशिष्ट स्थान है। भक्ति के कारण यह बडा ही मधुर काव्य बन पडा है। काव्यकला की दृष्टि से भी यह काव्य श्रेष्ठ है। इसमें भक्ति के साथ जैन-दर्शन सर्वत्र व्याप्त है। काम-राग और स्नेह-राग का निवारण सुकर है; किन्तु अति पापी दृष्टिराग का उच्छेदन तो पण्डित और साधुसन्तो के लिए भी दुष्कर है[1]। सकुचित साम्प्रदायिक राग दुष्कर है यह कहकर आचार्य हेमचन्द्र ने व्यापक दृष्टि-कोण अपनाने के लिए प्रेरणा दी है। दृष्टिदोष के कारण ही मत-मतान्तरो में सकीर्णता आ जाती है। 'वीतराग स्तोत्र' में सर्वत्र भक्ति के साथ समन्वयात्मकता एव व्यापक दृष्टिकोण दिखाई देता है। इसी से वे जितनी श्रद्धा से महावीर को नमन करते है उतनी ही श्रद्धा से अन्य देवताओ को भी[2]। सक्षेप में आचार्य हेमचन्द्र के भक्ति स्तोत्रो में रस हैं, आनन्द है और हृदय को आराध्य में तल्लीन करने की सहज प्रवृत्ति हैं। अत उनका स्थान स्तोत्र साहित्य मे विशिष्ट है। 'वीतराग स्तोत्र' मे जैन दर्शन का काव्यमय वर्णन भी है।

द्वात्रिंशिका— 'द्वात्रिंशिकाओ' के रचयिता के रूप में आचाय हेमचन्द्र बहुत प्रसिद्ध हैं। भक्ति की दृष्टि से इन स्तोत्रोका जितना महत्व है, उससे कही अधिक काव्य की दृष्टि से उनका महत्व है। ये दो लघुकाय ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से बहुत सुन्दर है। एक का नाम हैं, 'अन्ययोगव्यवछेद' तथा दूसरे का नाम 'अयोगव्यवछेद द्वात्रिंशिका' है। दोनो में यथानाम ३२-३२ श्लोक है। उन्होंने 'अन्ययोगव्यवच्छेद' में अन्य दर्शनों का खण्डन किया है। तथा 'अयोग-व्यवच्छेद' में केवल स्वपक्षसिद्धि अर्थात् जैन मत की पुष्टि की है। डा० आनन्द शकर ध्रुव ने उनके अन्ययोगव्यवच्छेद पर जो अभिमत प्रकट किया है वह आचार्य के सभी स्तोत्रो पर पूर्ण रूप से लागू होता है। उनके मत से चिन्तन

१— कामराग स्नेहराग वीषत्कर निवारणी।
दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेद सतामपि ॥१॥

२— यो विश्व वेद विद्य ··· ··· ···· बुद्ध वा वर्धमान शतदलनिलय केशव वाशिव वा,
त्रैलोक्य सकल —— ···· ····स महादेवो मया वन्द्यते ॥

और भक्ति का इतना सुन्दर समन्वय इस काव्य में हुआ है कि यह दर्शन तथा काव्य कला दोनों ही दृष्टि से उत्कृष्ट कहा जा सकता है[१]।

अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका— इसमें मुख्यतः परपक्षदूषण ही बतये गये हैं। प्रथम तीन श्लोकों में केवल ज्ञानी भगवान् की स्तुति करके उनके ४ अतिशय बतलाये हैं– (१) ज्ञानातिशय (२) अपायागमातिशय (३) वचनातिशय और (४) पूजातिशय। इसमें ज्ञान के साथ चरित्र का भी महत्व बतलाया गया है। "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग" बतलाकर आचार्य ने यथार्थवाद को प्रतिष्ठित किया है। जैन दर्शन अनन्त रूपा से सत्य का दर्शन कराता हुआ यथार्थवाद पर प्रतिष्ठित है। इसके श्लोक ४ से ६ तक वैशेषिक दर्शन की आलोचना की गई है। सामान्य विशेष का सिद्धान्त प्रतिपादित कर एक ही सत्य के भिन्न-भिन्न अवस्था स्वरूप बताये हैं। इस जगत का कोई कर्ता है, वह एक है, सर्वव्यापी है, स्वतन्त्र है, नित्य है जिन नैयायिकों की इस प्रकार की दुराग्रह रूपी विडम्बनाएँ है, हे जिनेन्द्र! तुम उनके उपदेशक नहीं हो। नित्य-अनित्य स्याद्वाद के ही रूप हैं। इस प्रकार हेमचन्द्र के मत से वैशेषिक दर्शन में भी अनेकान्तवाद स्थित है। त्रिरूप भी एक रूप का ही प्रकार है। ईश्वर शासक भले ही हो सकता है, किन्तु निर्माता नहीं। हेमचन्द्र ने समवायवृत्ति की आलोचना की और सत्ता, चैतन्य एवं आत्मन् का भी खण्डन किया है। उन्होंने विभुत्व की भी आलोचना की है। उनके अनुसार आत्मा सावयव और परिणामी है, वह समय पर बदलती रहती है। १० वें श्लोक में न्याय दर्शन की आलोचना है, श्लोक ११ तथा १२ में पूर्व मीमांसा की कड़ी आलोचना है। कर्मकाण्ड के

---

१ "The former (अन्ययोगव्यवच्छेद) is a genuine devotional lyric, pulsating with reverence for the Master and is at the same time a revient of some of the tenets of the rival schools on which the Jaina sees reason to differ. Devotion and thought are happily blended together in one whole and are expressed in such noble and dignified language that it deserves to rank as a piece of Literature no less than that of philosophy" P C XX IV स्याद्वाद-मञ्जरी टीका of *अन्ययोगव्यवच्छेद Published by Bombay* Sanskrit and Prakrit Series No XXXIII in 1933 edited by आनन्द शंकर ध्रुव।

अन्तर्गत हिंसा का जो विधान किया गया है, उसकी तीव्र आलोचना है। 'हिंसा-चेद् धर्म हेतु कथम् ? धर्महेतुश्चेद, हिंसाकयम् ? स्वपुत्रघातात् नृपतित्वलिप्सा !" टीकाकार मल्लिसेन व्यग्य से कहते है 'यदि हिंसा है, तो धर्म हेतु कैसा; तथा धर्म हेतु है, तो हिंसा कैसी ? क्या अपने पुत्र की हत्या करके कोई नृपत्व चाहेगा ? उसी प्रकार अ पौरुषेयवाद का भी उन्होने खण्डन किया है। श्लोक १३-१४ मे वेदान्त की आलोचना की गयी है। यदि माया है, तो द्वैतसिद्धि अर्थात् माया और ब्रह्म दोनो की सत्ता सिद्ध है। यदि माया का अस्तित्व ही नही है, तो प्रपञ्च कैसा ? माता भी है और वन्ध्या भी है, यह असम्भव है। श्लोक १५ में साख्यदर्शन का खण्डन है। चेतन-तत्व और जड-प्रकृति का संयोग यदृच्छा से कैसे सम्भव है ? श्लोक १६, १७ १८ और १९ में हेमचन्द्र ने बौद्ध-दर्शन की आलोचना की है। बौद्धो के क्षणिकवाद् की आलोचना करते हुए आचार्य जी कहते है कि (१) किये गये कर्म का नाश, (२) नही किये हुए कर्म का फल, (३) ससार का विनाश, (४) मोक्ष का विनाश, (५) स्मरण-शक्ति का भग हो जाना इत्यादि दोषो की उपेक्षा करके जो क्षणिकवाद मानने की इच्छा करता है वह विपक्षी बडा साहसी होना चाहिए। श्लोक २० मे प्रत्यक्ष प्रमाण-वादी चार्वाक की आलोचना की गयी है। 'बिना अनुमान के हम सांप्रत-काल मे भी बोल नही सकते'। श्लोक २१ से ३० तक मे हेमचन्द्र जी ने जन दर्शन को प्रतिष्ठित किया है। उसमे विशेषतः सत्य का अनेक विधस्वरूप, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, सप्तभगी, स्याद्वाद, नयवाद, आत्माओ की अनेकता का प्रतिपादन किया है। अन्त मे जैन दर्शन के व्यापकत्व के विषय मे बतलाते हुए हेमचन्द्र कहते हैं कि जिस प्रकार दूसरे दर्शनो के सिद्धान्त एक दूसरे को पक्ष व प्रति-पक्ष बनाने के कारण मत्सर से भरे हुए है, उस प्रकार अर्हन मुनि का सिद्धान्त नही है; क्योकि यह सारे नयो को बिना भेद-भाव के ग्रहण कर लेता है। श्लोक ३१ तथा ३२ मे भगवान महावीर की स्तुति कर उपसहार किया गया है।

अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका — इसमे प्रामुख्य से स्वमतमण्डन अर्थात् जैन मत प्रतिष्ठापन किया गया है। प्रारम्भ मे वे भगवान महावीर की स्तुति प्रस्तुत करते हैं। तत्पश्चात् अत्यन्त सरल एवम् सरस शब्दो मे जैन धर्म के गुण गाये है। भगवान महावीर के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए भी जैन धर्म का स्वरूप संक्षेप तथा प्रासादिक भाषा मे वर्णित किया गया है। इसमे विवेचना का स्वरूप नितान्त विधायक है। ससार मे आने का कारण आस्त्रव है और मोक्ष का कारण

है–संवर। जैनों के सिद्धान्त का यही सार है। शेष सब बातें इसी का विस्तार मात्र हैं। अनेकान्त मानने के कारण कोई भी विरोध उनके लिए असिद्ध है।

हेमचन्द्र की काव्य प्रवृत्तियाँ-हेमचन्द्र के काव्य का अन्तरंग-पक्ष-रस-भावादिभावपक्ष–

महाकवि का समय एक ओर तो युद्ध का था, जब सेना के बल राजपूत नवीन राज्यों की स्थापना करते थे; दूसरी ओर वह काल विलासिता का एवम् धर्म-प्रचार का भी था। इसलिये द्वयाश्रय काव्य में एक ओर वीरता की भावना व्याप्त है तो दूसरी ओर धर्म-प्रचार की भावना; तथा तीसरी ओर उनकी कविता शृङ्गार के अपूर्व आनन्द की उपलब्धि कराती है। पाठक भाव-विभोर हो जाते हैं। कवि के कहने में रस है, अतः वह पाठक के हृदय के भाव को उद्बुद्ध करके साधारणीकरण द्वारा रस का आस्वादन करा रहा है। द्वयाश्रय काव्य का मुख्य रस वीर है, शृंगार नहीं। इसमें नायक सिद्धराज की युद्ध-वीरता का बहुत ही विशुद्ध वर्णन किया है। उनके वर्णन व्यक्तियों में नव-जीवन का सञ्चार कराते हैं। कवि के चरितनायक हिन्दू-संस्कृति के रक्षक एवम् दुष्टों के संहारक हैं। वीर रस के सहयोगी रौद्र रस और भयानक रस का भी यथा स्थान समावेश हो गया है[1]।

शृङ्गार का होना युग का प्रभाव है ऐसा कहना चाहिए। महाकाव्य में युद्ध और यात्रा वर्णनों के साथ-साथ ऋतु-वर्णन, वन-विहार, जल-विहार, आदि की भी परिगणना कर दी गयी है। वीर और शृङ्गार का अपूर्व मिश्रण द्वयाश्रय काव्य में है। भक्ति का भी योग है। शृङ्गार के वर्णन में हेमचन्द्र जैसे पहुँचे हुए शृङ्गारी भी दिखायी देते हैं। भक्ति-प्रधानता कवि की अपनी चीज है। रचना में अलङ्कारमयता के होते हुए भी भाव की प्रधानता है। सभी वर्णनों में कवि की अपनी अनुभूतियाँ बोल रही हैं। कल्पना की उड़ान और अनुभूति की गहनता। कवि की अपनी है। भाषा भी कवि की अपनी है—उनका उस पर अधिकार है। नवीन शब्दों की प्रसङ्गानुसार रचना का उसमें बाहुल्य है, फिर पद-योजना का सौन्दर्य भी उनका अपना है[2]।

महाकवि जिस शैली के प्रवर्तक थे उसमें प्रायः रस, भाव, अलङ्कार बहुलता आदि सभी बातें विद्यमान थीं। अश्वघोष और कालिदास की सहज एवम् सरस शैली जैसी शैली उनकी नहीं थी, किन्तु उनकी कविताओं में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व मिश्रण था। हेमचन्द्र का भयानक शिशुपाल-वध जैसा

---

१ —द्वयाश्रय-सर्ग ८; श्लोक ६१

२ —द्वयाश्रय-सर्ग ११; श्लोक ४७

कथानक नही, कालिदास के कथानक के समान विशाल कथानक का उनके काव्य मे समावेश है। कई जगह प्रसङ्गो की उद्भावना बडी सुन्दर हुयी है। अनूठे दृष्यों की सरचना की गयी है। पाठक इन दृष्यो, प्रसङ्गो अथवा भावो में अपने आपको भूल जाता है। मध्ययुग के काव्य की समस्त विशेषताएँ इनके महाकाव्य में विद्यमान है। वर्णन-चातुर्य, भाव-गाम्भीर्य कोमलपदन्यास, क्लिष्ट पदोपन्यास, अद्वितीय शब्द-बन्ध आदि इस महाकाव्य मे विद्यमान हैं। इनके काव्यो में प्रकृति-वर्णन प्रचुरमात्रा मे हुआ है। प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र वहा है। हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तरङ्ग भावों को उनके सच्चे रङ्गरूप मे दिखाना प्रत्येक कवि के लिए सम्भव नही है।

'नारिकेलफलसन्निम वचो भारवे." इस प्रकार की उक्ति पण्डितो ने महाकवि भारवि के सम्बन्ध मे कही है। वह हेमचन्द्र के काव्य पर शत-प्रतिशत लागू होती है। पण्डित-शैली को अपनाने के कारण तथा शास्त्र-काव्य के रचयिता होने के कारण बाह्यत उनका काव्य क्लिष्ट प्रतीत होता है, किन्तु जिस प्रकार नारियल के ऊपर का कठोर छिलका निकालने के बाद मधुर रस का आस्वादन होता है, ठीक उसी प्रकार हेमचन्द्र के काव्य के अन्तर भाग मे-भावप्रान्त में प्रवेश करते ही— "नानाविधानि दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनिच" इस गीतोक्ति के अनुसार विविध सृष्टि का दर्शन होता है एवम् विविध रसो का आस्वादन होता है। रस-पक्ष में हेमचन्द्र भरत के रस-सम्प्रदाय के ही अनुयायी एवम् अभिनवगुप्तपादाचार्य के पद चिन्हों पर ही चलते प्रतीत होते है। अत उनके काव्य मे शास्त्र पक्ष तथा सम्प्रदाय-पक्ष प्रबल होने पर भी भाव-पक्ष बिलकुल ही अशक्त नही हैं। काव्य-कला का सुन्दर दर्शन हेमचन्द्र के काव्य मे होता है। अत विद्वत् शिरोमणि आचार्य हेमचन्द्र सस्कृत साहित्य के एक सुप्रसिद्ध महाकवि हैं। इनकी रचना-शैली अत्यन्त मनोहर और अर्थ-गौरव से पूर्ण है इससे श्रेष्ठ कवियो की गणना मे इनका प्रमुख स्थान है। इनका काव्य 'ओज, प्रसाद, माधुर्य, आदि काव्यगुणो से मण्डित है। उदाहरणार्थ—१२ वें सर्ग मे बर्बर राक्षसों के साथ जयसिंह ने युद्ध किया, उस समय इनकी कविता ओजोगुण-मण्डिता हो जाती है[1]। प्रसाद गुण तो यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरा मिलता है। साधारण सस्कृत जानने वाला भी इस प्रसाद गुण के कारण रसास्वादन कर

1 —द्वयाश्रय-सर्ग १२; श्लोक ४७

तीसरे सर्ग मे शरद्काल का वर्णन पढ़ते हुए 'भारवि' के किरातार्जुनीयम् की याद आये बिना नही रहती[1]। दूसरे सर्ग मे प्रभात काल का सुन्दर वर्णन है। सुपक्वधान को देखकर रक्षा करने वाली गोपिकाएँ इतनी प्रमुदित हो जाती है कि वे दिनभर गाना गाकर व्यतीत करती हैं। उन्हे खेद क्षणभर भी नही होता[2]। प्रात काल मे राजा ने सूर्य का अनुकरण किया है अथवा सूर्य ने राजा के प्रताप का अनुकरण किया है, इस सन्देह से सूर्य का प्रकाश मन्द हो गया है[3]। इसी प्रकार दशम् सर्ग मे भी वर्षा-ऋतु का सुन्दर वर्णन है। पन्द्रह तथा १६ वें सर्ग मे सभी ऋतुओ का सुन्दर वर्णन मिलता है। १७ वें सर्ग मे स्त्रियो का पुष्पोच्चय, वल्लभो के साथ गमन, जल-क्रीडा आदि का वर्णन पढते समय माघ के 'शिशुपाल-वध' की बलात् याद आ जाती है। वैसे ही सर्ग १५ तथा ७ का यात्रा-वर्णन तथा प्रथम सर्ग का नगर-वर्णन, १६ वें का पर्वत-वर्णन भी माघ के 'शिशुपाल वध' के साथ साम्य रखता है[4]। प्रारम्भ मे ही हेमचन्द्र ने अणहिलपुर का सुन्दर वर्णन किया है। उस समय स्वस्तिक के समान सुन्दर मकान बनते थे। प्राकृत द्वयाश्रय मे नगर के बाहर प्राकारो का दर्पण के साथ सादृश्य दिखाकर वर्णन किया है। प्राकारो का ऊँचा भाग स्फटिक शिला का बना था, मानो स्वर्गाङ्गनाओ का वह दर्पण था। त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित के १० वें पर्व के १२ वें सर्ग मे ३६ वें श्लोक मे ऐसा ही वर्णन है। अणहिलपुर पट्टन का वर्णन करते हुए कवि वहाँ के लोगो का— उनकी मनोदशा का, चरित्र का भी वर्णन करते है। वहाँ के पण्डित लोग वाणी मे सयम करके निरर्थक एक शब्द भी नही बोलते है[5]। यहाँ के विद्वानो की विद्वता को देखकर सप्त-ऋषि भी भूलोक छोडकर चले गये[6]। साथ मे व्याकरण के पारिभाषिक शब्दो का भी प्रयोग होने से कुछ क्लिष्टता अवश्य आ जाती है। १७ वे सर्ग का शृगार दर्शनीय है। १६ वें सर्ग का विवाह-वर्णन नल-दमयन्ति के विवाह का नैषध की याद दिलाता है[7]।

१— द्वयाश्रय सर्ग ४, श्लोक १७
२— द्वयाश्रय सर्ग १६, श्लोक ८२
३— द्वयाश्रय सर्ग २, श्लोक १७
४— द्वयाश्रय सर्ग १६, श्लोक १२, तथा सर्ग १५,श्लोक४१, और सर्ग१श्लोक,४
५— द्वयाश्रय सर्ग १, श्लोक ६ तथा १०
६— द्वयाश्रय सर्ग १, श्लोक १०
७— द्वयाश्रय सर्ग १७, श्लोक ६६

संक्षेप में, भारवि, माघ और श्री हर्ष इस बृहत्त्रयी ने जो कार्य संयुक्त रूप ले कर दिखाया वह अकेले आचार्य हेमचन्द्र ने किया है। कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थ-गौरव, दण्डिन् का पद-लालित्य, माघ की वर्णन निपुणता तथा नैषध की विस्तृत अलङ्कृत चमत्कृत शैली; ये सभी गुण हेमचन्द्र के काव्य में पाये जाते हैं। इतना ही नहीं उपर्युक्त सभी काव्यों से इनके काव्य में अधिक गुण हैं क्योंकि उपर्युक्त काव्य न तो शास्त्रीय काव्य हैं और न पुराण। हेमचन्द्र ने 'द्वयाश्रय' में शास्त्रकाव्य तथा त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित' पुराण लिखकर अपने साहित्य कर्तृत्व की चरमावधि दिखायी है। इसके साथ धर्म-प्रचार का उद्देश्य भी सफल हुआ है! इस धर्माचार्य को साहित्य-सम्राट कहने में अनुचित नहीं है।

युद्ध का वर्णन करते समय हेमचन्द्र ऐसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं कि प्रत्यक्ष आँखों के सामने युद्ध होना-सा प्रतीत होता है, एवं वीर रस का स्फुरण हो जाता है[1]। मूलराज का गृहरिपु पर आक्रमण 'रघुदिग्विजय' की बराबरी करता है। जहाँ वीर रस का उत्कृष्ट आविर्भाव होना है, वहीं साथ में ६ वें सर्ग में क्षेमराज द्वारा सरस्वती नदी के पास मण्डूकेश्वर पुण्य क्षेत्र में तप करने के वर्णन में शान्त रस का राज्य है[2]। १०वें सर्ग में संतानरहित कर्ण-राज की संतान के लिए लक्ष्मीदेवी की उपासना होती है। तपस्या-भंग के लिए प्रलोभनार्थ अप्सराओं का आगमन होता है, किन्तु कर्ण तपस्या में स्थिर रहता है। पश्चात् एक अत्यन्त भयानक उग्र पुरुष कर्ण को खाने दौड़ता है। फिर भी कर्ण अविचलित रहता है। अन्त में लक्ष्मी प्रसन्न होती है तथा पुत्र होने का वरदान देती है। इस वर्णन में भयानक तथा अद्भुत रस का मिश्रण हुआ है[3]। पहले तो भयानक रस का आस्वादन होता है तथा बाद में अद्भुत रस अनुभव में आता है। ११ वें सर्ग में जयसिंह के बाल्य वर्णन के समय वात्सल्य रस का प्रादुर्भाव हो जाता है। १७ वें सर्ग में शृंगार का साम्राज्य फैल जाता है तथा बाल-ब्रह्मचारी, कट्टर धर्म-प्रचारक एवं साधनारत योगनिष्ठ मुनि इस प्रकार का उत्तान शृंगार का वर्णन करते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। पाँचवें सर्ग में ग्रहारि के साथ युद्ध करने के पश्चात् ग्रहारि के प्राण रक्षा के लिए उसकी पत्नी जब आँचल पसार कर भीख माँगती है तब करुणरस प्रदर्शित होता है।

१— द्वयाश्रय सर्ग ११, श्लोक ७६

२— द्वयाश्रय सर्ग ६, श्लोक ७९ से ८३

३— संस्कृत द्वयाश्रय सर्ग १०, श्लोक ६०

कुमारपाल चरित में रस-भाव योजना — रस और भावाभिव्यञ्जन की दृष्टि से यह प्राकृत काव्य उच्च कोटि का है। शृंगार, शान्त, और वीर इन रसों से सम्बन्धित अनेक श्रेष्ठ पद्य आये हैं। एक विटपुरुष आसन पर बैठी हुई अपनी प्रिया की आँखें बन्द कर प्रेमिका का चुम्बन कर लेता है। कवि हेम ने इस सन्दर्भ का सरस वर्णन किया है[1]। जब उस प्रियतमा को उसकी धूर्तता का आभास मिला तो वह उससे रुष्ट हो गयी। अत. वह उसको प्रसन्न करता हुआ चाटुकारिता पूर्वक कहने लगा,'प्रिये, झूठी बात सुनकर क्रोध मत कर, मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरी हो। भला तुम्हारे अतिरिक्त मैं अन्य किसी से प्रेम कर सकता हूँ। तुम्हे भ्रम हो गया है'। इस प्रकार चाटुकारी की बातें कर उस विचक्षण नायिका को वह प्रसन्न क ता है।

दशार्णपति को जीतकर कुमारपाल की सेना ने उसकी नगरी को लूटकर उसका सारा धन ले लिया। कवि ने इस युद्ध के इस प्रसङ्ग का सुन्दर वर्णन किया है[2]। अमथित दुग्ध के समान श्वेत कीर्तिधारी आपके तेज और प्रताप की उष्णता ने दशार्ण नृपति के कीर्तिरूपी पुष्प को म्लान कर दिया है। आपकी सेना ने समुद्र मन्थन के समान नगर का मन्थन कर सुवर्णरत्नादि को लूट लिया है। दशार्णपति का नगर समुद्र के समान विशाल था, इसी कारण कवि ने रूपक द्वारा जलधि कहा है। इन पद्यो मे कवि ने रूपक अलङ्कार की योजना कर वीरता का वर्णन किया है। सेना दवारा दशार्णपति के नगर को लूटे जाने का सुन्दर और सजीव चित्रण किया है।

भावो की शुद्धि पर बल देता हुआ कवि कहता है कि गगा-जमुना आदि नदियो म स्नान करने से शुद्धि नही हो सकती। शुद्धि का कारण भाव है। अत जिसकी भावनाएँ शुद्ध हैं, आचार-विचार पवित्र है, वही मोक्ष-सुख प्राप्त करता है[3]। *गगा, यमुना,* सरस्वती और नर्मदा नदियों मे स्नान करने से यदि शुद्धि हो तो महिप आदि पशु इन नदियो मे सदा ही डुबकी लगाते रहते है, अत

१— प्राकृत द्वयाश्रय–सर्ग ३, श्लोक ७४ तथा ७५ गाथा।

२— प्राकृत द्वयाश्रय–सर्ग ६, गाथा ८१-८२।

अणवठिअ–दुद्ध सुइजस पयाव धममट्टि आरि-जसकुसुम।
तुह गाण्ठिअ-चूहेणा विरोलिओ तस्स पुरजल ही॥
मन्तिह-दहिणो तुप्पवधुरुप्लिआ तस्स नयरयोकणय।
गिण्ने हिं तुह सेणिएहि अव अच्छिआ आहे॥ ६-८१-८२

३— प्राकृत द्वयाश्रय सर्ग ८ श्लोक ८०

उनकी शुद्धि भी हो जाना चाहिए। जो लोग अज्ञानता पूर्वक इन नदियो मे स्नान करते हैं और अपने आचर-विचार को पवित्र नही बनाते उन्हे कुछ भी लाभ नही हो सकता। भावनाओ और क्रिया-व्यापारो को पवित्र रखने वाला व्यक्ति ही मोक्ष-सुख को पाता है।

इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने रस और भावो की सुन्दर और सजीव अभिव्यञ्जना की है। दोहक, मनोरमा आदि अन्य मात्रिक छन्दो का व्यवहार भी किया गया है। सर्गान्त मे छन्द बदला हुआ है। वर्णिक छन्दो मे इन्द्रवज्रा का प्रयोग अनेक स्थानो पर हुआ है। शास्त्रीय दृष्टि से इसमे महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते है। कथा सर्ग-बद्ध और शास्त्रीय लक्षणो के अनुसार आठ सर्गो मे विभक्त है। वस्तु-वर्णन, सवाद, भावाभिव्यञ्जन, एव इतिवृत्त मे सन्तुलन है।

द्वयाश्रय काव्य के वर्णन यथार्थवादी एवम् चित्रात्मक है। उदाहरणार्थ अणहिलपुर का वर्णन, कर्ण जब तप कर रहे थे तब सुखदायक मानसून के आगमन का वर्णन, अर्बुदाचल का वर्णन, सिन्धु नदी का वर्णन इत्यादि। ऋतु-वर्णन जल-विहार वर्णन भी अन्य महाकाव्यो से अधिक यथार्थवादी प्रतीत होते हैं। युद्ध वर्णन ओजो गुण सम्पन्न एवम् वीर रस पूर्ण है। मयणल्ल देवी की कथा सुन्दर है। उसमे भावनात्मक स्पर्श है। कम से कम इस भाग का वर्णन करते समय वे भूल गये होगे कि वे एक महान वैयाकरण थे। पठन करने का कुतूहल सदैव बना रहता है, प्रशस्तियाँ दरबारी कवित्व का सुन्दर नमूना हैं।

इस प्रकार 'द्वयाश्रय' काव्य का प्रधान रस वीर है, किन्तु अन्य सभी रसो का भी सुन्दर परिपाक हुआ है।' त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित' मे वैदिक पुराणो के अनुसार ही अद्भुत शैली अथवा अतिशयोक्ति शैली को स्वीकार किया गया है, अत अतिशयोक्ति अलङ्कार एवम् अद्भुत रस सर्वत्र विद्यमान है। धर्म प्रभाव भी व्यापक होने के कारण शान्तरस भी आस्वाद्य है। साधारण लोगो म धर्म भावना जागृत करने के लिए यह आवश्यक भी है। किन्तु दूसरे वर्णन भी कम सुन्दर नही है। विशेषत नगरो का वर्णन भव्य एवम् तत्कालीन वास्तुकला के अनुरूप मिलता है। इस महापुराण मे धर्म भावना ही केन्द्र बिन्दु का काम कर रही है। इस केन्द्र बिन्दु के आसपास अनेक कहानियो का विस्तार है। इन कहानियो पर बुद्ध जातको का पर्याप्तप्रभाव पडा है। एवम् उदात्तरस का परिपोष कर सत्य, शान्ति, क्षमा, अहिंसा आदि सद्गुणो को अपनाने के लिए ये कहानियाँ प्रेरणा देता है। हेमचन्द्र के काव्यग्रन्थ सद्गुक्तियो के आकर है। सर्वत्र सद्गुक्तियाँ बिखरी हुई मिलती है।

वीतराग स्तोत्र तथा द्वात्रिंशिका काव्य हेमचन्द्र के भक्ति काव्य के नमूने है। इनमे धर्म-तत्व के विवेचन के साथ भगवान महावीर के प्रति भक्ति की भावना ओतप्रोत है। अत इन काव्यो मे भक्ति रस है। भक्ति युक्त अन्त करण से भगवान महावीर की शरण मे जाने के लिए कहा है। वीतराग स्तोत्रो को पढते समय शिवमहिम्न स्तोत्र एवम् रामरक्षा स्तोत्र का स्मरण हो आता है।

हेमचन्द्र के भक्ति-काव्यो की सबसे बडी विशेषता है-उनकी शान्तिपरकता। कुत्सित परिस्थितियो मे भी वे शान्त रस से नही हटे। उन्होने कभी भी ओट मे शृ गारिक प्रवृत्तियो को प्रश्रय नही दिया। भगवान् पति की आरती के लिए घघूठो पर भगवती पत्नी का खडा होना ठीक है, किन्तु साथ हा पीन स्तनो के कारण उसके हाथ की पूजा की थाली के पुष्पो का बिखर जाना कहाँ तक भक्ति-परक है? राजशेखर सूरि के 'नेमिनाथ फागु' म राजुल का अनुपम सौन्दर्य अङ्कित है किन्तु उसके चारो ओर एक ऐसे पवित्र वातावरण की सीमा लिखी गयी है जिससे विलासिता को सहलन प्राप्त नही हो पाती। उसके सौन्दर्य मे जलन नही, शीतलता है। वह सुन्दरी है, पर पावनता की मूर्ति है। उसको देखकर श्रद्धा उत्पन्न होती है। आचार्य हेमचन्द्र के 'परिशिष्टपर्वन्' मे कोशा के मादक सौन्दर्य और कामुक विलास-चेष्टाओ का चित्र खीचा गया है। मुनि स्थूलभद्र के सयम को डिगाने के लिए सुन्दरी कोशा ने अपने विशाल भवन म अधिकाधिक प्रयास किया, किन्तु कृतकृत्य न हुई। कवि को कोशा की मादकता निरस्त करना अभीष्ट था। अत उसके रतिरूप और कामुक भावो का अङ्कन ठीक ही हुआ। तप की दृढता तभी है, जब वह बडे से बडे सौन्दर्य के आगे भी दृढ बना रहे। कोशा जगन्माता नही, वेश्या थी। वेश्या भी ऐसी वैसी नही, पाटलीपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या। यदि आचार्य हेमचन्द्र उसके सौन्दर्य को उन्मुक्त भाव मे मूर्तिमन्त न करते तो अस्वाभाविकता रह जाती। उससे एक मुनि का सयम बलवान प्रमाणित हुआ है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म की उपासना के रूप मे दो प्रकार की भक्तियो से सभी परिचित हैं। किन्तु निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान का स्वरूप एक मानने के कारण दोना मे जैसी एकता आचार्य हेमचन्द्र के काव्य मे सम्भव हो सकी है वैसी अन्यत्र कही नही। अन्यत्र दोना के बीच एक मोटी विभाजक रेखा पडी है। इनके काव्य मे सिद्ध भक्ति के रूप मे निष्कल ब्रह्म और तीर्थङ्कर भक्ति म सकल ब्रह्म का केवल विवेचन के लिए पृथक् निरूपण है, अन्यथा दोनो एक ही हैं।

आचार्य हेमचन्द्र का आराध्य केवल दर्शन और ज्ञान से नहीं अपितु चरित्र से भी अलङ्कृत है। इनके काव्य में चरित्र की भी भक्ति की गयी है। चरित्र और भक्ति का ऐसा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। इस भक्ति का सम्बन्ध एक ओर बाह्य संसार से है, तो दूसरी ओर आत्मा से। इससे व्यक्तित्व में एक शालीनता आती है, व्यवहार में लोकप्रियता आती है, तथा आत्मा में परमात्मा का दिव्य तेज दमक उठता है। उन्होंने अर्हन्त और अर्हन्तप्रतिमा में कोई अन्तर स्वीकार नहीं किया है। चैत्य वन्दन के समान ही है। चैत्य मठों के आवास-गृह हैं, उनकी भक्ति भगवान के भक्तों की ही भक्ति है।

बहिरङ्गपक्ष—भाषा, शब्द-शक्ति, अलङ्कार, छन्द आदि—

भाषा — त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित की भाषा सरल, सरस एवं ओज-मयी है। आख्यान साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। जैन दर्शन का विवेचन भी सुरुचिपूर्ण है। इसमें वर्णन की अधिकता है। वैदिक पुराणों के समान ही हेमचन्द्र के पुराण में भी अतिशयोक्ति शैली का स्वच्छन्दता से प्रयोग किया गया है। तीर्थंकरों के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करने में आचार्य सिद्ध हस्त हैं। वैदिकों के कृष्णचरित्र के समान भगवान महावीर का चरित्र भी इतनी अद्भुत कथाओं से भरा है कि उसमें से वस्तुस्थिति का परिचय पाना अत्यन्त कठिन है। भगवान महावीर के मुख के आसपास सूर्य से सहस्र गुनी प्रभा है। उनका प्रतिबिम्ब नहीं गिरता। चरणों के नीचे सुवर्ण कमल उगे हुए हैं। एक करोड़ देव उनके परिवार में हैं। वे जहाँ जाते हैं सुवासित जलवृष्टि होती है, भूमि के कण्टक अधोमुख हो जाते हैं। आकाश में दुन्दुभी की ध्वनि होती है, आकाश में धर्मचक्र घूमता है, पुष्प वर्षा होती है और पक्षीगण उनकी प्रदक्षिणा करते हैं। उनका धर्म-ध्वज रत्नमय होता है। उनके शरीर में पसीना इत्यादि मल नहीं होते हैं। उनकी पलकें हिलती नहीं, चार मुख होते हैं, बाल और नाखून बढ़ते नहीं तथा वे आकाश में संचार करते हैं। तीर्थंकर जहाँ स्थित होते हैं उस प्रदेश में शतयोजनपर्यन्त दुर्भिक्ष नहीं होता। अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि होती नहीं। उस राज्य में परचक्र का भय नहीं होता। उनका शरीर सुलक्षण, मल-रहित, रोग-रहित, सुगंधित तथा सुन्दर होता है। इस प्रकार महज्ञानिमय और देवकृत अतिशय उनमें होते हैं।

द्व्याश्रय काव्य में कुछ क्लिष्टता जरूर आ गयी है, किन्तु यह क्लिष्टता व्याकरण के नियमों को समझाने के कारण नहीं आई है पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए चित्र काव्य की रचना से क्लिष्टता आयी है। कहते हैं कि व सन्धान

शैली मे सिद्धहस्त थे । काव्य के प्रवाह मे व्याकरण के नियम बडी सरलता से स्पष्ट किये है[१] । "नम स्वस्तिस्वधास्वाहाऽलंवषट् योगाच्च" इस पाणिनि-सूत्र की सोदाहरण व्याख्या ही मानो उपस्थित की । है जहाँ द्वयाश्रय काव्य में क्लिष्टता है वहाँ उनके स्तोत्र-काव्यों में प्रसादयुक्त भाषा है । भक्तिरस का वहाँ राज्य है । धर्मविवेचन का स्तर भी उन्नत है । तपस्या एव स्वानुभाव होने के कारण ही वे साहित्य मे महावीर की भक्ति प्रदर्शित कर सके है । भक्ति युक्त स्तुति होने पर भी सुन्दर काव्य के गुण उनमे विद्यमान है ।

शब्द-शक्ति —अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना, इन तीनो शब्द-शक्तियों का हेमचन्द्र ने अपने काव्य मे पर्याप्त उपयोग किया है । प्राय धर्म-प्रचारक शब्द की अभिधा-शक्ति से ही काम लेते है । लक्षण व्यापार अथवा व्यञ्जना व्यापार मे वे सिद्ध हस्त नही होते । आचार्य हेमचन्द्र जिन्होंने शब्दानुशासन एव काव्यानुशासन की रचना की, व्यञ्जना मे चमत्कार उत्पन्न करने मे निष्णात थे[२] । अपराधी मनुष्य के ऊपर भी प्रभु महावीर के नेत्र दया से तनिक नीची झुकी हुई पुतली वाले तथा करुणावश आये हुए किंचित आँसुओ से आर्द्र हो गये इसमे आचार्य हेमचन्द्र ने व्यञ्जना द्वारा यह सूचित किया है कि पापी भी भगवान की शरण मे जा सकता है । वह भी भगवान की दया का पात्र बनता है । इसमे गीता की उक्ति "स्त्रियो वैश्या तथा शूद्रोस्तेऽपि यान्ति परागतिम्" की ध्वनि मिलती है । नगर वर्णन मे वे प्राय अभिधा का ही प्रयोग करते है ।

अलङ्कार — स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति अपन्हुति, अर्थान्तरन्यास आदि सभी महत्वपूर्ण अलङ्कारो का हेमचन्द्र ने काव्य के प्रवाह मे प्रयोग किया है । अनुप्रास की छटा देखिये[३] । प्रात काल गोकुल मे वृद्धनरो ने अपने बच्चो से कहा—दूध निकालो, दूध पात्र मे रखो, पात्र मे रख कर वस्त्र से आवरण करो । तुमने दूध पी लिया अथवा छाछ चाहिये अथवा

१—द्वयाश्रय सर्ग ३, श्लोक ३४

स्वधा पितृभ्य इन्द्रायवषट् स्वाहा हविर्भुते ।
नमो देवेभ्य इत्यत्विग्वाच सत्यश्रिया फलान् ।। ३—३४

२—द्वयाश्रय सर्ग २ श्लोक ४८ ।

१, योगशास्त्र मगलाचरण
कृतापराधेऽपि जने कृपामन्थरसारयो . ।
ईप द्बाप्पार्द्रयोर्भद्र श्री वीर जिननेमयो ।।

३—द्वयाश्रय सर्ग १ श्लोक १८-१०

पानी से चलेगा ? उत्प्रेक्षा का उदाहरण[1] —अणहिलपुर की स्त्रियाँ चरित्रवती हैं—चचलता तो केवल सेना मे हैं। अणहिलपुर के विद्वानो की विद्वता को देखकर सप्तर्षि भूलोक छोडकर चले गये। सन्देह अलङ्कार का उदाहरण—इस नगर के लोग मृगनयनियो की तरफ देखकर तर्क करते हैं—ये प्रत्यक्ष कोमल हाथ हैं अथवा कमल ? हाथो के नख जो रक्तिमा लिये हुए हैं, कमलान्तर्गत केसर तो नहीं है ? इसमे मृगीदृशाम् मे रूपक अलङ्कार ही है। अतिशयोक्ति देखिये[2]—राजा का प्रताप देखकर सूर्य भी मन्द पड गया। शायद उसका प्रताप राजा ने छीन लिया होगा। कथा का प्रभाव देखिये। उसम नाद है, माधुर्य है स्वभावोक्ति के भी उदाहरण विद्यमान हैं[3]।

कुमारपाल चरित काव्य मे स्वाभाविक माधुर्य और सौन्दर्य के रहने पर भी उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, दीपक, अतिशयोक्ति, रूपक, आदि अलङ्कारो की सुन्दर योजना की है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार के व्यवहार द्वारा कवि हेम ने सरसता के साथ काव्य मे कमनीय भावनाओं का सयोजन किया है[4]। वसन्त के आगमन के समय उसका स्वागत करने के लिए वन के द्वार पर कोयल मधुर ध्वनि मे मगल पाठ कर रही है। यह मगल-पाठ ऐसा मालूम होता है कि जैसे काम विह्वल प्रोपितपतिकाएँ अपने पतिया के स्वागत के लिए मधुर वाणी मे स्तुतिपाठ करती हा। अतिशयोक्ति के प्रयोग द्वारा तथ्य का स्पष्टीकरण मनोरम

१—द्व्याश्रय सर्ग १ श्लोक ३६

दुग्ध स्म दुग्ध स्म निधत्यपार्यां पिधत्तदात्यसम च दात्तचापि।
तत्राणि वा दाद्व विमम्नु दाद्वेत्याहु सम सम्प्रति घोप वृद्धा. ॥ २—४८
अमूपाणी मृद्र पद्म किमु किं नु नरवा अमो।
केसराणीनि तर्क्यन्ते जनैरस्मिन्मृगीदृशाम् ॥ १—३६

२—द्व्याश्रय सर्ग २ श्लोक १७

त्वयामदीयोप मया त्वदीयो राजन् प्रतापोनुहृत स्त्वयीति।
तर्कुलोभानुरदेति मन्दमियाशय सम्प्रति मादिद्धाम् ॥ २—१७

३—अन्ययोग व्यवच्छेद श्लोक १६

४—कुमारपाल चरित सर्ग ३ श्लोक ३४।

रूप मे इस प्रकार उपस्थित किया है[1]। गौर वर्ण के नागरिक अपनी-अपनी पत्नियों सहित भवनो के ऊपर रमण करते हुए देव और नाग कुमारो द्वारा आश्चर्य पूर्वक देखे जाते है। अर्थात वहाँ की नारियाँ अपने सौन्दर्य से अप्सराओ को और पुरुष देवो को तिरस्कृत करते हैं।

छन्द — सस्कृत के सभी लोकप्रिय छन्दो का हेमचन्द्र ने अपने काव्य मे उपयोग किया है। महाकाव्य के नियमों के अनुसार सर्ग के अन्त म छन्द मे परिवर्तन होता है, मालिनी अथवा शार्दूल विक्रीडित छन्द का वे स्तुति मे प्रयोग करते है। द्वात्रिंशिका स्तुति मे उन्होंने रुढि के अनुसार उपजाति छन्द का ही प्रयोग किया है तथा अन्त मे शिखरिणी का प्रयोग किया गया है। रामायण, महाभारत तथा पुराणो को आदश मानकर हेमचन्द्र न अपनी पुराण की रचना की जिसमे पुराणो के अनुसार अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रो० जेकोबी का मत है कि काव्य की दृष्टि से इनका अनुष्टुभ् सदाप है। किन्तु पुराणों मे अनुष्टुभ् इस प्रकार के ही पाये जाते हैं।

हेमचन्द्र के काव्य की महत्ता— महाकाव्य, पुराणकाव्य एवम् स्तोत्र काव्य आदि काव्य के प्रत्येक क्षेत्र मे हेमचन्द्र की नवनवोन्मेपशालिनी प्रतिभा के दर्शन होते है। इनके काव्य मे विस्तार के साथ गम्भीरता भी है। केवल धर्म प्रचार का हेतु सामने रखकर काव्यनिर्मित करने वाले महाकवियों मे अश्वघोष के पश्चात् आचार्य हेमचन्द्र का ही नाम आदर पूर्वक लिया जा सकता है। किन्तु अश्वघोष का काव्य शास्त्र काव्य' नही है। हेमचन्द्र ने द्वयाश्रय 'शास्त्र काव्य लिखकर गुजरात मे प्रारब्धा शास्त्र काव्य रचना-शैली की परम्परा को विकासित, वृद्धिगत तथा परिवर्धित किया। यद्यपि भट्टि के पश्चात् कतिपय शास्त्रकाव्य-कार हुए हैं फिर भी इनमे विशेप उल्लेखनीय आचार्य हेमचन्द्र ही है। 'भट्टिकाव्य-कार' ने अपने भट्टिकाव्य मे केवल सस्कृत भाषा के सम्बन्ध मे ही कहा है किन्तु हेमचन्द्र ने अपने शास्त्रकाव्य मे सस्कृत, प्राकृत दोनो का सफलतापूर्वक वहन किया है। इस प्रकार भट्टि के पश्चात् प्राय तीन-चार शताब्दियो तक जो परम्पार सुप्त सी हो गई थी उस परम्परा का उन्होंने न केवल उत्थान अपितु परिवर्धन भी किया।

१–कुमारपाल चरित सर्ग १ श्लोक १२।
सा वासना सा क्षणसन्ततिश्च ना भेदभेदावुभयेघंटेते।
ततस्तटादाशि शकुन्तपोत न्यायात्त्वदुक्तानि परेश्रयन्तु॥ १६

हेमचन्द्र अपने समय के अद्भुत पण्डित थे और उनकी कीर्ति का प्रसार उस समय के संस्कृत-शिक्षा के केन्द्र काश्मीर मे भी हुआ था। महाकवि कालिदास की भाँति उन्होंने अपने काव्य का कथानक महाभारत अथवा पौराणिक स्रोत से नही किन्तु ऐतिहासिक स्रोतो म लिया और उस पर अपनी प्रखर प्रतिभा की छाप बैठा दी। सचमुच उनके 'द्वयाश्रय' काव्य मे काव्यसौन्दर्य तथा व्याकरण का मणिकाञ्चन सयोग है। उनकी कविता संस्कृत-साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। शब्दो के सुन्दर विन्यास मे, भावो के समुचित निर्वाह मे, कल्पना की ऊँची उडान म तथा प्रकृति के सजीव चित्रण मे इस महाकाव्य का काव्यजगत् मे अद्वितीय स्थान है। स्तोत्र काव्य की उनकी कविता सहृदयो के मन को हरती है। शब्द और अर्थ की नवीनता उसे सचमुच 'एकार्थमत्यजतोनवार्थघटनाम्' बना देती हैं। 'द्वयाश्रय, मे एक ही विषय पर कई श्लोको में वर्णन मिलेगा, पर सर्वत्र नवीन शब्दावली एवम् अभिनव पद-रचना उपलब्ध होती है। अतिशयोक्ति की उद्भावना मे, उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, विरोधाभास तथा श्लेष के समुचित प्रयोग मे हेमचन्द्र अद्वितीय हैं। शब्दार्थ का सामञ्जस्य मनोहर है।

भट्टि के अतिरिक्त सम्भवत महाकवि 'माघ' का 'शिशुपाल वध' भी हेमचन्द्र के सामने आदर्श रहा होगा। इनका सारा काव्य प्रौढ एव उदात्त शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रत्येक वर्णन सजीव एवम् सालङ्कार है।

कुछ आलोचको ने द्वयाश्रय काव्य पर कृत्रिमता और आडम्बर की अधिकता का दोषारोपण किया है पर उनके काव्य के विशेष प्रयोजन को ध्यान मे रखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि उसमे वास्तविक काव्य के गुणो की कमी नहीं। पहले तो उन्हे व्याकरण के जटिल से जटिल नियमो के उदाहरण उपस्थित करते थे और दूसरे अपने काव्य के सर्वजनविदित कथानक मे मौलिकता का सन्निवेश करना था। इसमे सन्देह नहीं कि इन उभय उद्देश्यो का एक साथ निर्वाह करना किसी भी कवि के लिए नितान्त कठिन कार्य है। इस कठिनाई के रहते हुए भी हेमचन्द्र के महाकाव्यो मे रोचकता, मधुरता और काव्योचित सरसता का अभाव नहीं है। उनके प्रभावशाली सवाद, प्राकृतिक दृश्यो के मनोरम चित्रण, प्रौढ्व्यञ्जना प्रणाली तथा वस्तु-वर्णन उत्कृष्ट कोटि के है। हेमचन्द्र के काव्य का मूल्याङ्कन श्री विंटरनीत्ज, वरदाचारी एवम् एस० के० डे० ने उचित

रूप से किया है[1]। 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित' में कथा के प्रवाह मे बीच-बीच मे जैनधर्म के सिद्धान्तो का आवश्यक रूप से प्रतिपादन किया गया है। कही-कही गूढ दार्शनिक तत्वों को काव्य रूप मे प्रस्तुत करने के फलस्वरूप शैली मे शिथिलता एवं दुरूहता आ गयी है।

पण्डित कवियों मे स्थान-- महाकवि कालिदास के पश्चात् महाकवि भारवि ने सस्कृत काव्य मे एक नवीन 'शैली' को जन्म दिया। श्री बलदेव उपाध्याय ने उसे 'अलङ्कृत शैली' का नाम दिया। उसे कृत्रिम शैली भी कहते है। इस समय तक संस्कृत भाषा का क्षेत्र राजसभा तक ही सीमित रह गया था। राजसभा मे उपस्थित पण्डित-समाज का मनोरंजन करना ही संस्कृत कवियो का कार्य हो गया था। अत. पण्डित जन के मनोरंजनार्थ पण्डित कवियो ने पाण्डित्यपूर्ण शैली,–अलङ्कृत शैली का आरम्भ किया। इस शैली के अन्तर्गत धीरे-धीरे भाषा ने अपनी सरलता छोडकर क्लिष्ट शब्दो और दीर्घ समासो का आश्रय लिया। परिणामतः इन काव्यो मे सरलता और स्वाभाविकता की कमी है। इन पण्डित कवियो ने काव्य का उद्देश्य बाह्य शोभा–अलङ्कार, श्लेष योजना एवम् शब्दविन्यासचातुरी तक ही सीमित कर दिया। अलङ्कार कौशल का प्रदर्शन करना तथा व्याकरण आदि शास्त्रो के नियमो के पालन मे अपनी निपुणता सिद्ध करना ही उनका प्रधान लक्ष्य हो गया। काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलङ्कृत करने की कला प्रधान हो गयी।

इन काव्यो के रचयिता प्रायः राजाओ के आश्रित हुआ करते थे। वे राजा स्वय साहित्यिक रुचि के व्यक्ति होते थे और उनमे वास्तविक गुणो की परीक्षा करने की क्षमता होती थी। राज-सभाओ के इस प्रभाव के कारण तत्कालीन सस्कृत महाकाव्यो पर राजकीय जीवन की–उसकी विलासिता तथा कृत्रिमता की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है। भाव-प्रदर्शन का स्थान वैदग्ध्य-प्रदर्शन ने

1 –*The famous* वीतराग स्तोत्र *of the* great आचार्य हेमचन्द्र written at the request of king Kumarpal is ostensibly a poem in praise of महावीर, the Passionless One; but it is also a poetical mannual of जैन doctrine divided into 20 parts ....written in the direct and forcible language of knowledge and adoration.

Aspects of Sanskrit Lietrature–S. K. Dey.

In his poem called कुमारपाल चरित written in Sanskrit and '

ले लिया तथा कल्पना की प्रधानता हो गयी । इन काव्यों पर 'कामशास्त्र तथा अलङ्कार शास्त्र का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा । अलङ्कार शास्त्र ने काव्य सम्बन्धी नियमों को निर्धारित किया तथा कामशास्त्र ने नायक-नायिका के आचार-विचार को प्रस्तुत किया । शास्त्रीय सिद्धान्त की प्रधानता ने इन पण्डित कवियों का अपनी स्वतन्त्र उद्भावना-शक्ति के प्रति सतर्क कर दिया । उन्होंने शास्त्रीय मत को श्रेष्ठ, और अन्त प्रेरणा को गौण मान लिया ।

पण्डित कवियों की यह अलङ्कृत शैली इतनी लोकप्रिय हुई कि 'भारवि' के पश्चात् इस शैली से युक्त काव्य-निर्माण करने की होड लग गयी । शिशुपाल वध' के रचयिता 'माघ' ने मानो स्पर्धा की भावना रखकर ही अपने काव्य को 'भारवि' से भी अधिक पाण्डित्यपूर्ण बनाया । माघ के काव्य मे भारवि के 'किरातार्जुनीय' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, तो रत्नाकर के हर विजय' नामक महाकाव्य पर माघ का प्रभाव स्पष्ट दर्शित होता है । भट्टि के 'भट्टि-काव्य' ने इस परम्परा मे एक और अध्याय जोड दिया अलङ्कृत शैली के साथ-साथ व्याकरण के जटिल नियमो के उदाहरण प्रस्तुत करना भी इन पण्डित कवियों का लक्ष्य बन गया । इस प्रकार भारवि मे आरम्भ होने वाला अलङ्कृत शैलीयुक्त काव्य 'शास्त्र काव्य' मे परिणत हो गया । यह उसी अलङ्कृत शैली की चरम सीमा है ।

Prakrit, the learned Jain Monk, Hemchandra proves himself simultaneously a poet, historian, and grammarian in the two languages The work contains the history of चालुक्या particullarly of कुमारपाल in cantoes 16–20 This prince is extolled above all as a pious Jaina . it is evident that कुमारपाल was full in life and at the peck of his fame when the poem was written

H Winternitz–History of India Literature Vol III P. I Page 102

".. . Some poems were written for the main purpose of preaching the religion परिशिष्ठ पर्वन् has a number of popular tales which the author introduced into his biographical narrations about Jain Saints History of Sanskrit Literature by वरदाचारी Page 84, 91, 101, 122, 126

इस पण्डित शैली का प्रभाव 'जैन महाकाव्यों' में भी परिलक्षित होता है। हरिचन्द्र नामक कवि ने 'धर्मशर्माभ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की, जो इसी कृत्रिम शैली का प्रतीक है। १२०० ई०के वाग्भट के 'नेमिनिर्वाण' काव्य पर 'धर्मशर्माभ्युदय' का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'धर्मशर्माभ्युदय' में चित्रालङ्कारों की भरमार है। १२०० शताब्दी में ही महाकवि कविराज ने 'राघवपाण्डवीय' नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें प्रत्येक श्लोक में श्लेष द्वारा रामायण और महाभारत की कथा का साथ-साथ वर्णन किया गया है। बाद में इस काव्य का भी अनुकरण होने लगा तथा व्याकरण प्रधान शास्त्र काव्य की परम्परा विकसित होने लगी। श्री हरदत्तसूरि के 'राघवनैषधीय' में नल और राम की ओर चिदम्बरकृत 'राघवयादवपाण्डवीय' में रामायण, महाभारत तथा भागवत् की कथा एक साथ वर्णित है। विद्यामाधव रचित' पार्वती रुक्मिणीय' में शिव-पार्वती तथा कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का एक साथ वर्णन किया गया है। वेंकटाध्वरि के 'यादवराघवीय' में सीधे पढने से राम तथा उलटे पढने से कृष्ण की कथा का वर्णन है। पण्डित काव्य का चरमोत्कर्ष श्री हर्ष के 'नैषध' मे देखने को मिलता है जिन्होंने अपने काव्य को जानबूझ कर क्लिष्ट बनाया। उन्होंने कहा है, 'पण्डित होने का दर्प करने वाला कोई दुःशील मनुष्य इस काव्य के मर्म को हठपूर्वक जानने का चापल्य न कर सके इसलिये हमने जानबूझ-कर कहीं-कहीं इस ग्रन्थ मे ग्रन्थियाँ लगा दी हैं। जो सज्जन श्रद्धा-भक्ति पूर्वक गुरु को प्रसन्न करके इन गूढ ग्रन्थियों को सुलझा लेंगे, वे ही इस काव्य के रस की लहरों में हिलोरे ले सकेंगे।'

पण्डित कवियों म आचार्य हेमचन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है, इनका काव्य 'पण्डितकाव्य' होकर 'शास्त्रकाव्य' भी है। इनके काव्य में कुछ ऐसी विशेषता पायी जाती है जो अन्य पण्डित कवियों के काव्य मे नहीं पायी जाती है। पहली विशेषता तो यह है कि उनमे धर्म-प्रचार की भावना ओतप्रोत है। चमत्कृत शैली में व्याकरण बताते हुए उन्होंने अपने धर्म का प्रभावपूर्ण प्रचार किया है एवम् कुमारपाल को श्रावक धर्म में आचार-बद्ध किया है। यह बात अन्य पण्डित काव्य मे तथा शास्त्र काव्य मे नहीं पायी जाती। दूसरी विशेषता उनका काव्य ऐतिहासिक काव्य है। संक्षेप में, आचार्य हेमचन्द्र के काव्य में संस्कृत बृहत्त्रयी के अनुसार पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृत शैली है, भट्टि के अनुसार व्याकरण का विवेचन है, अश्वघोष के अनुसार धर्म-प्रचार है एवम् कल्हण के अनुसार इतिहास भी है। इतनी सारी बातें एक साथ अन्य किसी भी काव्य में पायी नहीं जाती। अतः

नि सन्देह आचार्य हेमचन्द्र का पण्डित-कवियो मे मूर्धन्य स्थान है । उनके जैसे पण्डित के द्वारा सिद्धराज जयसिंह की पण्डित सभा यथार्थ मे पण्डित सभा हो गयी थी। 'सिद्ध हेम शब्दानुशासन', 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित' आदि मे उन्होंने को राजा की स्तुति मे प्रशस्ति श्लोक लिखे हैं वे दरबारी काव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं।

हेमचन्द्र के काव्य-ग्रन्थों का ऐतिहासिक एवम् पौराणिक पक्ष—

अन्य साहित्य के समान सस्कृत के ऐतिहासिक काव्य मे भी आचार्य हेमचन्द्र का स्थान विशिष्ट है। सस्कृत ऐतिहासिक-काव्य मे 'काव्य' को महत्व अधिक दिया जाता है, इतिहास को कम । कही कही तो इतिहास के तरफ ध्यान ही नही दिया जाता, और कही कही इतिहास का अतिशयोक्ति मे विपर्यास किया जाता है। इस प्रकार का विपर्यास बिल्हण के 'विक्रमाङकदेवचरित' मे देखा जा सकता है किन्तु आचार्य हेमचन्द्र के 'कुमारपाल चरित' अथवा 'द्वयाश्रय' काव्य मे ऐतिहासिक तथ्यो की उपेक्षा नही की गयी है । इस दृष्टि से हेमचन्द्र के काव्य ग्रन्थो का ऐतिहासिक पक्ष अत्यन्त सबल सिद्ध होता है।

प्राचीन काल के पुराणो मे तत्कालीन धार्मिक सामाजिक एवम् सास्कृतिक जीवन का विशद् चित्र उपलब्ध होता है । बौद्धो और जैनो के ग्रन्थो म भी ऐतिहासिक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है । प्राचीन राजाओं की प्रशस्तियो मे ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध होते हैं। फिर भी इन्हें ऐतिहासिक काव्य नही कह सकते। अश्वघोष (१ ई०) का 'बुद्धचरित' ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है किन्तु वह अधिकाशत काव्य है। धर्मोपदेश उसका उद्देश्य है। अत ऐतिहासिक दृष्टि से उसका महत्व नही है । सर्वप्रथम ऐतिहासिक गद्य-काव्य की रचना करने का श्रेय बाण भटट(ई०६०६-६४८)को है। उनके 'हर्षचरित' मे महाराज हर्षवर्धन का चरित्र अङ्कित है । इसमे इतिवृत्तो का उल्लेख कवित्वमय भाषा व मे दिया गया है । किसी घटना की तिथि भी नही दी गई है । राज्यवर्धन को मारने वाले गौडाधिप का 'हर्षचरित' मे कही नाम तक नही बतलाया गया है, अतएव काव्य का ऐतिहासिक महत्व कम हो गया है। वाक्पति राज का 'गौडवहो' नामक प्राकृत ऐतिहासिक काव्य है (७३६ ई०) । गौडवहो मे ऐतिहासिक बातो का वर्णन बहुत ही कम है। उसमे यशोवर्मा द्वारा एक गौड राजा के परास्त करने की घटना का वर्णन है, किन्तु उस गौड राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है । ई० १००५ मे पदमगुप्त अथवा परिमल कालिदास का नवसाहसाङक चरित की रचना हुई । इसमे भी विस्तृत वर्णना से

कथा का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है तथा ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व कम हो गया है। बिल्हण ने १०८५ई०के लगभग 'विक्रमाङ्कदेव चरित' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की। इसमे चालुक्य वंशी राजा विक्रमादित्य का चरित्र वर्णित है, कवि ने अपने चरितनायक का अतिरंजित वर्णन किया है। जगह-जगह पौराणिक और अलौकिक प्रसङ्गो के उल्लेख से काव्य का ऐतिहासिक पक्ष निर्बल पड गया है। घटनाओ की तिथियाँ भी सूचित नही की गई है। महाकवि कल्हण-कृत राजतरङ्गिणी' (११४८–५१ ई०) ऐतिहासिक काव्यो मे सबसे अधिक महत्वमय है। यदि कहा जाये कि 'राजतरङ्गिणी' सस्कृत साहित्य मे ऐतिहासिक घटनाओ के क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रथम प्रयास है तो अत्युक्ति नही होगी। कल्हण ने आदि काल से लेकर सन् ११५१ के आरम्भ तक काश्मीर के प्रत्येक राजा के शासनकाल की घटनाओ का यथाक्रम विवरण दिया है। सरकृत के प्राचीन ऐतिहासिक महाकाव्यो मे यही एकमात्र कृति है जिसमे तिथियो का निर्देश किया गया है। कही-कही कल्हण की कालगणना भ्रान्तिपूर्ण है। फिर भी 'राजतरंगिणी' सस्कृत की अमूल्य कृति है।

कल्हण के अनन्तर रचे गये ऐतिहासिक काव्यो मे आचार्य हेमचन्द्र का 'कुमारपाल चरित' अथवा 'द्वयाश्रय' काव्य ही महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि अणहिलवाड के चालुक्य वशी राजा कुमारपाल के सम्मानार्थ इस ऐतिहासिक काव्य की रचना की गयी। प्रो० पारीख का यह मत, जो सर्वथा उचित प्रतीत होता है, 'कि सस्कृत द्वयाश्रय का अधिकाश भाग सिद्धराज जयसिंह के समय मे लिखा गया होना चाहिए।

"द्वयाश्रय काव्य" मे कुमारपाल के शासन का वर्णन करते हुए काव्य के १६ वें सर्ग से २० वें सर्ग तक जो कुछ कहा गया है उसमे कम से कम इतनी सत्यता है कि कुमारपाल जैन धर्म के सिद्धान्तो का सच्चा अनुयायी था। इसने अत्यन्त कठोर दण्ड का विधान करते हुए पशु-हिंसा का निषेध कर दिया था, और अनेकानेक जैन मन्दिरो का निर्माण कराया था। वह निश्चित रूप से जैन-धर्म के पक्ष-पात की नीति का अनुसरण करता था। कुमारपाल चरित मे निम्नाकित ऐतिहासिक तथ्य पूर्णतया सत्य हैं– (१) कुमारपाल का राज्याधिकार, (२) सत्यधर्मज्ञान प्राप्त करने की उसकी मनीषा, (३) हेमचन्द्र का पूर्व कालीन जीवन, (४) हेमचन्द्र और कुमारपाल का सम्बन्ध, (५) कुमारपाल का जैन-महोत्सवों को मनाना, (६) सौराष्ट्र मन्दिरो की कुमारपाल की यात्रा (७) गिरनार पहाड पर सोपान बनाना, (८) विहार पौषधशाला आदि का

निर्माण, (९) कुमारपाल का जैन धर्म मे अतीव रुचि लेना, (१०) कुमारपाल का दैनिक कार्यक्रम, (११) नमस्कार मन्त्र मे कुमारपाल की श्रद्धा तथा (१२) कुमारपाल के जीवन सम्बन्धी अन्य उल्लेख।

संस्कृत 'द्वयाश्रय काव्य' को "चालुक्यवंशोत्कीर्तन" भी कहा जाता है। श्री पारीख महोदय ने अपने ग्रन्थ अणहिलपुर के चालुक्य वंश के इतिहास मे संस्कृत 'द्वयाश्रय काव्य' का एव 'कुमारपाल चरित' का बहुत उपयोग किया है। "परिशिष्ट पर्वन्" मे महावीर के पश्चात् जम्बुस्वामी से लेकर वज्रस्वामी तक का इतिहास दिया गया है। इसी मे सम्राट श्रेणिक, सम्प्रति, चन्द्रगुप्त, अशोक, इत्यादि राजाओ का इतिहास भी गुथा हुआ है। हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व के अनुसार महावीर के निर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य राजा हुआ। हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व मे बतलाया गया है कि स्वयम्भव आचार्य ने अपने पुत्र मनक को अल्पायु जानकर उसके अनुग्रहार्थ आगम के सार-रूप दशवैकालिक सूत्र की रचना की। जिस प्रकार 'द्वयाश्रय काव्य' मे ऐतिहासिक पक्ष सबल है उसी प्रकार आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित मे पौराणिक पक्ष सबल है। यद्यपि हेमचन्द्राचार्य स्वय उसे एक महाकाव्य कहते हैं, फिर भी उसमे पौराणिक पक्ष सबल होने से वह एक जैन पुराण ही कहा जा सकता है। वैदिक पुराणो की सभी विशेषताएँ इस पुराण मे विद्यमान हैं। इस पुराण मे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, एव सांस्कृतिक जीवन का भी विशद् चित्र उपलब्ध होता है। संस्कृत के कथा साहित्य मे भी 'परिशिष्टपर्व' का उच्च स्थान है। यह सत्य है कि उन कथाओ को जैन सम्प्रदाय के मतानुसार परिवर्तित किया गया है क्योंकि जैन सम्प्रदाय मे अतीव आस्था होने के कारण उन्होंने वस्तुओं और घटनाओं को विशेष दृष्टिकोण से देखा है। यथानुसार चन्द्रगुप्त को एक जैन बताया गया है। इतना होने पर भी इस पुराण ने जैन संस्कृति मे प्राचीन पौराणिक परम्परा के अभाव की पूर्ति की है।

ऐतिहासिक एव पौराणिक पक्ष के समान आचार्य हेमचन्द्र का भक्तिपक्ष भी सबल है। भगवान महावीर की स्तुति मे उन्होंने प्रौढ़ दार्शनिक स्तोत्र लिखे। इससे सिद्ध होता है कि वे केवल शास्त्रो के निर्माता नहीं किन्तु सरस, सुरुचिपूर्ण काव्य के रचयिता भी हैं। भक्ति की दृष्टि से भी इन स्तोत्रो का उतना ही महत्व है जितना कि एक सुन्दर काव्य-कृति की दृष्टि से। इस सम्बन्ध मे प्रो. जैकोबी का मत द्रष्टव्य है।

" Hemchandra has very extensive and at the same time accurate knowledge of many branches of Hindu and Jaina learning, combined with great literary skill, and on easy style His strength lies in encyclopaedical work rather than in original research but the enormous mass of varied information which he gatherd from original sources, mostly lost to us makes his work an inestimable mine for phieological and historical research"[१]

1-(Encyclopaedia of religion of Ethics)
Vol. VI P. 591

अध्याय : ३

व्याकरण ग्रन्थ

हेमचन्द्र की व्याकरण रचनाएँ

संस्कृत व्याकरण का सर्वोत्कृष्ट रूप पाणिनिकृत "अष्टाध्यायी" मे पाया जाता है। उन्होने अपने से पूर्व के अनेक वैयाकरणो, जैसे—शाकटायन, शौनक, स्फोटायन, आपिशलि, आदि का उल्लेख किया है। जिससे व्याकरण-शास्त्र की अतिप्राचीन अविच्छिन्न विकास धारा का सङ्केत मिलता है। भगवान पाणिनि की रचना इतनी सर्वाङ्गपूर्ण व अपने से पूर्व की समस्त मान्यताओ का यथावश्यक यथाविधि समावेश करने वाली सिद्ध हुई कि उससे पूर्व की उन समस्त रचनाओ का प्रचार-प्रसार रुक गया और वे लुप्त हो गयी। पाणिनीय-तन्त्र इतना लोकप्रिय हुआ कि उससे भिन्न प्राचीन तन्त्र व्यवहार के परे हो जाने के कारण लुप्त-प्रायः हो गये। पाणिनी ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारो के अनेक सूत्र अपने ग्रन्थ मे सग्रहित किये हैं। पाणिनी के ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में यदि कुछ न्यूनता शेष रह गयी थी तो उसका शोधन वार्तिककार कात्यायन और भाष्यकार पतञ्जलि ने कर दिया। इस प्रकार पाणिनीय-व्याकरण-सम्प्रदाय को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसे शताब्दियो की परम्परा भी कोई क्षति नही पहुँचा सकी।

पाणिनि के पश्चात् अनेक वैयाकरणो ने व्याकरण-शास्त्र की रचना की। उत्तरकालीन वैयाकरणो मे से अधिकाश का आधार प्रायः पाणिनीय 'अष्टाध्यायी' है। केवल कातन्त्र व्याकरण के सम्बन्ध मे विद्वज्जनो की यह मान्यता है कि इसका आधार कोई अन्य प्राचीन व्याकरण है। इसी कारण कातन्त्र को भी प्राचीन माना जाता है। पाणिनीतर वैयाकरणो मे निम्न ग्रन्थकार प्रसिद्ध है—

१. कातन्त्रकार, २. चन्द्रगोमी, ३. क्षपणक, ४. देवनन्दी, ५. वामन, ६. पाल्यकीर्ति, ७. शिवस्वामी, ८. भोजदेव, ९. बुद्धिसागर, १० भद्रेश्वर ११ हेमचन्द्र, १२. क्रमदीश्वर, १३. सारस्वत व्याकरणकार, १४. वोपदेव तथा १५ पद्मनाभ[1]।

पाणिनीय परम्परा द्वारा संस्कृत भाषा का परिष्कृत रूप अवश्य स्थिर हो गया, किन्तु व्याकरण शास्त्र की अन्यान्य पद्धतियाँ भी साथ-साथ चलती रही जैन सम्प्रदाय मे देवनन्दी, शाकटायन, हेमचन्द्र आदि कई वैयाकरण हुए है। देवनन्दी ने अपने शब्दानुशासन मे पूर्ववर्ती छ जैनाचार्यो का उल्लेख किया है। उनके ग्रन्थ व्याकरण सम्बन्धी थे किन्तु ये ग्रन्थ अब उपलब्ध नही है। पाणिनि के परवर्ती वैयाकरणो मे हेमचन्द्रसूरि तक जो वैयाकरण हुए हैं उनमे देवनन्दी (ई० ५००–५५०) का 'जैनेन्द्र व्याकरण', कातन्त्र, पाल्यकीर्ति (८७१-९२४) का शाकटायन व्याकरण' एव भोजदेव (स १०७५–१११०) का 'सरस्वती कठाभरण' विशेष महत्वपूर्ण है। कातन्त्र व्याकरण का हेमचन्द्र पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। 'शाकटायन व्याकरण' भी हेमचन्द्र से पूर्व बहुत प्रसिद्ध था। हेमचन्द्र पर जैनेन्द्र तथा शाकटायन दानो का प्रभाव पडा है। भोजदेव का 'सरस्वती कठाभरण' मालवे के व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें संस्कृत भाषा का पुनरुद्धारक कहते हैं। इनके व्याकरण की लोकप्रियता को देखकर ही स्पर्धावश सिद्धराज जयसिंह ने हेमचद्र को व्याकरण बनाने की प्रेरणा दी।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समय मे उपलब्ध समस्त व्याकरण वाङमय का अनुशीलन कर अपने 'शब्दानुशासन' एव अन्य व्याकरण ग्रन्थों की रचना की। हेमचन्द्र के पूर्ववर्ती व्याकरणो मे तीन दोष–विस्तार, कठिनता एव क्रम-भग या अनुवृत्तिबाहुल्य, पाये जाते है, किन्तु शब्दानुशासनकार हेमचन्द्र उक्त तीनो दोषा से मुक्त है। उनका व्याकरण सुस्पष्ट एव आशुबोधक रूप मे संस्कृत भाषा के सर्वाधिक शब्दों का अनुशासन उपस्थित करता है। यद्यपि उन्होंने पूर्ववर्ती व्याकरणो से कुछ न कुछ ग्रहण किया है, किन्तु उस स्वीकृति मे भी मौलिकता और नवीनता है। उन्होने सूत्र और उदाहरणो को ग्रहण कर लेने पर भी उनके निबन्धन क्रम के वैशिष्ट्य मे एक नया ही चमत्कार उत्पन्न किया है। सूत्रो की समता, सूत्रो के भावों को पचाकर नये ढग के सूत्र एव अमोघ-वृत्ति के वाक्यों को ज्यों के त्यों रूप मे अथवा कुछ परिवर्तन के साथ निबद्ध-कर भी अपनी मौलिकता का अक्षुण्ण बनाये रखना हेमचन्द्र जैसे प्रतिभाशाली

१–व्याकरण दर्शनर इतिहास द्वारा–पण्डित गुरपद हालदार पृष्ठ ४४८।

व्यक्ति का ही कार्य है। उदाहरणार्थ –शाकटायन के 'नित्य हस्ते पाणौ'' स्वीकृतौ। १-१- ६ सूत्र के स्थान पर हेमचन्द्र ने' नित्य हस्ते पाणावुद्व हे ३-१-१५ सूत्र लिखकर स्पष्टता के प्रदर्शन के साथ उद्वाह्–विवाह् अर्थ मे हस्ते और पाणौ को नित्य ही अवयव माना है और कृग्धातु के योग मे गति सज्ञक कहकर हस्ते कृत्य पाणौकृत्य रूप सिद्ध किये है। इस प्रकार शाकटायन के सूत्र मे थो साडा परिवर्तन कर उन्होंने शब्दानुशासन के क्षेत्र मे चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। इसी प्रकार 'कणे मनस्तृप्तौ, ३-१-६, सूत्र लिखकर 'कणे हत्यपय' पिबति, मनो हत्य पयः पिबति,' इत्यादि उदाहरणा के अर्थ मे मौलिकता प्रदर्शित की है।

इस प्रकार हेमचन्द्र के पूर्व सस्कृत व्याकरण यद्यपि पर्याप्त विकसित रूप मे विद्यमान था तो भी उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्या के ग्रन्था का सम्यक् अध्ययन कर एक सर्वाङग परिपूर्ण उपयोगी एव सरल व्याकरण की रचना कर सस्कृत और प्राकृत दोनो ही भापाओ को पूर्णतया अनुशासित किया है। आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण गुजरात का व्याकरण कहलाता है। मालवराज अवन्तिनाथ भोज ने भी व्याकरण ग्रन्थ लिखा था और वहाँ उन्ही का व्याकरण प्रयोग मे लाया जाता था। विद्याभूमि गुजरात मे कलाप के साथ भोज-व्याकरण की भी प्रतिष्ठा थी। अतएव हेमचन्द्र ने सिद्धराज जयसिंह के आग्रह से गुर्जर देशवासियो के अध्ययन हेतु अपने व्याकरण ग्रन्था की रचना की। अमरचन्द्र-सूरि ने अपनी 'बृहत अवचूर्णी' मे उनके शब्दानुशासन की चर्चा की है। अतएव स्पष्ट है कि सिद्ध हेमशब्दानुशासन सन्तुलित और पचाङगपरिपूर्ण है। इसम प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ उदाहरण, और सिद्धि, ये छहो अङग पाये जाते है। आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण से हम सम्प्रदाय की नीव पडी। हेम व्याकरण या अन्य प्राचीन शब्दानुशासना के सदृश नही है। यह व्याकरण पाणिनीय तन्त्र की अपेक्षा लघु स्पष्ट और कातन्त्र की अपेक्षा सम्पूर्ण है। व्याकरण की साधारण जानकारी रखने वाला व्यक्ति भी उनके शब्दानु-शासन को हृदयङगम कर सकता है, तथा सस्कृत भापा के समस्त प्रमुख शब्दो के अनुशासन से अवगत हो सकता है। 'शब्दानुशासन'' मे विषय को स्पष्ट करने की दृष्टि से सूत्र सुव्यवस्थित एव सुसम्बद्ध है। सूत्रा का प्रणयन आवश्य-कतानुरूप किया है। एक भी सूत्र ऐसा नही है जिसका कार्य किसी दूसरे सूत्र से चलाया जा सकता हो।

१ **शब्दानुशासन** –– शब्दानुशासन के विषय मे कतिपय किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं जिनसे शब्दानुशासन की तत्कालिन प्रसिद्धि एव मान्यता सिद्ध होती

है। मेरुतुङ्गाचार्य के प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार एक बार सिद्धराज जयसिंह की राजसभा मे ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने कहा "हमारे शास्त्रो के पाणिन्यादि व्याकरण ग्रन्थो के अध्ययन के बल पर ही इन जैनो की विद्वत्ता है।" राजा ने भी यही पूछा। तब आचार्य हेमचन्द्र ने कहा 'जैनेन्द्र व्याकरण को हम पढ़ते हैं, महावीर ने इन्द्र के सामने जिसकी व्याख्या की थी' इस पर एक ब्राह्मण पिशुन ने कहा 'पुरानी बातो को छोड दो, हमारे समय के ही किसी व्याकरणकर्त्ता का नाम बताओ'। इस पर आचार्य हेमचन्द्र बोले 'महाराज सहायता दें तो मैं ही स्वय कुछ दिनो में पञ्चाङ्ग परिपूर्ण नूतन व्याकरण तैयार कर सकता हूँ'। राजा ने अपनी अनुमति प्रदान की[1]। इस पर बहुत से देशो के पण्डितो के साथ सभी व्याकरणों को मँगवाकर, हेमचन्द्राचार्य ने 'सिद्ध हेम' नामक नूतन पञ्चाङ्ग व्याकरण एक वर्ष में तैयार किया। इसमें सवा लाख श्लोक थे। इस व्याकरण ग्रन्थ का चल समारोह हाथी पर निकाला गया। इस पर श्वेतछत्र सुशोभित था एवम् दो चामर डोल रहे थे। राजा ने भी इस व्याकरण का खूब प्रचार करवाया। शब्दानुशासन के प्रचार के लिये ३०० लेखकों से ३०० प्रतियाँ लिखवाकर भिन्न-भिन्न धर्माध्यक्षों को भेंट देने के अतिरिक्त देश-विदेश, ईरान, सीलोन, नेपाल, प्रतियाँ भेजी गई थी। २० प्रतियाँ काश्मीर के सरस्वती भाण्डार में पहुँची। शब्दानुशासन के अध्यापनार्थ पाटन में ककल कायस्थ वैयाकरण नियुक्त किये गये। प्रतिमास ज्ञान शुक्ल पचमी (कार्तिक सुदी पचमी) को परीक्षा ली जाती थी और उत्तीर्ण होने वाले छात्र को शाल, सोने के गहने, छाते, पालकी आदि भेट में दिये जाते थे। शुद्धाशुद्ध की परीक्षा कर यह ग्रन्थ राजकीय कोश मे स्थापित किया गया। पुरातन प्रबन्ध सग्रह में भी प्रबन्ध चिन्तामणि का वृत्तान्त रूपान्तरित मिलता है। शब्दानुशासन कितना लोकप्रिय हुआ था इस विषय में पुरातन प्रबन्ध सग्रह में निम्नाकित श्लोक मिलता है।

"भ्रात पाणिनि! सवृणु प्रलपित कातन्त्र कथा वृथा।
मा कार्षी कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चान्द्रेण किम्॥
क कण्ठाभरणादिभि बर्ठरयत्यात्मान मन्यैरपि।
श्रूयन्ते यदि तावदर्थ मधुरा श्री सिद्ध हेमोक्तय॥

१—प्रबन्ध चिन्तामणि—पृष्ठ ४६०। २ शब्दानुशासनजातमस्ति तस्माच्च कथामिद प्रशस्य तममिति ? उच्यते तद्धि अति विस्तीर्ण प्रकीर्णञ्च। कातन्त्र तर्हि साधु भविष्य तीति चेन्न तस्य सकीर्णत्वात्। इद तु सिद्धहेमचन्द्राभिधान नास्ति विस्तीर्ण नच सकीर्णमिति अनेनैव शब्द व्युत्पत्तिर्भवति।....अमरचन्द्रसूरि-बृहत् अवचूर्णी

व्याकरण के क्षेत्र मे हेमचन्द्र ने पाणिनि, भट्टोजी दीक्षित और भट्टि का कार्य अकेले ही किया है। इन्होंने सूत्रवृत्ति के साथ प्रक्रिया और उदाहरण भी लिखे है। सस्कृत शब्दानुशासन ७ अध्याय मे और प्राकृत शब्दानुशासन एक अध्याय मे इस प्रकार कुल आठ अध्याय मे अष्टाध्यायी शब्दानुशासन को समाप्त किया है। उन्होंने सस्कृत शब्दानुशासन के उदाहरण सस्कृत द्वयाश्रय काव्य मे और प्राकृत शब्दानुशासन के उदाहरण प्राकृत द्वयाश्रय काव्य मे लिखे है।

आचार्य हेमचन्द्र सस्कृत के अन्तिम महावैयाकरण थे जिन्होंने शब्दानुशासन द्वारा सस्कृत भाषा का विश्लेषण पूर्ण रूप से किया और 'हेम सम्प्रदाय' की नीव डाली। पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' के अनुरूप उन्होंने भी अपने व्याकरण को ८ अध्यायो व प्रत्येक अध्याय को ४ पादो मे विभाजित किया। उनकी विशेषता यह है कि सस्कृत सम्पूर्ण व्याकरण ७ अध्यायो मे समाप्त करके अष्टम् अध्याय मे प्राकृत व्याकरण का भी प्ररूपण ऐसी सर्वांगपरिपूर्ण रीति से किया कि वह अद्यावधि अपूर्व कहा जा सकता है। उनके पश्चात् जो प्राकृत व्याकरण बने, वे बहुधा उनका ही अनुकरण करते हैं। विशेषत शौरसेनी, मागधी, पैशाची प्राकृतो के स्वरूप तो कुछ न कुछ उनके पूर्ववर्ती चण्ड व वररुचि जैसे प्राकृत वैयाकरणो ने भी उपस्थित किये है, किन्तु अपभ्र श का व्याकरण तो हेमचन्द्र की अपूर्व देन है। उसमे भी जो उदाहरण पूरे व अधूरे पद्यो के रूप मे प्रस्तुत किये गये है, उनसे तो अपभ्र श साहित्य की प्राचीन समृद्धि के सम्बन्ध में विद्वानो की आँखें खुल गयी और वे उन पद्यो के स्तोत्र की खोज मे लग गये।

सिद्ध हेम शब्दानुशासन मे प्रारम्भिक ७ अध्यायो मे ३५६६ सूत्र हैं, ८ वें अध्याय मे १११९ सूत्र हैं। इस प्रकार सस्कृत प्राकृत और अपभ्र श भाषाओं के इस महान् व्याकरण को करीब ४ हजार सूत्रो मे पूरा करके भी कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र शान्त नही रहे। उन्होंने १८००० श्लोक प्रमाण उसकी बृहद्वृत्ति भी लिखी। इस बृहद्वृत्ति पर भाष्य'कतिचिद् दुर्गपदव्या व्याख्या लिखी गयी। इस भाष्य की हस्त लिखित प्रति बर्लिन मे है (बयेवर पृ० २३७)। लघ्वी वृत्ति का प्रमाण ६००० श्लोक हैं। इस वृत्ति का नाम 'प्रकाशिका' भी है। (पिटरसन का प्रथम प्रतिवेदन पृ० ७०–७१) ८०,००० श्लोको का एक बृहन्न्यास नाम का विवरण भी उन्होंने लिखा। यह कृति अब अनुपलब्ध है। उन्होंने अपनी वृत्ति मे गणपाठ, धातुपाठ,उणादि और लिङ्गानुशासन प्रकरण भी जोडे। इन वृत्तियो मे अनेक प्राचीन वैयाकरणो के नाम लेकर उनके मतो का विवेचन भी किया है। उदाहरणो म भी बहुत कुछ मौलिकता पायी जाती

है। विधि–विधानों में कर्ता ने इसमें अपने काल तक के भाषा-भाषा विकास का समावेश करने का प्रयत्न किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है।

शब्दानुशासन मे निम्नांकित प्राचीन आचार्यों का उल्लेख मिलता है — १. आपिशलि, २. यास्क, ३ शाकटायन, ४. गार्ग्य, ५ वेदमित्र, ६ शाकल्य ७. इन्द्र, ८ चन्द्र, ९ मेघ भट्टारक, १०. पतन्जलि, ११. वार्तिककार, १२ पाणिनी, १३. देवनन्दी, १४ जयादित्य, १५. वामन, १६. विश्रान्तविद्याधरकार, १७ विश्रान्तन्यासकार, १८. जैन शाकटायन, १९. दुर्गसिंह, २० श्रुतपाल २१. भर्तृहरि, २२ क्षीरस्वामी, २३ भोज, २४. नारायण कण्ठी, २५ सारमङ्ग्रहकार, २६ द्रमिल, २७ शिक्षाकार, २८. उत्पल, २९. उपाध्याय, ३०. क्षीरस्वामी, ३१. जयन्तीकार, ३२ न्यासकार तथा ३३. पारायणकार।

हेमचन्द्र का व्याकरण-क्रम प्राचीन शब्दानुशासनों के सदृश नहीं है। इसकी रचना कातन्त्र के समान प्रकरणानुसारी है। इसमे यथाक्रम सज्ञा, स्वर-सधि, व्यन्जन-सधि, नाम, कारक, षत्व, णत्व, स्त्रीप्रत्यय समास आख्यात, कृदन्त और तद्धित प्रकरण हैं। सस्कृत भाषा के शब्दानुशासन को ४ भागो मे विभक्त किया जा सकता है–(१) चतुष्कवृत्ति (२) आख्यात वृत्ति (३) कृदवृति और (४) तद्धितवृत्ति।

चतुष्कवृत्ति मे सन्धि, शब्दरूप, कारक एव समास चारो का अनुशासन आरम्भ से लेकर तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद तक वर्णित है। आख्यात वृत्ति मे धातुरूपो और प्रक्रियाओं का अनुशासन तृतीय अध्याय के तृतीय पाद से चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद पर्यन्त और कृद्वृत्ति में कृत् प्रत्यय सम्बन्धी अनुशासन पञ्चम् अध्याय मे निरूपित है। तद्धित वृत्ति मे तद्धित प्रत्यय, समासान्त प्रत्यय, एवम् न्याय सूत्रो का कथन छठे और सातवें दोनो अध्यायो मे वर्णित है। साहित्य और व्यवहार की भाषा मे प्रयुक्त सभी प्रकार के शब्दो का अनुशासन इस व्याकरण मे ग्रथित है। वास्तविकता यह है कि शब्दानुशासक हेमचन्द्राचार्य का व्यक्तित्व अद्भुत है। इन्होने धातु और प्रातिपदिक, प्रकृति और प्रत्यय समास और वाक्य, कृत् और तद्धित, अव्यय और उपसर्ग प्रभृति का निरूपण, विवेचन एवम् विश्लेषण किया है।

प्रथम अध्याय के प्रथम पाद मे 'अर्हम्, १।१।१ यह मगल सूत्र कहने के उपरान्त 'सिद्धि स्याद्वादात् १।१।२ महत्वपूर्ण सूत्र बतलाकर समस्त शब्दों की सिद्धि, निष्पत्ति और ज्ञप्ति अनेकान्त वाद द्वारा स्वीकार की है। तत्पश्चात्

'लोकात्' १।१।३, सूत्र कहकर 'शास्त्र मे अनिर्दिष्ट संज्ञा लोकाचार से जाननी चाहिये, कहकर व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। द्वितीय पाद मे संज्ञा प्रकरण के अनन्तर लाघवानुसार वर्ण कार्यों का विवेचन किया है। १।२।३ सूत्र द्वारा ऋ, लृ को भी स्वर माना गया है। इसमे इनकी सरलता एक बड़ी उपलब्धि है। तृतीय पाद मे व्यञ्जन सन्धि का निरूपण किया गया है। वे विसर्ग सन्धि का अन्तर्भाव व्यञ्जन सन्धि मे ही करते हैं। 'अतोऽति रो रु' १।३।२० तथा 'घोषवति' १।३।२१ सूत्रों से स्पष्ट है कि इन्होंने विसर्ग को व्यञ्जन के अन्तर्गत ही माना है। इस पाद मे 'शिटयाद्यस्य द्वितीयो वा' १।३।५९ द्वारा क्षीरम्क्षीरम् तथा अफसरा (अप्सरा) जैसे शब्दो की सिद्धि प्रदर्शित की है। हिन्दी का खीर शब्द हेमचन्द्र के क्षीरम् के बहुत निकट है। सम्भवत उनके समय इस शब्द का प्रयोग होने लगा था। उन्होंने विसर्ग को प्रधान न मानकर 'र्' को ही प्रधान माना है, तथा स् और र् इन दोनो व्यञ्जनो के द्वारा विसर्ग का निर्वाह किया है। यह युक्ति सगत और वैज्ञानिक है। साथ ही विस्तार को सक्षिप्त करने की प्रक्रिया मे नई दिशा की और सङ्केत है। चतुर्थ पाद मे स्याद्यन्त प्रकरण आरम्भ होता है एक शब्द के सभी विभक्तियो के समस्त रूपो की पूर्णतया सिद्धि न बतलाकर सामान्य विशेष भाव से सूत्रों का निबन्धन किया गया है चतुर्थपाद मे शब्द रूपो की विवेचना की गयी है।

द्वितीय अध्याय में प्रथम पाद का आरम्भ स्त्रीलिङ्ग से होता है। इस पाद में व्यञ्जनान्त शब्दो का अनुशासन लिखा गया है। और इसमें सहायक तद्धित, कृदन्त और तिङन्त के कुछ सूत्र भी आ गये हैं। द्वितीय पाद में कारक प्रकरण है। कारक की परिभाषा देकर पाणिनि के समान हेमचन्द्र ने कारक का अधिकार नहीं माना है। पाणिनि की दृष्टि से बहुवत् भाव कारकीय नहीं है पर हेमचन्द्र ने कारकीय मानकर अपनी वैज्ञानिकता का परिचय दिया है। तृतीय पाद में लत्व, षत्व, णत्व विधि का प्रतिपादन किया गया है। पश्चात् समास, कृदन्त तद्धित, तिङन्त, उपसर्ग, अव्यय आदि के सयोग और भिन्न स्थितियो में णत्व भाव दिखाया गया है। चतुर्थपाद में स्त्री प्रत्यय प्रकरण है। सभी स्त्री प्रत्ययो का अनुशासन किया गया है।

तृतीय अध्याय के प्रथम पाद का वर्ण्य-विषय समास है। द्वितीय पाद में समास की परिशिष्ट चर्चा है। समास होने के बाद तथा समास निमित्तक अनिवार्य कार्य होने के पश्चात् सामासिक प्रयोगो में कुछ विशेष कार्य होते हैं यथा-सम् सुब्लुक, ह्रस्व प्रभृति नियमो का इस प्रकरण में समावेश किया गया है।

तृतीय पाद क्रिया प्रकरण से सम्बन्ध रखता है। हेमचन्द्र का यह क्रिया-प्रकरण पाणिनि की शैली पर नहीं लिखा गया, अपितु कलाप या कातन्त्र की शैली पर निर्मित है। कातन्त्र के समान हेमचन्द्र ने भी क्रिया की १० अवस्थाएं स्वीकार की हैं। पाणिनि के लेट् लकार को उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया है। चतुर्थ पाद में प्रत्यय विशिष्ट धातुओं का विवरण है।

चतुर्थ अध्याय प्रथम पाद का आरम्भ 'द्वित्व' विषय को लेकर होता है। आगे चलकर यह प्रकरण द्वित्व सामान्य में परिवर्तित हो जाता है। इस पाद के अन्तिम सूत्रों में कृत् प्रत्ययों का विधान है। द्वितीय पाद इसी से सम्बद्ध है। सभी प्रकार के विकारों और उन विकारों से समुत्पन्न सभी प्रकार की शब्द की स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय पाद में गुण और वृद्धि का नियमन किया गया है। चतुर्थ पाद में धातुओं का आदेश-विधान है। आख्यात सम्बन्धी समस्त नियम और उपनियमों का प्रतिपादन इस पाद में आया है। कुछ स्वरात्मक तथा व्यञ्जनात्मक आगमों की चर्चा है।

पञ्चम् अध्याय के प्रथम पाद में कृदन्त प्रत्ययों का वर्णन है। पाणिनि ने 'क्त' तथा 'क्तवतु' प्रत्यय को 'निष्ठा' नाम देकर विधान किया है। हेमचन्द्र ने 'निष्ठा' संज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं समझी और उन्होंने 'क्तक्तवतु' ५।१।१७४ 'भूतार्थादात् धातोरेतौ स्याताम्' लिखकर सीधे ही इन प्रत्ययों का अनुशासन लिख दिया है। द्वितीय पाद भूतार्थ परिचायक है। विशेषत 'भूत' परोक्ष अवस्था के लिए आया है। तृतीय पाद में भविष्यन्ती अर्थ में प्रत्ययों के सङ्ग्रह की चेष्टा की गई है। चतुर्थ पाद में वर्तमान के अर्थ में प्रत्ययों के सङ्ग्रह की चेष्टा की गयी है, कालों के प्रयोग का अनुशासन किया गया है।

षष्ठ अध्याय के प्रथम पाद में तद्धित प्रत्ययों का वर्णन है। इस पाद के अधिकांश सूत्र पाणिनि से भाव या शब्द अथवा दोनों में पर्याप्त साम्य रखते हैं। उदाहरणार्थ हेमचन्द्र का "गर्गादिर्यञ् ६।१।४२ पाणिनीय सूत्र" गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५ से साम्य रखता है। द्वितीय पाद म रक्त समूह एव अवयव विकार आदि अर्थ मे तद्धित प्रत्ययों का विधान किया गया है। जैसे "चक्षुषे-इद चाक्षुष रूपम्", "*अश्वाय अय आश्वारथ*" इत्यादि। तृतीय पाद में अप-त्यादि अर्थों से भिन्न प्राग् जातीय अर्थ में वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं। यह अनु-शासन अन्य व्याकरणों के समान ही है। हेमचन्द्र की शैली अनुशासन के क्षेत्र में अन्य वैयाकरणों की अपेक्षा भिन्न है। उन्होंने एक अर्थ में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों के विधायक सूत्रों को एक साथ रखने का प्रयास किया है। इसके विप-

रीत पाणिनि ने एक प्रत्यय विधायक सूत्रों को एक साथ रखने की चेष्टा की है। हेमचन्द्र की अर्थानुसार प्रत्यय विधायक सूत्र शैली है। चतुर्थ पाद तद्धित का ही शेष है।

सप्तम् अध्याय के प्रथम पाद का आरम्भ 'य' प्रत्यय से हुआ है। पूर्वोक्त अर्थों के अतिरिक्त जो अर्थ शेष रह गये हैं, उन अर्थों मे सामान्यतया 'य' प्रत्यय का विधान किया गया है। हेमचन्द्र की यह प्रत्यय-प्रक्रिया पाणिनि की अपेक्षा सरल है। पाणिनि ने कुछ शब्दो के आगे ठक्, ठञ आदि प्रत्यय किये है, तथा ठ को इक् करने के लिए 'ठस्येक' ७।३।५० सूत्र लिखा है, किन्तु हेमचन्द्र ने सीधे ही इक् कर दिया है। उनकी यह प्रक्रिया लाघव शब्दानुशासन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। द्वितीय पाद का मुख्य वर्ण्य विषय सज्ञा विशेषण बनाना है। इस पाद मे जहाँ सूत्रो से काम नही चला है, वहाँ वृत्ति के आदेशो से काम लिया है। उदाहरणार्थ वाचाल या वाग्मी बनाने के लिए पाणिनि ने व्यर्थ अधिक बोलने वाले के लिए 'वाचाल' शब्द बनाया है। हेमचन्द्र ने वाच आलाटौ' ७।२।२४, की वृत्ति मे 'क्षेपेगम्ये' अर्थात् अलप्रत्यय निन्दा अर्थ मे होता है। तृतीय पाद मे प्रधानत. समासान्त तद्धित प्रत्ययो का सङ्ग्रह है। चतुर्थ पाद मे मुख्य रूप से तद्धित प्रत्ययो के आ जाने के बाद स्वर मे जो विकृति होती है उसीका निर्देश किया गया है। द्वित्व तद्धित मे प्लुत का सन्निवेश हेमचन्द्र की मौलिकता प्रगट करता है, जिसका पाणिनीय शास्त्र मे बिलकुल अभाव है। ऐसा मालूम होता है कि हेमचन्द्र के समय मे इस प्रकार के प्लुतों का प्रयोग बढ़ गया था। जिनका सङ्ग्रथन करके हेमचन्द्र को अपनी भाषा-शास्त्रीय प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिला।

सिद्ध हेम शब्दानुशासन के ८ वें अध्याय मे प्राकृत भाषा का अनुशासन लिखा गया है। आचार्य हेम का प्राकृत व्याकरण समस्त उपलब्ध प्राकृत व्याकरणो मे सबसे अधिक पूर्ण और व्यवस्थित है। इसके ४ पाद हैं। प्रथम पाद मे २७१ सूत्र हैं, इनमे सन्धि, व्यञ्जनान्त, शब्द, अनुस्वार, लिङ्ग, विसर्ग, स्वरव्यत्यय और व्यञ्जनव्यत्यय का विवेचन किया गया है। द्वितीय पाद के २१८ सूत्रो मे सयुक्त व्यञ्जनो के परिवर्तन, समीकरण, स्वर-भक्ति, वर्ण-वैपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात, और अव्ययों का निरूपण है। तृतीय पाद मे १८२ सूत्र हैं जिनमे कारक, विभक्तियों तथा क्रिया-रचना सम्बन्धी नियमो का विवरण दिया गया है। चौथे पाद मे ४४८ सूत्र हैं। चतुर्थ पाद के ३२८ सूत्र तक आर्ष (महाराष्ट्री प्राकृत) शौरसेनी, मागधी, पैशाची और चूलिका पैशाची की विशेषताओं को

चर्चा है। सूत्र ३२९ से ४४८ सूत्र तक अपभ्रंश भाषा की विशेषताओ का उल्लेख किया गया है। अन्तिम दो सूत्रो मे यह भी बतलाया गया है कि प्राकृत मे उक्त लक्षणो का व्यत्यय भी पाया जाता है तथा जो बात वहाँ नही बतलाई गयी है, उसे सस्कृतवत् सिद्ध समझना चाहिये। सूत्रो के अतिरिक्त वृत्ति भी स्वय हेम ने लिखी है। इस वृत्ति मे सूत्रगत लक्षणो को बडी विशदता से उदाहरण देकर समझाया गया है। आदि के प्रास्ताविक सूत्र "अथ प्राकृतम्" की वृत्ति विशेष महत्वपूर्ण है। इसमे ग्रन्थकार ने प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति यह दी है कि प्रकृति सस्कृत है और उससे उत्पन्न व आगत प्राकृत, अत. आचार्य हेम ने प्राकृत शब्दो का अनुशासन सस्कृत शब्दो के रूपो को आदर्श मानकर किया है। हेम के मत से प्राकृत शब्द तीन प्रकार के हैं- तत्सम्, तदभव, और देशी तत्सम और शब्दो को छोडकर शेष तद्भव शब्दो का अनुशासन इस व्याकरण द्वारा किया गया है।

आचार्य हेम ने आर्षम् ८।१।३ सूत्र मे आर्ष प्राकृत का नामोल्लेख किया है, और बतलाया है "आर्ष प्राकृत बहुल भवति, तदपि यथास्थान-दर्शयिष्याम। आर्ष,हि सर्वे,विधयो विकल्पयन्ते" अर्थात् अधिक प्राचीन प्राकृत आर्ष आगमिक प्राकृत है। इसमे प्राकृत के नियम विकल्प से प्रवृत होते है।

हेम का प्राकृत व्याकरण रचना-शैली और विषयानुक्रम के लिए प्राकृत-लक्षण' और 'प्राकृत प्रकाश' का आभारी है। पर हेम ने विषय-विस्तार मे बडी पटुता दिखलायी है। अनक नये नियमो का भी निरूपण किया है। ग्रन्थन शैली भी हेम की चण्ड और वररुचि की अपेक्षा परिष्कृत है। तथापि 'हेम' व्याकरण मे प्राय सभी प्रक्रियाएँ अधिक विस्तार से बतलायी गयी हैं, और उनमे कई विधियो का समावेश किया गया है जो स्वाभाविक है। क्योंकि हेमचन्द्र के सम्मुख वररुचि की अपेक्षा लगभग पाँच-छ शतियो का भाषात्मक विकास और साहित्य उपस्थित था, जिसका उन्होंने पूरा उपयोग किया है। चूलिका पैशाची और अपभ्रंश का उल्लेख वररुचि मे नही किया। चूलिका और अपभ्रंश का अनुशासन हेम का अपना है। अपभ्रंश भाषा का नियमन ११९ सूत्रो मे स्वतन्त्र रूप से किया है। उदाहरणो मे अपभ्रंश के पूरे के पूरे दोहे उद्धृत कर नष्ट होते हुए विशाल साहित्य का उन्होंने सरक्षण किया है। इसमे सन्देह नही कि आचार्य हेम के समय मे प्राकृत भाषा का बहुत अधिक विकास हो गया था और उसका विशाल साहित्य विद्यमान था। अत उन्होंने व्याकरण की प्राचीन परम्परा को अपनाकर भी अनेक नये अनुशासन उपस्थित किये हैं।

अत इस बारे मे दो मत होने का प्रश्न ही नही उठता कि हेमचन्द्र ने

अपभ्रंश का व्याकरण लिखकर बहुत बड़ा ऐतिहासिक काम किया। आधुनिक युग मे अपभ्रंश की जो खोज-खबर हो सकी उसका भी श्रेय इस ही है। संक्षिप्त होते हुए भी व्याकरण के सभी अङ्गो का समावेश उसमें है। सर्वप्रथम स्वर-व्यञ्जनो का विचार है फिर विभक्तियो और नियापदो का। उसके अनन्तर धात्वादेश, अव्यय, क्रिया, विशेषण, स्वार्थिक प्रत्यय, भाववाचक सज्ञा, क्रियार्थक क्रिया, पूर्वकालिक क्रिया और लिङ्गानुशासन पर विचार किया गया है। जो बाते अपभ्रंश व्याकरण में छूट गयी हो वे प्राकृत से समझ लेनी चाहिये, और जो प्राकृत मे न हो, वे संस्कृत से। हेमचन्द्र के समय अपभ्रंश रूढ हो चुकी थी।

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण मे योगीन्द्र कृत 'परमात्म प्रकाश' के कुछ दोहे पाये जाते हैं। वैसे ही रामसिंह मुनिकृत 'पाहुड दोहा' के ४।५ दोहे अत्यल्प परिवर्तन के साथ हेम के प्राकृत व्याकरण मे पाये जाते हैं[1]। आचार्य हेमचन्द्र की अपने प्राकृत व्याकरण पर भी प्रकाशिका नाम की स्वोपज्ञ वृत्ति है। इस पर और भी टीकाएँ है। उदय सौभाग्य गणी ने हेमचन्द्रीय वृत्ति पर हेम 'प्राकृत वृत्ति ढुढिका' नाम की टीका लिखी है। नरचन्द्र सूरि ने भी हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण की टीका बनायी है। 'कश्चित्', 'केचित्,' 'अन्ये', आदि शब्दो के प्रयोग से मालूम होता है कि हेमचन्द्र ने अपने से पहले के व्याकरणकारो से भी सामग्री ली है। यहाँ मागधी का विवेचन करते हुए प्रसङगवश एक नियम अर्ध-मागधी के लिए भी दे दिया है। इसके अनुसार अर्ध मागधी म पुल्लिग कर्त्ता के एक वचन मे 'अ' के स्थान मे 'ए' कार हो जाता है। इसमे अपभ्रंश का विस्तृत विवेचन है। अपभ्रंश के अनेक अज्ञात ग्रन्थो से शृगार, नीति, और वैराग्य सम्बन्धी सरस दोहे उद्धृत किये गये हैं।

२ धातुपाठ — आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के सम्बद्ध सभी अङ्गो (खिला) का विवेचन किया है। उसके अन्तर्गत धातुपाठ, गणपाठ, उणादि, पाठ का प्रवचन भी सम्मिलित है। उन्होने अपने धातुपाठ पर हेम धातु पारायण अथवा स्वोपज्ञ धातु विवरण नामक स्वतन्त्र रूप से स्वोपज्ञ ग्रन्थ लिख कर विस्तृत व्याख्या की है। इसके सिवाय गुणरत्न सूरि (स० १४६६) विनय-विजयगणी ने हेमधातु पाठ पर व्याख्याएँ लिखी हैं। हेमचन्द्र ने अपनी वृत्ति म धातु-प्रकृति को दो प्रकार की माना है—शुद्धा और प्रत्ययान्ता। उन्होने प्रत्येक धातु के साथ अनुबन्ध की भी चर्चा की है। अनिट् धातुओ मे अनुस्वार को अनुबन्ध माना है। उन्होंने पाणिनि के धातु अनुबन्धो मे पर्याप्त उलट-फेर किया

[1]— भारतीय संस्कृति म जैन धर्म का योगदान—डा० हीरालाल जैन पृष्ठ ११८

है। हैम धातुपाठ मे कुल १९८० धातुएँ उपलब्ध है। उनके कुछ धातुओ के अर्थ बहुत ही सुन्दर है। इन अर्थो से भाषा सम्बन्धी अनेक प्रवृत्तियाँ ज्ञात होती हैं। उदाहरणार्थ डुवपी–बीज सन्तान अर्थ मे, फक्क–निगीर्ण अर्थ मे। अत: आचार्य हेमचन्द्र का धातुपाठ ज्ञानवर्धक होने के साथ मनोरजक भी है।

३. गणपाठ– विजयनीतिसूरि ने 'सिद्ध हेमबृहत् प्रक्रिया' मे हेमचन्द्र के सभी गणपाठ दिये है। हेमचन्द्राचार्य ने गणनिर्देश मे प्राय. शाकटायन का अनुसरण किया है। फिर भी कतिपय स्थानो मे स्वोपज्ञ अश भी हैं। कतिपय नये गणो का निर्धारण भी किया है। उदाहरणार्थ पाणिनि के 'साय चिर' ४।३।२३ के लिए 'सायाल्हादि' ३।१।५३ गण की कल्पना की। कही नाम परिवर्तन पाया जाता है। उदाहरणार्थ –पाणिनि,–चतुर्थी तदर्थार्थ २ | १ | ३६,
पाल्यकीर्ति अर्थादि " २ | १ | ३९,
हेमचन्द्र हितादि ,, ३ । १ । ७१,

गणपाठ के तत्तत् गणो मे पूर्वाचार्य स्वीकृत प्राय. सभी पाठान्तरो का हेमचन्द्र ने अपने गणपाठ में सङ्ग्रह कर दिया है। प्रायः सभी ग्रन्थो मे उनकी यह सङग्रहात्मक प्रवृत्ति देखी जाती है। गण पाठ पर कोई स्वतन्त्र व्याख्या उपलब्ध नही होती है। तथापि कतिपय गणो के शब्दो की व्याख्या उनके बृहन्न्यास मे उपलब्ध होती है।

४. उणादिपाठ– आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण से सम्बद्ध 'उणादि' पाठ का प्रवचन किया है तथा उस पर स्वय विवृति भी लिखी है। यह उणादि पाठ सबसे अधिक विस्तृत है। इसमे १००६ सूत्र हैं, व्याख्या भी पर्याप्त विस्तृत है, इसमें २८,००० श्लोक हैं। 'हैमोणादि' वृत्ति हेमचन्द्र की बृहद्वृत्ति का सक्षेप रूप है। एक अवचूरी टीका भी विक्रम विजय मुनि ने सम्पादित की है। हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ उणादि वृत्ति मे दशपादी के अनेक पाठो का नाम-निर्देश के बिना उल्लेख किया है। इस प्रकार उन्होंने उणादि प्रत्ययो का अनुशासन किया है। उणादि द्वारा निष्पन्न कितने ही ऐसे शब्द हैं जिनसे हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषा की अनेक प्रवृत्तियोपर प्रकाश पड़ता है। जैसे बर्कर–बाकर–बकड, गर्गरी–गागर, द्रवरो–गुण– डोरा इत्यादि।

५. लिङ्गानुशासन– हेमचन्द्र का लिङगानुशासन सभी लिङगानुशासनो की अपेक्षा विस्तृत है। इसमे विविध छन्दोयुक्त १३८ श्लोक हैं। उन्होने एक बृहत् स्वोपज्ञ विवरण भी लिखा है, जिसमे ३६८४ श्लोक हैं। इसके सिवाय कनकप्रभ (वि० १३ वीं शती), जयानन्दसूरि, केसरविजय, वल्लभगणी (१६६१)

ने भी हेमलिङ्गानुशासन पर वृत्ति लिखी है। श्लोक विवरण निम्न अनुसार है। पुल्लिगाधिकार १-१७, स्त्री-लिङ्गाधिकार १८-५०, नपुसक लिङ्गाधिकार ५१-७४ पुस्त्री लिङ्गा ७५-८६, पु नपुसकलिङ्गा ८७-१२२ स्त्री नपुसक लिङ्गा १२३-१२७ स्वत स्त्री लिङ्गाधिकार १२८-१३३ और उपसहार १३४-१३८।

इस प्रकार सस्कृत भाषा का पञ्चाङ्ग परिपूर्ण अनुशासन करने के लिए हेमचन्द्र ने 'हैमालिङ्गानुशनम्' लिखा है। उनका यह लिङ्गानुशासन अपने ढङ्ग का निराला है। लिङ्गानुशासन के अभाव मे उनका शब्दानुशासन अधूरा ही रह जाता है। अत सामान्य-विशेष लक्षणो द्वारा लिङ्ग का अनुशासन उन्होने किया है। उनके इस लिङ्गानुशासन मे जितने अधिक शब्दो का सङ्ग्रह है उतने अधिक शब्द किसी भी लिङ्गानुशासन मे नही आये है।

आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व पाणिनि का लिङ्गानुशासन, अमरकवि का अमरकोषान्तर्गत लिङ्गानुशासन तथा अनुभूति-स्वरूपाचार्य का लिङ्गानुशासन उपलब्ध है। हेमचन्द्र ने अपना लिङ्गानुशासन अमरकोष की शैली के आधार पर लिखा है। पद्य-बद्धता के साथ इसमे स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग और नपुसकलिङ्ग इन तीनो लिङ्गो मे शब्दो का वर्गीकरण भी बहुत अशो मे अमरकवि के ढङ्ग का है। इतना होने पर भी हेमलिङ्गानुशासन की अपनी विशेषताएँ हैं—

(१) हेमचन्द्र ने अपने लिङ्गानुशासन मे विशाल शब्द-राशि का सङ्ग्रह किया है। इन शब्दो के सार्थ सङ्कलन से एक बृहद शब्द कोश तैयार किया जा सकता है। उन्होने रुचिर, ललित, कोमल शब्दो के साथ कटु, कठोर शब्दो का भी सङ्कलन कर लिङ्गज्ञान को सहज, सुलभ, बोध-गम्य बनाने का अद्वितीय प्रयास किया है।

(२) शब्दो का सङ्ग्रह विभिन्न साम्यो के आधार पर किया गया है। (अ) शब्द-साम्य के आधार पर, (आ) अर्थ-साम्य के आधार पर (इ) विषय के आधार पर (ई) अन्त्य अकारादि वर्णों के क्रम पर (उ) सामान्यतया प्रत्ययो के आधार पर और (ऊ) वस्तु विशेष की समता के आधार पर।

(३) विशेषण के विभिन्न लिङ्गो की भी चर्चा की गया है। एक शेष द्वारा शब्दो के लिङ्गनिर्णय की चर्चा की है। इसमे हेमचन्द्र की नितान्त मौलिकता है।

(४) विभिन्नार्थक शब्दो का प्रयोग एक साथ अनुप्रास लाने तथा लालित्य उत्पन्न करने के लिए किया है।

पाणिनि की अपेक्षा हैमालिङ्गानुशासन मे शैली-गत भिन्नता के अतिरिक्त और भी कई नवीनताएँ विद्यमान हैं। पाणिनीय लिङ्गानुशासन को समूचा

ही प्रत्ययो के आधार पर सङ्कलित है पर हेमचन्द्र ने कुछ ही शब्दो का चयन प्रत्ययों के आधार पर किया है। पाणिनि ने प्रत्ययों की चर्चा कर प्राय तद्धितान्त शब्दो और कृदन्तान्त का ही सङ्कलन किया है और यह सङ्कलन हेमचन्द्र की अपेक्षा बहुत छोटा है। हेमचन्द्र ने नादानुकरण का आधार लेकर शब्द के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग को पहचानने की चेष्टा की है। उनका तीनों लिङ्गों मे शब्दो का पूर्वोक्त दिशा-क्रम से निर्देश करना उनके सफल वैयाकरण होने का प्रमाण है। अतएव वैयाकरण हेमचन्द्र का महत्व शब्दानुशासन के लिए जितना है, उससे कही अधिक लिङ्गानुशासन के लिए है। लिङ्गानुशासन मे अधिकृत शब्दो का विवेचन, उनकी विशिष्टता, क्रम-बद्धता आदि का सूचक है। हेमचन्द्र का शब्द सङ्कलन वैज्ञानिक है, उदाहरणार्थ —

ध्रुवका क्षिपका कनीनिका शम्बूका शिविका गवेधुका।
कणिका केका विपादिका, मक्षिका, यूका मक्षिकाष्टका॥
वृश्चिका, कूचिका, टीका, काशिका केणिकोर्मिका।
जलौका प्राविका घूका कालिका दीर्घिकोष्ट्रिका॥

इसमे एक साम्य अन्तिम स्वरो मे भी मिलता है। उपर्युक्त सभी शब्दो मे भी अन्तिम 'आ' वर्ण का साम्य विद्यमान है। हेमचन्द्र ने तीसरे प्रकार का शब्द-सङ्ग्रह शब्द-साम्य के आधार पर किया है। शब्द-साम्य का यह आधार केवल अन्तिम शब्दो मे ही नही मिलता, अपितु कही-कही तो नादानुकरण भी मिलता है। उदाहरणार्थ—

गुन्द्रा मुद्रा क्षुद्रा भद्रा भस्त्रा छत्रा यात्रा मात्रा
दंष्ट्रा केला वेला मेला गोला शाला माला ॥२१॥
मेखला सिध्मला लीला रसाला सुवेला बला।
कुद्दाला शकुला हेला शिला सुवर्चला कला ॥२२॥ (स्त्रीलिङ्ग प्रकरण)

अत हेमचन्द्र ने शब्द सङ्कलन का एक प्रमुख क्रम शब्द-साम्य माना है। फिर भी अर्थ साम्य के आधार पर भी हेमचन्द्र ने शब्दो का सङ्ग्रह किया है। अङ्ग-वाचक, पशु-पक्षी-वाचक, दास-वाचक, दल-वाचक, वृक्ष-वाचक, पल्लव, पुष्प, शाखा-वाचक तथा वस्तु-वाचक शब्दो का अर्थानुसारी सङ्कलन किया गया है। उदा०

हस्तस्तनौष्ठ नखदन्तकपोल गुल्फ केशान्घुगुच्छ दिवसर्तुपतद् ग्रहणाम्
निर्यासनाकर सकण्ठ कुठार कोष्ठ हैमारि वर्ष विषवोलस्था शनीनाम्
॥पुल्लिङ्ग॥

इसमे अङ्गवाची शब्दो का सङ्कलन किया गया है। अन्तिम वर्ण-साम्य पर ही प्राय शब्दो का सङ्कलन होता है। इन शब्दो के क्रम मे लालित्य एव अनुप्रास का भी पूरा ध्यान रखा गया है। जैसे कर्पुर, नूपुर, कुटीर, विहार, वार इत्यादि। हेमचन्द्र ने इस लिङ्गानुशासन मे पुल्लिगी, स्त्रीलिङ्गी, नपुसकलिङ्गी, पुस्त्रीलिङ्गी, पुनपुसकलिङ्गी, स्त्रीक्लीबलिङ्गी, स्वतः स्त्रीलिङ्गी और परलिङ्गी शब्दो का सङ्ग्रह किया है। पु स्त्रीलिङ्गी शब्दो के सङ्कलन में पुल्लिङ्गी शब्दो को बतलाकर उन्ही का स्त्रीलिङ्गी रूप ग्रहण करने का निर्देश किया गया है। हेमचन्द्र ने स्वत' स्त्रीलिङ्गी शब्दो का एक पृथक प्रकरण रखा है, यह प्रकरण नितान्त मौलिक है। नक्षत्र अर्थ मे अश्विनी, चित्रा आदि स्वतः स्त्रीलङ्ग है। हेमचन्द्र ने द्व द्व समास मे, अपत्यर्थ मे, स्वार्थ मे प्रकृत्यर्थ म परलिङ्ग का निर्देश किया है। इस तरह हेम लिङ्गानुशासन पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुसक लिङ्गवाची शब्दो की पूर्ण जानकारी कराने मे सक्षम है।

छन्दोऽनुशासन— छन्द-शास्त्र की परम्परा मे आचार्य हेमचन्द्र ने भी छन्दोऽनुशासन की रचना की। इसका उल्लेख 'छन्दचूडामणि' नाम से भी आता है। यह रचना ८ अध्यायो मे विभक्त है और उस पर स्वोपज्ञ टीका भी है। इस रचना मे हेमचन्द्र ने जैसा उन्होने अपने व्याकरणादि ग्रन्थो मे किया है, यथाशक्ति अपने समय तक आविष्कृत तथा पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित समस्त सस्कृत, प्राकृत, और अपभ्र श छन्दो का समावेश कर देने का प्रयत्न किया है, भले ही वे उनके समय म प्रयोग मे आते रहे हो या नही। भरत और पिङ्गल के साथ उन्होंने स्वयभू का भी आदर पूर्वक स्मरण किया है। माण्डव्य, भरत, कश्यप, सैतव, जयदेव आदि प्राचीन छन्द-शास्त्र प्रणेताओ के उल्लेख भी किये हैं। उन्होंने छन्दो के लक्षण तो सस्कृत मे लिखे हैं किन्तु उनके उदाहरण उनके प्रयोगानुसार सस्कृत, प्राकृत या अपभ्र श मे दिये है। उदाहरण उनके स्वनिर्मित है। कही से उद्धृत किये हुए नही। इसमे 'रसगङ्गाधर' के समान सब कुछ आचार्य हेमचन्द्र का अपना है। हेमचन्द्र ने अनेक ऐसे प्राकृत-छन्दो के नाम लक्षण और उदाहरण भी दिये हैं जो स्वयम्भू छन्दस् मे नही पाये जाते। स्वयम्भू ने जहाँ १ से २६ अक्षरो तक के वृत्तों के लगभग १०० भेद किये हैं, वहाँ हेमचन्द्र ने उनके २८६ भेद-प्रभेद बतलाये हैं। जिनमे 'दण्डक' सम्मिलित नही है। सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श के समस्त छन्दो के शास्त्रीय लक्षणो व उदाहरणों के लिए यह रचना एक महाकोश का कार्य करती है।

हेमचन्द्र ने अपने छन्दोऽनुशासन मे जयदेवकृत छन्दोवृत्ति का उल्लेख

किया है। हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन मे उल्लेख किया है कि जयदेव यतिवादी थे और इन्होंने छन्दनाम-नर्तक सर्वप्रथम दिया है। हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन में प्राप्त होने वाली कितनी ही कविताएं, कितने ही नये छन्द 'स्वयम्भू छन्द' मे प्रथमत देखने को मिलते है। हेमचन्द्र ने नागवर्मा (१० वी शती) द्वारा रचित छन्दोबुधि' (कानडी) मे वर्णित अङ्गरुचि इत्यादि नये छन्दो के नाम भी अपने छन्दोऽनुशासन मे दिये हैं। यद्यपि उन्होंने उनके नामका उल्लेख नहीं किया है

'छन्दोऽनुशासन की रचना निश्चित् रूप से 'काव्यानुशासन' के पश्चात् हुई, यह स्वय हेमचन्द्र के कथन से स्पष्ट होता है। छन्दोऽनुशासन मे कुल ७६३ सूत्र हैं जो ८ अध्यायो मे विभक्त है। विवरण निम्नानुसार है — प्रथम अध्याय–सूत्र १६, सज्ञाध्याय, द्वितीय अध्याय–सूत्र ४१५ समवृत्त व्यावर्णन, तृतीय अध्याय– सूत्र ७३, अर्धसमवृत्त, विपमवृत्त, मात्राछन्द, चतुर्थ अध्याय-सूत्र ९१–आर्या गलितक, खञ्जक, शीर्षक, पञ्चम अध्याय–सूत्र ४९–उत्साह छन्द तथा अन्य, षष्ठ अध्याय–सूत्र २९–षट्पदी, चतुष्पदी, सप्तम अध्याय–सूत्र ७३, द्विपदी तथा अष्टम् अध्याय-सूत्र १७–प्रस्तरादि व्यावर्णन।

'छन्दोऽनुशासन' से भारत के विभिन्न राज्यों मे प्रचलित छन्दो पर प्रकाश पड सकता है। इस ग्रन्थ मे प्रस्तुत उदाहरणो के अध्ययन से हेमचन्द्र का गीति-काव्य मे सिद्धहस्त होना भी मालूम पडता है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'छन्दोऽनुशासन' मे विरहाङ्क, स्वयभू, राजशेखर आदि के प्रति ऋणी हैं।

महाराष्ट्र के प्रख्यात कवि के० माधव ज्युलियन अथवा डा० पटवर्धन ने "छन्दो-रचना" नामक सशोधन प्रबन्ध मे पृष्ठ ५५५ पर हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन के विषय मे लिखा है कि "छन्दोऽनुशासन" नामक ग्रन्थ मे आचार्य हेमचन्द्र ने वृत्त-छन्दों का एक बडा सङ्ग्रह कर रखा है। इसमे आप सूत्र पद्धति का ही अवलम्ब करते हैं। उदाहरणार्थ "मत्नायि कुसुमितलता वेल्लिता: इचै " य गण लगातार तीन बार आता है, इसलिये यकार तीसरे स्वर से युक्त है, च से इ पञ्चमाक्षर तथा च यह षष्ठाक्षर है। अत "इचै" सूत्र से इस वृत्त की पहली यति ५ अक्षरो पर तथा दूसरी यति (विराम) ६ अक्षरो पर ऐसे दो विभाग होते हैं, यह तात्पर्य निकलता है। सूत्र-पद्धति की यह विशेषता, तथा वृत्त-जाति सङ्ग्रह की विशालता–इन दो बातो के अतिरिक्त 'छन्दोऽनुशासन' मे विशेष कुछ भी नही है। हेमचन्द्र साधारणत स्वरचित उदाहरण देते हैं। वे बडे सङ्ग्राहक हैं। छन्दो को यदि भिन्न नाम किसी ने दिये हैं तो वे सावधानी रखकर निर्देश करते हैं। क्वचित् प्रसङ्ग मे नाम देने वाले या नाम

भी बताते हैं। इस प्रकार उन्होंने भरत, जयदेव, स्वयम्भू, के नामों का उल्लेख किया है। दोहा जाति का लक्षण कहते समय हेमचन्द्र विरहाङ्क के समान अपना मत देते हैं।

श्री ए०बी० कीथ ने *'संस्कृत साहित्य के इतिहास'* में हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन के विषय में अपना मत प्रकट किया है कि 'अलङ्कार शास्त्र के प्राचीन सम्प्रदाय में यमकों पर विस्तार से विचार किया गया है और वे प्राकृत में बहुधा प्राप्त होते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत में प्राय प्रयुक्त होने वाले गलतिक छन्द के लिए पङ्क्तियों के अन्त में यमकों के प्रयोग को निर्धारित कर दिया है। उन्होंने अपने छन्दोऽनुशासन में इसका उल्लेख किया है और इसे अनुप्रास के रूप से यमक में भिन्न बतलाया है। उनके छन्दोऽनुशासन से प्राकृत छन्दों पर प्रकाश पड़ता है। हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के कुछ गीति पद्यों का उदाहरण दिया है। वे बहुत कुछ 'हाल' रचित पद्यों के समान ही है। एक युवती याचना करती है कि उसका प्रेमी उसके पास लौटा लाया जाय, अग्नि घर को चाहे भस्मसात करदे, पर मनुष्यों को अग्नि तो अवश्य ही चाहिये। एक अन्य स्त्री को प्रसन्नता है कि उसका पति वीरता-पूर्वक युद्ध भूमि में मारा गया, यदि वह अपमानित होकर लौटता तो पत्नी के लिए लज्जा की बात होती[1]। व्यास एवं अन्य महर्षियों के वचनों द्वारा माता का आदर करने के लिए बड़ी अच्छी तरह से उपदेश दिया गया है। नम्रतापूर्वक भक्ति के साथ माता के चरणों पर गिरने को वे गङ्गा के पवित्र जल में स्नान करने के तुल्य मानते हैं।

यद्यपि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से छन्दोऽनुशासन के रूप में आचार्य हेमचन्द्र की देन विशेष प्रतीत नहीं होती, फिर भी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा की दृष्टि से उनकी देन उल्लेखनीय है। संस्कृत-साहित्य की दृष्टि से भी आचार्य हेमचन्द्र एक बड़े संग्राहक कहे जा सकते हैं। श्री एच डी. वेलनकर द्वारा सम्पादित, भारतीय विद्या-भवन द्वारा प्रकाशित, 'छन्दोऽनुशासन' की भूमिका में मुनि जिनविजयजी ने वाङ्गमय 'छन्दोऽनुशासन' का उचित एवं सार्थक मूल्याङ्कन किया है। वे लिखते हैं, 'संस्कृत में आज तक जितने भी छन्दो रचना विषयक ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं उन सब में कलि-काल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र विरचित छन्दोऽनुशासन नामक ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा कथन करने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी। शब्दानुशासन, काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन, लिङ्गानुशासन—ये चार अनुशासन तथा दो द्वयाश्रय काव्य

---

[1] *'भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणी म्हारा कन्तु। लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा* घरु एन्तु' ॥

मिलाकर सम्पूर्ण लक्षणा एव साहित्य विद्या का क्षेत्र पूर्ण हो जाता है।

हेमचन्द्र के व्याकरण ग्रन्थो का महत्व– व्याकरण शास्त्र के इतिहास मे हेमचन्द्र के ग्रन्थो का स्थान अद्वितीय एव महत्वपूर्ण है। हेमचन्द्र का प्रभाव उत्तरकालीन जैन व्याकरणो पर विशेष पडा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे तो इस व्याकरण के पठन-पाठन की व्यवस्था भी रही है। उनके शब्दानुशासन पर अनेक टीका-टिप्पणी की गयी है। हेम व्याकरण के आधार पर भी अनेक ग्रन्थ रचे गये है। आज भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय के कई आचार्य हेम के आधार पर व्याकरण ग्रन्थ लिख रहे है। डा० वेलनकर ने अपने ग्रन्थ मे ८–१० व्याख्याकारो के नाम दिये है। यथा, १, लघुन्यास – रामचन्द्र गणी, २, न्यासोद्धार – तनकप्रभ, ३, हेमलघुवृत्ति– काकल कायस्थ, ४, हेमदुर्गपद प्रबोध– ज्ञानविमल शिष्य वल्लभ, ५, बृहद्वृत्ति अवचूरि – अभयचन्द्र, ६, लघुवृत्ति अवचूरि – धनचन्द्र, ७, लघुवृत्ति ढूंढिका– मुनि शेखरसूरि, ८, बृहद् वृत्तिदीपिका–विद्याधर। इनके अतिरिक्त सौभाग्यसागर उदयसौभाग्य, जयानन्द, पुण्यसुन्दर, गुणरत्न, जिनप्रभ, हेमहस अमरचन्द्र ने हेम व्याकरणो से सम्बद्ध ग्रन्थ लिखे हैं।

आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण उत्तर-कालीन समस्त व्याकरण ग्रन्थो मे मौलिक सिद्ध हुआ है। हेमचन्द्र के बाद पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन भी प्रक्रिया ग्रन्थो के आधार पर होने लगा 'औरअ तिशीघ्र सम्पूर्ण भारतवर्ष मे प्रसिद्ध हो गया। १६ वी शताब्दी के बाद अष्टाध्यायी क्रम से अध्ययन प्राय लुप्त हो गया। हेमचन्द्र के परवर्ती वैयाकरणो पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। हेमचन्द्र के परवर्ती वैयाकरणो मे सारस्वत व्याकरणकार बोपदेव आदि विशेष प्रसिद्ध है। प्रक्रिया ग्रन्थो मे भट्टो जी दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदी' इतनी प्रसिद्ध हुई कि समस्त भारतवर्ष मे 'सिद्धान्त-कौमुदी' के आधार पर ही व्याकरण का अध्ययन होने लगा।

व्याकरण-शास्त्र के इतिहास मे आचार्य हेमचन्द्र का नाम सुवर्णाक्षरो से लिखा जाता है, क्योकि वे सस्कृत शब्दानुशासन के अन्तिम रचयिता हैं। इनके साथ ही उत्तरभारत मे सस्कृत के उत्कृष्ट मौलिक ग्रन्थो का रचनाकाल समाप्त हो जाता है। राजनीतिक उथल-पुथल मे प्राचीन ग्रन्थो के रक्षार्थ उन पर टीका-टिप्पणी लिखने का क्रम बराबर प्रचलित रहा है। छोटे-छोटे व्याकरण भी रचे गये। अतएव सस्कृत व्याकरण ग्रन्थो मे हेमचन्द्र के व्याकरण ग्रन्थो का महत्व अन्यतम है –

(१) जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र मे भगवान पाणिनि ने अपनी पर-

म्परा का निर्माण किया, उसी प्रकार १२ वी शताब्दी मे सस्कृत के अन्तिम महावैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ने सस्कृत व्याकरण परम्परा मे हेम सम्प्रदाय बनाया। जिस प्रकार पाणिनि ने अन्तिम अध्याय मे वैदिक शब्दो का अनुशासन किया है, उसी प्रकार हेमचन्द्र ने अष्टम् अध्याय मे प्राकृत व्याकरण का निरूपण किया है जो अद्यावधि अपूर्व एव अद्वितीय है ।

(२) अपभ्र श का व्याकरण तो हेमचन्द्र की अपूर्व देन है । सस्कृत का 'क्षण' शब्द अर्थ-द्वयवाची है — समय तथा उत्सव । हेम ने उत्सव वाची क्षण म 'क्ष' के स्थान पर 'छ' का आदेश किया है तथा समयवाची मे 'ख' का आदेश किया है। उनका यह अनुशासन उन्हे सस्कृत और प्राकृत दोनो ही भाषाओ के वैयाकरणो में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है ।

(३) हेमचन्द्र ने उदाहरणा के लिए अपभ्र श के प्राचीन दोहो को रखा है। इससे प्राचीन साहित्य की प्रकृति और विशेषताओ का सहज मे पता लग जाता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न साहित्यिक, राजनीतिक और सास्कृतिक परिस्थितियो के कारण भाषा मे किस प्रकार परिवर्तन होते हैं।

(४) हेमचन्द्र ही सबसे पहले ऐसे वैयाकरण हैं, जिन्होंने अपभ्र श भाषा के सम्बन्ध मे इतना विस्तृत अनुशासन उपस्थित किया है । लक्ष्यो मे पूरे-पूरे दोहे दिये जाने से लुप्तप्राय महत्वपूर्ण साहित्य के उदाहरण सुरक्षित रह सके हैं। भाषा की समस्त नवीन प्रवृत्तियों का नियमन, प्ररूपण, और विवेचन इनके अपभ्र श व्याकरण मे विद्यमान है। हेमचन्द्र ने अपने समय मे विभिन्न प्रदेशो मे प्रचलित उपभाषा और विभाषाओ का सविधान भी उपस्थित किया है तथा अपभ्र श को अमर बना दिया है। अपभ्र श से ही हिन्दी के परसर्ग, धातुचिह्न, अव्यय, तद्धित, कृत् प्रत्ययो का निर्गमन हुआ है। उन्होंने अपने समय की प्रचलित भाषा का आधार मानकर अकार लोप का वैकल्पिक अनुशासन किया है। उदाहरणार्थ लपोऽव्ये ।१।४ से ज्ञात होता है कि हेम के समय मे रण्ण और अरण्ण ये दोनों प्रयोग होते थे। दधि यत्र भी साधु प्रयोग था। त्रैयम्बक की मूल प्रकृति त्रियम्बक है। कानीन की वास्तविक मूल प्रकृति कनीना है, कन्या नही ।

(५) देशज शब्दो का पूरी तरह सङ्कलन देशी नाममाला मे है ।

(६) आचार्य हेमचन्द्र की कृतियो मे शब्द विज्ञान, प्रकृति प्रत्यय-विज्ञान वाक्य-विज्ञान आदि सभी भाषा-वैज्ञानिक तत्व उपलब्ध हैं। इनके व्याकरण मे

अध्याय–४

अलङ्कार ग्रन्थ

हेमचन्द्र के अलङ्कार ग्रन्थ - 'काव्यानुशासन' का विवेचन

संस्कृत अलङ्कार ग्रन्थों की परम्परा मे आचार्य हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ की रचना की। काव्यानुशासन की प्रामाणिक आवृत्ति 'काव्यमाला सिरीज' मे प्रकाशित हुई है। महावीर जैन विद्यालय द्वारा भी सिरीज मे 'काव्यानुशासन' प्रकाशित किया गया है, जिसमे डा० रसिकलाल पारीख की प्रस्तावना एव आर० व्ही० आठवले की व्याख्या है।

'काव्यानुशासन' मे राजा कुमारपाल का कही भी उल्लेख नही है। अत यह निश्चित् है कि सिद्धराज जयसिंह के जीवनकाल म ही 'शब्दानुशासन' के पश्चात् 'काव्यानुशासन' की रचना हुई।

'काव्यानुशासन' के तीन प्रमुख भाग हैं–१ सूत्र (गद्य में), २, व्याख्या और ३, वृत्ति (सोदाहरण)। काव्यानुशासन मे कुल सूत्र २०८ हैं। इन्ही सूत्रो को 'काव्यानुशासन' कहा जाता है। सूत्रों की व्याख्या करने वाली व्याख्या अलङ्कारचूडामणि नाम प्रचलित है, और इस व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के लिए उदाहरणो के साथ विवेक नामक वृत्ति लिखी गयी। तीनों के कर्ता आचार्य हेमचन्द्र ही हैं। इस प्रकार सूत्र, अलङ्कारचूडामणि एव विवेकवृत्ति तीनों ही काव्यानुशासन के विचार क्षेत्र मे आते हैं। 'काव्यानुशासन' ८ अध्यायो मे विभाजित है। प्रथम अध्याय मे २५ सूत्र, द्वितीय अध्याय म ५६, तृतीय में १०,

चतुर्थ मे ६, पञ्चम् अध्याय मे ६, षष्ठ मे ३१, सप्तम् मे ५२, तथा अष्टम् अध्याय मे १३ सूत्र विद्यमान हैं। इन २०८ सूत्रो मे काव्यशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले सारे विषयो का प्रतिपादन बडे सुन्दर रूप मे किया गया है। ये सूत्र अलङ्कारचूडामणि मे विस्तारित किये गये है। विवेक मे और ज्यादा विस्तार किया गया है। अनुमान है कि अध्यायान्त मे अलङ्कारचूडामणि नाम का उल्लेख होने से टीका को यह नाम बाद मे दिया गया होगा।

अलङ्कारचूडामणि मे कुल ८०७ उदाहरण प्रस्तुत किये गये है तथा विवेक मे ८२५ उदाहरण प्रस्तुत हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण 'काव्यानुशासन' मे १६३२ उदाहरण प्रस्तुत किये गये है। 'अलङ्कारचूडामणि' एव 'विवेक' मे ५० कवियो के तथा ८१ ग्रन्थो के नामो का उल्लेख पाया जाता है। कही-कहीं ग्रन्थ-नाम तो है किन्तु उसके कर्ता के नाम का उल्लेख नही है। सस्कृत कवि एव काव्य-शास्त्र के इतिहास का अध्ययन करने मे यह जानकारी सहायक है।

प्रथम अध्याय — इस अध्याय मे काव्य की परिभाषा, काव्य के हेतु, काव्य-प्रयोजन, आदि पर समुचित प्रकाश डाला गया है। प्रतिभा के सहायक व्युत्पत्ति और अभ्यास, शब्द तथा अर्थ का रहस्य मुख्यार्थ, गौणार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यङ्ग्यार्थ की तात्विक विवेचना की गयी है। पहले सूत्र मे मङ्गल नमस्कार तदनन्तर दूसरे सूत्र मे ग्रन्थ का उद्देश्य बतलाया गया है। तीसरे सूत्र मे काव्य का प्रयोजन सक्षेप मे बतलाया है। 'काव्यमानन्दाय यशसेकान्तातुल्य तयोपदेशायच' अर्थात् हेमचन्द्र के अनुसार काव्य के तीन प्रयोजन होते है-आनन्द यश एव कान्तातुल्य उपदेश। चतुर्थ सूत्र मे काव्य के कारण बताते हैं 'प्रतिभास्य हेतु अलङ्कार चूडामणि मे प्रतिभा की — 'नवनवोल्लेखशालिनी प्रज्ञा' — सुन्दर परिभाषा दी है, अर्थात् नयी नयी कल्पना करने वाली प्रज्ञा ही काव्यनिर्मिति का प्रधान कारण है। पञ्चम् तथा षष्ठ सूत्र मे प्रतिभा की जैन परिभाषा दी है। सप्तम् सूत्र में अध्ययन एव अभ्यास से प्रतिभा को सफल करने के लिए कहा गया है। यथा 'व्युत्पत्त्यभ्यासाम्या सस्कार्या' अष्टम् सूत्र में अध्ययन के विषय सक्षेप में बताये हैं, जिनका विस्तार 'अलङ्कारचूडामणि' में तथा और अधिक विस्तार 'विवेक' में किया गया है। नवम् तथा दशम् सूत्र में अभ्यास के विषय में वर्णन है, जो 'अलङ्कारचूडामणि' में सक्षेप मे तथा 'विवेक' में पूर्णरूपेण वर्णित है। ग्यारहवें सूत्र में काव्य के स्वरूप का मम्मट-सदृश वर्णन है। यथा 'अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्' ॥११॥ हेमचन्द्र की काव्य की परिभाषा मे अलङ्कार समाविष्ट हैं।

'च' शब्द से अपवाद स्वरूप अलङ्कार विहीन भी काव्य हो सकता है, यह ध्वनित किया गया है। आगे के सूत्रों मे परिभाषा में आये हुए शब्द, अर्थ, दोष, गुण, अलङ्कार इत्यादि स्पष्ट किये गये हैं। १२ वाँ सूत्र गुण-दोषों की समुचित परिभाषा प्रस्तुत करता है– यथा 'रसस्योत्कर्षापकर्ष हेतु गुणदोषौ भक्त्या शब्दार्थयो: ।।१२।। तेरहवें सूत्र में अलङ्कार का सामान्य स्वरूप तथा १४ वें सूत्र में रस में उसकी उपयोगिता का वर्णन है। 'अङ्गाश्रिता. अलङ्कारा' ।।१३।। 'तत्परत्वे काले ग्रहत्यागयोर्नाति निर्वाहे पृथङ्गत्वे रसोपकारिण. ।।१४।। सूत्र १५ से २५ तक शब्दार्थ के सम्बन्ध में शास्त्रीय विवेचन है। अन्तिम २५ वें सूत्र में 'रसादिश्च' कहकर व्यङ्ग्यार्थ मे रस का अन्तर्भाव किया गया है। अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना तथा व्यङ्ग्यार्थ का पूर्व सूत्रों में ही वर्णन किया जा चुका है।

द्वितीय अध्याय मे रस, स्थायी भाव, व्यभिचारि भाव तथा सात्विक भावो का वर्णन किया गया है। इसमे काव्य की श्रेणियाँ उत्तम, मध्यम, अधम बतलायी हैं। पहले ५५ सूत्रो मे रस, भाव, रसाभास, भावाभास, वर्णित है तथा अन्तिम तीन सूत्रो मे काव्य की श्रेणियाँ वर्णित हैं।

इस प्रकार दूसरे अध्याय मे आचार्य हेमचन्द्र ने रस के विषय मे साङ्गोपाङ्ग चर्चा की है। स्थायी भाव, व्यभिचारि भाव, का विवेचन गहरा एव शास्त्रीय है। आचार्य हेमचन्द्र रस-सिद्धांत के अनुयायी हैं। उन्होंने काव्य के गुण, दोष, अलङ्कार, का अस्तित्व रस की कसौटी पर ही रखा है। रस के जो अपकर्षक हैं, वे दोष हैं, जो उत्कर्षक हैं, वे गुण और जो रस के अग है अर्थात रसाश्रित, वे अलङ्कार हैं। अलङ्कार यदि रसोपकारक हैं तब ही उनकी काव्य में गणना हो सकती है, यदि रस-बाधक अथवा उदासीन हो तो उन्हे दोष ही समझना चाहिये अथवा उनकी गणना चित्र-काव्य मे करनी चाहिये। हेमचन्द्र का रस विवरण बहुत ही सोपपत्तिक है। उन्होंने रस-तत्व की स्वतन्त्र रूप से विवेचना की है। अनुभाव सामाजिक को रस का अनुभव देते हैं। शास्त्रकार भरत के अनुरूप हेमचन्द्र भी भाव की यही परिभाषा देते हैं। काव्यानुशासन के अनुसार व्यभिचारि भाव स्वधर्म स्थायी भावो को अर्पण करते है। हेमचन्द्र के अनुसार व्यभिचारि भाव निर्बल सेवको के समान परावलम्बी होते हैं। वे अस्थिर होते हैं। स्वामी की इच्छानुसार ये भाव बदलते हैं तथा स्थायी भावो में इनका पर्यवसान होता है। हेमचन्द्र तृष्णाक्षय को ही शम कहते हैं। "तृष्णाक्षय. शम." तथा तृष्णाक्षयरूप शम ही शान्त रस का स्थायी भाव है।

तृतीय अध्याय मे शब्द, वाक्य, अर्थ तथा रस के दोषो पर प्रकाश डाला

गया है। प्रथम दस सूत्रो मे काव्य-दोषो का वर्णन है। जिसका अलङ्कारचूडामणि एव विवेक मे विस्तार किया गया है। विवेक मे राजशेखर के काव्यमीमांसा के बहुत से श्लोक उद्धृत हैं, जिसमे भारत के देश, काल, भूगोल, मौसम इत्यादि का वर्णन है। कदाचित राजशेखर ने भी पुराणोक्त भुवनकोश से अथवा तत्सम किसी ग्रन्थ से उक्त श्लोक लिये हो, इसलिए राजशेखर के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

चतुर्थ अध्याय काव्य-गुणो से सम्बन्धित है। पहले ही सूत्र मे तीन प्रधान गुण—ओज, माधुर्य, एव प्रसाद पर प्रकाश डाला गया है। शेष सूत्रो मे इन गुणो के सहायक वर्णाक्षरो को बताया गया है। उदाहरणार्थ—'माधुर्योज प्रसादास्त्रयो गुणा'''[१] कहकर काव्य के गुणो की सख्या प्रस्थापित की है। हेमचन्द्र के मतानुसार काव्य के तीन ही गुण होते हैं, पाँच अथवा दस नहीं। फिर भी 'विकास हेतु प्रसाद सर्वत्र' कहकर प्रसाद गुण की सर्वत्र आवश्यकता बतलायी है। अलङ्कार चूडामणि मे भी श्री मम्मट का अनुसरण करते हुए उन्हाने गुण सख्या तीन ही बतलायी है। उक्त सूत्र पर विवेक अवश्य देखना चाहिये। विवेक में भरत, मगल, वामन, दण्डिन् के मतो पर चर्चा की गयी है।

पञ्चम् अध्याय — इस अध्याय मे छ शब्दालङ्कारो का वर्णन है। अनुप्रास, यमक, चित्र, श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरुक्तभास, शब्दालङ्कार वर्णित है। प्रथम सूत्र मे ही अनुप्रास की कितनी सुन्दर एव सक्षिप्त परिभाषा दी है—"व्यजनस्यावृत्ति रनुप्रास"। फिर दूसरे सूत्र में लाटानुप्रास की परिभाषा दी है। ३—४ सूत्रो में यमक के विषय में वर्णन है। अलङ्कार-चूडामणि में यमक के भेद बतलाये गये हैं। पञ्चम सूत्र में चित्र तथा षष्ठ सूत्र में श्लेष और सप्तम सूत्र में श्लेष के प्रकारो का वर्णन है, ८ वें में वक्रोक्ति, ९ वें सूत्र में पुनरुक्तभास अलङ्कार का वर्णन है। आनन्दवर्धन के 'देवीशतक' से शब्दालङ्कारो के बहुत से उदाहरण लिये गये है। रूद्रट के 'काव्यालङ्कार' से भी बहुत से उदाहरण उद्धृत हैं। विवेक वृत्ति में ७ वें सूत्र में पाठधर्मत्व की व्याख्या करते हुए भरत के नाट्य शास्त्र एव अभिनवगुप्त की टीका उद्धृत है[१]।

षष्ठ अध्याय में २९ अर्थालङ्कारो का वर्णन है। इस वर्णन में छोटे अथवा कम महत्व के अलङ्कारो को महत्वपूर्ण अलङ्कारो में समाविष्ट करा लिया गया है। रस तथा भाव से सम्बन्धित अलङ्कार जैसे रसवत् प्रेयस, उर्जस्वि, समाहित अलङ्कारो को छोड दिया है। उन्होंने स्वभावोक्ति के लिये जाति तथा अप्रस्तुत प्रशसा के लिए अन्योक्ति शब्द प्रयुक्त किया है।

१— नाट्यशास्त्र—अध्याय २२, पृष्ठ=१४६—२३१ गा० ओ० सी०

निम्न २९ अलङ्कार ३१ सूत्रो में चर्चित है :—
१. उपमा, २ उत्प्रेक्षा ३. रूपक, ४ निदर्शना, ५. दीपक ६. अन्योक्ति, ७. पर्यायोक्ति ८. अतिशयोक्ति ९. आक्षेप, १०. विरोध, ११. सहोक्ति, १२. समासोक्ति, १३. जाति, १४. व्याजस्तुति, १५. श्लेष, १६. व्यतिरेक १७. अर्थान्तरन्यास, १८ सन्देह १९. अपह्नुति, २०. परिवृत्ति, २१ अनुमान, २२. स्मृति, २३ भ्रान्ति, २४. विषम, २५. सम, २६. समुच्चय, २७. परिसङ्ख्या, २८. कारणमाला, २९. सङ्कर,

'हृद्य साधर्म्यमुपमा' कहकर उपमा की परिभाषा में हेमचन्द्र ने अलङ्कार के सौन्दर्य पक्ष पर विशेष जोर दिया है। इस प्रकार छ अध्यायो में १४३ सूत्रों में काव्य-शास्त्र के सम्पूर्ण तन्त्र का वर्णन किया गया है। विवेक मे सरस्वती–कण्ठाभरण के रचियता भोज एव अन्य आलङ्कारिको द्वारा निर्दिष्ट सभी अलङ्कारो की चर्चा की गयी है तथा यह बताया गया है कि कुछ अलङ्कार 'काव्यानुशासन' में निर्दिष्ट अलङ्कारो में समाविष्ट होते हैं। तथा कुछ अलङ्कार की कोटिमें ही नही आतेहैं[१]।

सप्तम अध्याय में नायक एव नायिका भेद-प्रभेदो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्रथम सूत्र में ही नायक की परिभाषा दी है—'समग्रगुण कथा-व्यापी नायक'। सूत्र २ से १० तक नायक के गुण बतलाये हैं। सूत्र ११ में नायक के ४ प्रकार तथा सूत्र १२–१९ तक चारो प्रकारो का वर्णन है। २० वें सूत्र में प्रतिनायक की परिभाषा दी है।

"व्यसनी पापकृतलुब्ध स्तब्धो धीरोद्धत प्रतिनायक"। सूत्र २१ से २९ तक विभिन्न प्रकार की नायिकाओ का वर्णन है। ३० वें सूत्र में नायिकाओं की ८ अवस्थाओ का वर्णन है—(१) स्वाधीनपतिका (२) प्रोषितभर्तृका (३) खण्डिता (४) कलहान्तरिता (५)वासकसज्जा (६) विरहोत्कण्ठिता (७) विप्रलब्धा तथा (८) अभिसारिका। इनमें से अन्तिम तीन परकीया नायिका का से सम्बन्ध है। "अन्यत्रयवस्था परस्त्री"। ३१–३२ वा सूत्र प्रतिनायिका से सम्बन्धित है। शेष सूत्र ३३ से ५२ तक स्त्रियो के गुण तथा स्वभाव से सम्बन्धित हैं। यह अध्याय मुख्यत धनञ्जय के 'दशरूपक' तथा भरत के 'नाट्य शास्त्र' तथा अभिनव गुप्ताचार्य की टीका पर आधारित है।

अष्टम अध्याय मे काव्य को प्रेक्ष्य तथा श्रव्य दो भागो मे विभाजित किया है। आचार्य हेमचन्द्र गद्य-पद्य के आधार पर काव्य का विभाजन नही करते। वे सस्कृत, प्राकृत अपभ्र श के महाकाव्यो के अतिरिक्त ग्राम्य भाषा के

१ —काव्यानुशासन पृष्ठ ३३९–४०५

महाकाव्य का भी उल्लेख करते है। इस प्रकार के एक भीम काव्य का नाम भी उन्होंने दिया है। इस ग्राम्य भाषा को उन्होंने ग्राम्य अपभ्रंश कहा है। निश्चय ही यह अपभ्रंशेतर नयी भाषा का काव्य रहा होगा।

काव्य को प्रेक्ष्य तथा श्रव्य दो भागो मे विभाजित करने के पश्चात् आचार्य प्रेक्ष्य को फिर पाठ्य तथा गेय, दो भागो मे विभाजित कर उनके और कई भाग बतलाते हैं। श्रव्य के मुख्य विभाग अर्थात् महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू, और अनिर्बद्धा। काव्यानुशासनानुसार काव्य सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश मे लिखा जा सकता है। कथा के प्रकारो मे (१) आख्यान (२) निदर्शन (३) प्रवल्लिका (४) मन्थल्लिका (५) मणिकुल्या (६) परिकथा (७) खण्ड कथा (८) सकल कथा (९) उपकथा तथा (१०) वृहत्कथा वर्णित हैं। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे अपभ्रंश और ग्राम्य भाषा मे रचे हुए महाकाव्यों मे सर्गों के लिए क्रमश आश्वास सन्धि और अवस्कन्ध शब्दों का प्रयोग किया है, किन्तु स्वय उन्होंने अपने द्वयाश्रय को आश्वासो मे नही, प्रत्युत सर्गों म ही विभक्त किया है।

प्रथम सूत्र मे 'काव्य प्रेक्ष्य श्रव्य च' काव्य के दो भाग करके अलङकारचूडामणि मे भट्टतोत के आधार पर कवि-कर्म की जानकारी दी है। द्वितीय सूत्र 'प्रेक्ष्य पाठ्य गेय च' प्रेक्ष्य को दो भागो मे विभाजित करता है। तृतीय सूत्र मे पाठ्य के १२ भाग गिनाये हैं-(१) नाटक (२) प्रकरण (३) नाटिका (४) समवकार (५) ईहामृग (६) डिम (७) व्यायोग (८) उत्सृष्टिकाङ्क (९) प्रहसन (१०) भाण (११) वीथी (१२) सट्टक। अलङकारचूडामणि मे भरत के 'नाट्यशास्त्र' के १२ वें अध्याय के उद्धरण हैं तथा 'विवेक' मे अभिनव गुप्त की टीका उद्धृत है। 'विवेक' मे पाठ्य के १२ विभागों के अतिरिक्त टोटक, कोहल द्वारा कथित तथा अन्य पाठ्यो का विवरण दिया है।

चतुर्थ सूत्र मे गेय के ११ भाग बतलाये हैं-(१) डोम्बिका (२) भाण (३) प्रस्थान (४) शिङगक (५) भाणिक (६) प्रेरण (७) रामक्रीड (८) हल्लीमक (९) रासक (१०) श्री गदित और (११) रागकाव्य। इनका वर्णन अलङकारचूडामणि में किसी अज्ञात ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। उसमें दूसरे गेय प्रकार जैसे सम्पा, चलित, द्विपदी आदि का भी उल्लेख है। ब्रह्मा, भरत, कोहल का अध्ययन करने के लिए निर्देश है, जिसमें अधिक जानकारी उपलब्ध है। 'प्रपञ्चस्तु ब्रह्मभरतकोहलादिशास्त्रेभ्योऽवगन्तव्य'।

पञ्चम सूत्र में श्रव्य के पांच प्रकार बतलाये हैं। छठे सूत्र में महाकाव्य

की परिभाषा है। अलङ्कारचूडामणि में पञ्च सन्धियो का वर्णन है जो नाटक तथा काव्य दोनो के लिए समान रूप से आवश्यक हैं। उसमें सन्धियो को समझाने के लिए भरत श्लोक उद्धृत किये हैं। 'विवेक' में नाटको में से उद्धरण उद्धृत हैं। इसमें दण्डिन् के काव्यादर्श का प्रचुर उपयोग किया गया है। (दण्डिन् काव्यादर्श–पृष्ठ ११–३६)। 'अलङ्कारचूडामणि' में अपभ्रंश कविता का उदाहरण 'अब्धिमन्थन' काव्य से तथा ग्राम्य कविता का उदाहरण 'भीम' काव्य से दिया है। ये दोनो काव्य अभी अज्ञात हैं। 'हरि प्रबोध' काव्य का विभाजन आश्वासक में किया गया। यह 'हरि प्रबोध' भी अभी तक अनुपलब्ध है। सप्तम तथा अष्टम सूत्र में क्रमश आख्यायिका और कथा का वर्णन है।

बाणभट्ट की तरह हेमचन्द्र भी कथा और आख्यायिका का भेद स्वीकार करते हैं, परन्तु उनकी मान्यता में अन्तर है। बाणभट्ट के मत मे कल्पित कहानी कथा है और ऐतिहासिक आधार पर चलने वाली कथा आख्यायिका है, जैसे 'कादम्बरी' और 'हर्ष-चरित'। हेमचन्द्र के अनुसार आख्यायिका वह है जो संस्कृत गद्य में हो, जिसका वृत्त ख्यात हो, नायक स्वय वक्ता हो और जो उच्छ्वासो में लिखी गयी हो। कथा किसी भी भाषा में लिखी जा सकती है। उसके लिए गद्य पद्य का बन्धन नही है। इस प्रकार हेमचन्द्र ने बाणभट्ट के गद्य के बन्धन को हटाकर कथा को इतनी व्यापकता दे दी कि उसमें सभी कथा-काव्य समा गये। गद्य-कथा का उदाहरण कादम्बरी है, और पद्य-कथा का 'लीलावई कहा'। अपभ्रंश के 'चरित्र' काव्य भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। हेमचन्द्र को 'गद्य' का नियम इसलिये हटाना पड़ा क्योंकि अपभ्रंश मे गद्य का अभाव था। कथा के सिवाय उन्होने और भी उपभेद किये हैं। 'अलङ्कार चूडामणि' मे भी पद्यमयी कथा के रूप म लीलावती का उल्लेख है। 'विवेक' मे कथा प्रकारो में ग्रन्थो के जो नाम दिये हैं उनमें से अधिकाश अभी तक अज्ञात हैं, जैसे,—गोविन्द, चेटका, गोरोचन, अनङ्गवती, मत्स्यहसित, शूद्रक, इन्दुमती, चित्रलेखा आदि। कथा के उपभेदो में आख्यान, निदर्शन, प्रवल्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खण्डकथा, सकलकथा और उपकथा आदि वर्णित हैं। आख्यान प्रबन्ध-काव्य के बीच आने वाला वह भाग है जो गेय और अभिनेय होता है। दूसरे पात्र के बोध के लिए इसका प्रयोग होता है—जैसे नलोपाख्यान। पशु-पक्षियो के माध्यम से अच्छे-बुरे का बोध देने वाली कथा का निदर्शन है—जैसे 'पञ्चतन्त्र'। 'प्रवल्लिका' में एक विषय पर विवाद होता है। भूतभाषा और महाराष्ट्री में लिखी गयी लघुकथा 'मतल्लिका' है। इसमें पुरोहित, अमात्य और

तापस का मजाक उडाया गया है। 'मणिकुल्या' वस्तु का उद्‌घाटन करती है। पुरुषार्थ-सिद्धि के लिए कही गयी वर्णनात्मक कथा 'परिकथा' है। इतिवृत्त के खण्ड पर आधारित कथा 'खण्ड कथा' है। समस्त फलवाली कथा 'सकल कथा' है और एक कथा पर चलने वाली कथा 'उपकथा' है। रासक के उन्होने तीन भेद किये हैं–कोमल, उद्धत तथा मिश्र[1]।

नवाँ सूत्र चम्पू काव्य की परिभाषा देता है। तथा १० वाँ सूत्र अनिर्बद्ध मुक्तक की परिभाषा देता है। ११ वें सूत्र के अनुसार एक कविता को मुक्तक, दो कविताओ को सन्दानितक, तीन कविताओ को विशेषक, तथा चार कविताओ के पुञ्ज को कलापक कहते हैं। १२ वें सूत्र के अनुसार ५ से १४ कविताओ के पुञ्ज को कुलक कहते है। १३ वें सूत्र मे कोश की परिभाषा दी गयी है। "स्वपरकृत सूक्ति समुच्चय कोश"। अर्थात सुन्दर श्लोका का सङग्रह (स्वय का अथवा दूसरो का) कोश कहलाता है। अलङकारचूडामणि मे मुक्तक के उदाहरणस्वरूप अमरूक का 'अमरूशतक' उदघृत किया है। कोश के उदाहरण स्वरूप 'सप्तशतक' (हाल) सन्घात के उदाहरणस्वरूप 'वृन्दावन मेघदूत' तथा सहिता के उदाहरणस्वरूप 'यदुवश दिलीपवश' उद्घृत किया है।

हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे निम्नाकित ग्रन्थो एव ग्रन्थकारो का उल्लेख किया है। ग्रन्थो के नाम–अवन्तिसुन्दरी, उपाहरण, पञ्चशिखशूद्रकथा, भामह विवरण, रावण-विजय, हरविलास, हरिप्रबोध, हृदय दपर्ण इत्यादि।

ग्रन्थकारो के नाम (१) दण्डी, (२) भट्टतोत, (३) भट्टनायक, (४) भोजराज, (५) मम्मट, (६) मगल, (७) आयुराज, (८) यायावरीय, (९) वामन, (१०) शाक्याचार्य, (११) राहुल, (१२) राजशेखर आदि। प्रो. रसिकलाल पारीख द्वारा सम्पादित काव्यानुशासन के अन्त मे २५४ ग्रन्थ एव ग्रन्थकारो के नाम दिये हैं।

'काव्यानुशासन' का मूल्याङ्कन –

आचार्य हेमचन्द्र का काव्यानुशासन प्राय. सङग्रह ग्रन्थ है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में राजशेखर (काव्यामीमासा), मम्मट (काव्य प्रकाश), आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोक), अभिनव गुप्त (लोचन) से सामग्री पर्याप्त मात्रा में ग्रहण की है। मौलिकता के विषय में हेमचन्द्र का अपना स्वतन्त्र मत है। उन्होंने अपनी प्रमाण-मीमासा की टीका में प्रारम्भ में ही मौलिकता के विषय में स्पष्ट कहा है। 'विधाएँ अनादि होती हैं, वे सक्षेप अथवा विस्तार की दृष्टि से नयी मानी

१– अपभ्रश भाषा और साहित्य–डा० देवेन्द्रकुमार जैन–पृष्ठ ३१७

जाती हैं तथा उस दृष्टि से तत्तद ग्रन्थकारो की कृति मानी जाती हैं"। आचार्य हेमचन्द्र द्वारा प्रस्तुत मौलिकता की इस परिभाषा से यह अनुमान होता है कि वे अपने समय में अनेक ग्रन्थों के कर्तृत्व के विषय में आलोचना के शिकार जरूर बने होंगे। उसके निराकरणार्थ ही उन्हे ऐसा स्पष्टीकरण देना पड़ा। हेमचन्द्र के मत से कोई भी ग्रन्थकार बिलकुल नयी चीज नहीं लिखता। उस मूल विषय का विकास एव विकास की शैली नयी होती है। हेमचन्द्र की मौलिकता की यह कसौटी यदि उन्ही पर लागू की जाय तो उनकी मौलिकता शत प्रतिशत सिद्ध होती है[1]।

काव्यानुशासन की रचना करते समय मम्मट के 'काव्य प्रकाश' का हेमचन्द्र ने विशेष उपयोग किया है। 'काव्यानुशासन' में मम्मट एव उनके 'काव्य प्रकाश' का उल्लेख कई बार आता है। फिर भी 'काव्यानुशासन' मे हेमचन्द्र की मौलिकता अक्षुण्ण है। यद्यपि 'काव्य प्रकाश' के साथ 'काव्यानुशासन' का बहुत साम्य है किन्तु कहीं-कहीं ही नही अपितु पर्याप्त स्थानो पर हेमचन्द्राचार्य ने मम्मट का विरोध भी किया है।

सर्व प्रथम 'काव्य का प्रयोजन' पर चर्चा करते हुए मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं– (१) यश प्राप्ति (२) अर्थ लाभ (३) व्यवहार ज्ञान (४) अशुभ निवारण (५) तात्कालिक आनन्द और (६) कान्तातुल्य उपदेश। आचार्य हेमचन्द्र ने इसका विरोध किया है। उनके मतानुसार आनन्द, यश एव कान्तातुल्य उपदेश ही काव्य के प्रयोजन हो सकते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने यहाँ मम्मट द्वारा बताये अन्य तीन प्रयोजन छोड दिये हैं। अर्थलाभ, व्यवहार ज्ञान, एव *अनिष्ट निवृत्ति हेमचन्द्र के मतानुसार काव्य के प्रयोजन नही हैं।*

हेमचन्द्र के अनुसार काव्य का प्रधान कारण केवल प्रतिभा है। मम्मट के अनुसार काव्योत्पत्ति मे प्रधान तीन कारण होते हैं– (१) शक्ति या प्रतिभा (२) निपुणता या व्युत्पत्ति तथा (३) काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास अर्थात् किसी श्रेष्ठ कवि के पास शिक्षा पाना। आचार्य हेमचन्द्र के मत से काव्यनिर्मिति का प्रधान हेतु प्रतिभा ही है। यहाँ भी उन्होने मत भिन्नता दिखलाकर मम्मट द्वारा निर्देशित शेष कारण गौण बतलाये हैं। कारणो म प्रधान तथा गौण का अन्तर स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है। हेमचन्द्र के अनुसार प्रतिभा सदैव नैसर्गिकी होती

१– "अनादय एवैता विद्या सक्षेप विस्तार विवक्षया नवनवीभवन्ति तत्तत्कर्तृका श्र्योच्यन्ते"–प्रमाणमीमासा–हेमचन्द्र, पृष्ठ १–२

है। व्युत्पत्ति के विषय में हेमचन्द्र कहते है कि लोक-शास्त्र तथा काव्य मे प्रावीण्य प्राप्त करना ही व्युत्पत्ति है– "लोकशास्त्र काव्येषु निपुणता व्युत्पत्तिः"।

काव्य की परिभाषा मे हेमचन्द्र का मत मम्मट के अनुरूप दिखायी देता है। किन्तु उसमे भी कुछ सूक्ष्म भेद है– हेमचन्द्र ने अपनी परिभाषा मे अलङ्कारो को समाविष्ट कर लिया है। 'च' अक्षर से अपवाद सूचित किया गया है। कभी-कभी बिना अलङ्कार के भी काव्य हो सकता है। किन्तु साधारण तौर पर अलङ्कार काव्य के लिए अत्यावश्यक हैं।

आचार्य हेमचन्द्र और मम्मट की काव्य-परिभाषा मे और भी सूक्ष्म अन्तर यह है कि हेमचन्द्र ने गुण, दोष, अलङ्कार का अस्तित्व रस की कसौटी पर ही रखा है। मम्मट ने ऐसा नहीं किया है। हेमचन्द्र सत्यतः रस-सिद्धान्त के अनुयायी प्रतीत होते हैं। इसीलिये वे अलङ्कारो को रसाश्रित, रस के अंग मानते हैं। उनके मत के अनुसार जो रस की हानि करने वाले अर्थात् रसापकर्षक है, वे दोष होते है। तथा जो रस को वृद्धिगत करने वाले अर्थात् रसोत्कर्षक हैं, वे गुण कहलाते हैं। 'काव्य प्रकाशकार' कहीं भी यह कसौटी नहीं अपनाते हैं। इसके विपरीत मम्मट तो ध्वनि-मत के अनुयायी दिखायी देते हैं। उन्होंने 'काव्य प्रकाश' मे ध्वनि विवरण मे ध्वनि के एक प्रकार के रूप मे (असलक्ष्यक्रम व्यग्य) रस का विवेचन किया है। सम्भवतः इसलिये मम्मटाचार्य ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य कहे जाते है। हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' के द्वितीय अध्याय मे ही स्वतन्त्र रूप से रस-चर्चा की है तथा रस-विवरण के समय अभिनव गुप्ताचार्य की अभिनवभारती टीका ज्यो कि त्यों उदधृत की है।

(४) मम्मट एव मुकुलभट्ट के से 'लक्षणा' रूढि अथवा प्रयोजन पर आधारित होती है, किन्तु हेमचन्द्र इसके विरोधी है। उनके मत से लक्षणा केवल प्रयोजन पर आधारित होती है। 'काव्य प्रकाश' में काव्य के प्रकार उत्तम, मध्यम, अधमादि से विषय प्रथम अध्याय मे ही वर्णित हैं जिससे काव्य-शास्त्र के प्राथमिक छात्रो को एकदम कठिनाइयो का सामना करना पडता है। 'काव्यानुशासन' मे रस चर्चा एव शेष चर्चा के अन्त मे काव्य के प्रकारों की चर्चा की है जिससे समझने मे सुलभता, सुगमता होती है। काव्य के १० गुणो को हेमचन्द्र तथा मम्मट ने तीन गुणो के अन्तर्गत (ओज, प्रसाद, माधुर्य) दिखाया है तथा शेष दोषाभाव बतलाया है।

मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' में ६१ अलङ्कारो का वर्णन किया है किन्तु हेमचन्द्र ने केवल २६ अलङ्कारो से ६१ अलङ्कारो का काम चलाया

है। सूक्ष्म भेद एव कम महत्त्व के अलङ्कारो को उन्होने तत्सदृश महत्वपूर्ण अलङ्कारो में मिला दिया है, उदाहरणार्थ सङ्कर के अन्तर्गत समृष्टि, दीपक के अन्तर्गत तुल्ययोगिता। हेमचन्द्र के परवृत्ति अलङ्कार में मम्मट के पर्याय एव परिवृत्ति दोनों समा जाते हैं। उपमा के अन्तर्गत अनन्वय और उपमेयापमा दोनो समा जाते है। मम्मट 'पुंस्त्वादपि प्रविचलेत्' को श्लेषमूला प्रस्तुत प्रशसा के उदाहरण के रूप में बताते हैं, किन्तु हेमचन्द्र इसे ही शब्द-शक्ति मूल-ध्वनि के उदाहरण के रूप में देते हैं।

हेमचन्द्र की उपमा की परिभाषा मम्मट से भिन्न है। उदाहरणार्थ—"साधर्म्यमुपमा भेदे"—मम्मट तथा "हृद्यं साधर्म्यमुपमा"—हेमचन्द्र। इसमें मम्मट केवल साधर्म्य पर जोर देते हैं। उनमें सौन्दर्याभिरुचि कम प्रतीत होती है। हेमचन्द्र की परिभाषा में सौन्दर्याङ्ग—हृद्य पर विशेष जोर दिया गया है। साधर्म्य आह्लादजनक होगा तब ही वह उपमा अलङ्कार होगा। मम्मट की परिभाषा मे ऐसी बात नही हैं।

मम्मट का 'काव्यप्रकाश' विस्तृत है, सुव्यवस्थित है, किन्तु सुगम नही है। उसके विषय मे निम्नांवित उक्ति प्रसिद्ध है—'काव्यप्रकाशस्य कृता गृहे गृहे। टीकास्तथाप्येष तथैव दुर्गम'॥ अगणित टीकाएँ होने पर भी 'काव्य प्रकाश' दुर्गम ही रह जाता है। किंबहुना दुर्गम है इसीलिए सुगम करने के लिए अगणित टीकायें लिखी गयीं। 'काव्यानुशासन' में इस दुर्गमता को 'अलङ्कारचूडामणि' एव 'विवेक' के द्वारा सुगमता मे परिणत किया गया है।

'काव्यप्रकाश' मे केवल श्रव्य काव्य के तन्त्र के विषय मे— साङ्गोपाङ्ग चर्चा है, किन्तु दृश्य काव्य के विषय मे कुछ भी नही कहा गया है। 'काव्यानुशासन' मे नाटक के विषय मे भी साङ्गोपाङ्ग चर्चा होने के कारण नि सन्देह 'काव्यानुशासन' का महत्व 'काव्यप्रकाश' से नितान्त अधिक है। इस सन्दर्भ मे 'काव्यानुशासन' की तुलना पण्डित विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' मात्र से की जा सकती है। आचार्य हेमचन्द्र और विश्वनाथ दोनो के अनुसार महाकाव्य की कथा के विकास-क्रम मे पाँच नाटकीय सन्धियो का समन्वय होना चाहिये। दण्डी हेमचन्द्र, तथा विश्वनाथ इन तीनो के अनुसार प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द आदि से प्राय अन्त तक रहता है। दण्डी द्वारा वर्णनीय विषयो मे दुष्टो के अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र और विश्वनाथ ने महाकाव्य के वर्णनीय विषयो मे दुष्टा की निन्दा और सज्जना की प्रशसा का भी समावेश किया है। काव्य-लक्षणा के विषय मे जरूर मत-भेद प्रकट होता है। विश्वनाथ काव्य का लक्ष्य धर्मार्थ-काम

मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं। अग्निपुराण त्रिवर्गसाधन बतलाते हैं। भामह, दण्डिन् तथा वामन ने यश एवं आनन्द को काव्य का लक्ष्य बतलाया है।

'काव्यानुशासन' में अपने समर्थन के लिए आचार्य हेमचन्द्र विविध ग्रन्थ एवं ग्रन्थकर्ता के नाम उद्धृत करने में अतीव दक्ष हैं। ऐसा करने से उनकी मौलिकता क्षुण्ण नही होती है। मम्मट के 'काव्य प्रकाश' के अतिरिक्त हेमचन्द्र ने राजशेखर के काव्य मीमांसा', आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' तथा अभिनवगुप्ताचार्य, रुद्रट, दण्डिन्, धनञ्जय आदि के ग्रन्थों से अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। 'काव्यानुशासन' के छठे अध्याय में अर्थालङ्कारों का निरूपण करते समय विवेक विवृत्ति में पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा चर्चित सभी अलङ्कारों के सम्बन्ध में कहा गया है। भोज राजा के ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' एवं 'शृंगारप्रकाश' में प्रस्तुत मत का जिनमें अधिकतम अलङ्कारों की संख्या निर्दिष्ट है, हेमचन्द्र द्वारा खण्डन किया गया है। भामह, वामन, दण्डिन् इत्यादि के अलङ्कार रीति इत्यादि पक्ष स्वतन्त्र काव्यतत्व के रूप में आचार्य हेमचन्द्र को मान्य नहीं थे। पूर्वकाल में यद्यपि रस काव्यनिष्ठ माना जाता था तो भी दण्डी, वामन, उद्भट आदि के मन पर रस का महत्व शनै शनै बढ रहा था। सर्व प्रथम रुद्रट ने काव्य तत्व के रूप में 'रस' को स्वतन्त्र स्थान दिया एवं चर्चा की। तदनन्तर राजशेखर, भोज, अग्निपुराणकार, हेमचन्द्र, मम्मट, इत्यादि ने रसतत्व को आत्मतत्व मानकर उसका स्वतन्त्र विवेचन किया। रस के विषय में आचार्य हेमचन्द्र ने भरत मत का ही अनुकरण किया है। वे 'काव्यानुशासन' में स्पष्ट लिखते है कि वे अपना मत निर्धारण अभिनवगुप्त एवं भरत के आधार पर कर रहे है

कतिपय लेखकों को 'काव्यानुशासन' में मौलिकता का अभाव खटकता है। म म पी व्ही० काणे के मतानुसार आचार्य हेमचन्द्र प्रधानतः वैयाकरण थे तथा अलङ्कार-शास्त्री गौण रूप में थे। इसलिए उनके मतानुसार हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' सङ्ग्रहात्मक हो गया है। श्री त्रिलोकीनाथ झा का मत भी प्रो पी व्ही काणे से मिलता जुलता है और उन्होंने भी 'काव्यानुशासन' मे मौलिकता का अभाव ही देखा[1]। श्री ए० बी० कीथ, भी 'काव्यानुशासन' में मौलिकता देख नहीं पाते, श्री एस० एन० दासगुप्त एवं एस०के०डे० भी इस विषय में कीथ का ही अनुसरण करते हैं।

श्री विष्णुपद भट्टाचार्य ने अपने प्रबन्ध मे श्री म० म० काणे के मत का खण्डन किया है तथा हेचमन्द्र के 'काव्यानुशासन' की मौलिकता प्रस्थापित

१ —बिहार रिसर्च सोसायटी, Vol XL III भाग एक दो पृष्ठ २२-२३

की है[1]। उसमे उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के मत मम्मट, मुकुलभट्ट, ध्वनिकार आनन्दवर्धन के मत से किस प्रकार भिन्न है, यह दिखाया है, तथा 'काव्यानुशासन' को नितान्त मौलिक कृति सिद्ध किया है। सचमुच यदि कोई ग्रन्थकार अपने मत के समर्थन मे अन्य ग्रन्थो से, ग्रन्थकारो के उद्धरण प्रस्तुत करता है तो उसमे उस ग्रन्थकार की मौलिकता नष्ट नही होती है, बल्कि इससे तो उसके मत की, सिद्धान्त की एव मौलिकता की पुष्टि ही होती है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' मे मम्मट, राजशेखर, भरत अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, धनञ्जय, आदि आलङ्कारिको के उद्धरण नि सन्देह प्रस्तुत किये हैं, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही कि आचार्य हेमचन्द्र शत-प्रतिशत उक्त आलङ्कारिको का मत मानते हैं और उनका 'काव्यानुशासन' केवल एक सङ्ग्रह मात्र है। हेमचन्द्र का अपना स्वय का स्वतन्त्र मत है, स्वतन्त्र शैली है, स्वतन्त्र दृष्टिकोण है। अपने दृष्टिकोण को समझाने के लिए वे अन्य ग्रन्थो से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं तो उसमे उनके मत की प्रतिष्ठा बढती ही है, घटती नही। मौलिकता तो कभी नष्ट नही होती। मौलिकता के विषय मे हेमचन्द्र का स्वय का मत पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। फिर भी मौलिकता की दृष्टि से हम एक बार फिर विहङ्गमावलोकन करते हैं। उदाहरणार्थ उनका काव्य का प्रयोजन ही देखिये—

"काव्यमानन्दाय यशसे कान्तातुल्यतयोपदेशाय च" इसमे "कला के लिए कला" सिद्धान्त की ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है। मम्मट अथवा दूसरे आचार्यों द्वारा बताये गये काव्य के प्रयोजन हेमचन्द्र को मान्य नही हैं। 'काव्यमानन्दाय" कहकर यह सिद्ध किया है कि स्वान्त सुखाय काव्य-रचना होती है। हेमचन्द्र का यह दृष्टिकोण नितान्त मौलिक है।

इसी प्रकार हेमचन्द्र की उपमा की व्याख्या भी अनुपमेय है। "हृद्य साधर्म्यमुपमा"। प्राय सभी आलङ्कारिको ने 'साधर्म्य' पर ही विशेष जोर दिया है। किन्तु 'हृद्य' पर विशेष जोर देकर हेमचन्द्र ने अपनी मौलिकता सिद्ध की है। समान धर्मता हृद्य अर्थात आह्लादजनक होनी चाहिये। 'साधर्म्य हृद्य अर्थात् आह्लादजनक होगा तो ही वह अलङ्कार हो सकता है, अन्यथा नही। अलङ्कार रसोपकारक हो तो ही वे काव्य मे उपादेय हैं इसलिये उपमा का 'साधर्म्य हृद्य' होना ही चाहिये। "हृद्य सहृदयहृदयाह्लादकारि" अलङ्कार-चूडा-

---

१ —'आचार्य हेमचन्द्र पर ध्वनिविवेक के कर्ता का ऋण' निबन्ध इण्डियन कल्चर ग्रन्थ १३ पृष्ठ २१८-२२४,

मणि मे उन्होंने हृद्य की परिभाषा दी है । अतः समानधर्मत्व के साथ वह समानधर्मत्व आह्लादजनक भी होना चाहिये । सौन्दर्य के भाव-पक्ष पर हेमचन्द्र विशेष ध्यान देते हैं । यह हेमचन्द्र की ही मौलिकता है । अलङ्कारो की सख्या कम करके अनुरूप अलङ्कारो का तत्सम प्रधान अलङ्कार मे समावेश करना आचार्य हेमचन्द्र की ही कला है ।

आचार्य हेमचन्द्र का रस-विवेचन भी बडा ही मार्मिक एवं गहरा है । भरत नाट्यशास्त्र के एव अभिनवगुप्त के उद्धरण उद्धृत करने पर भी हेमचन्द्र के विवेचन मे मौलिकता है । उन्होने काव्य के गुण-दोष को रस की कसौटी पर कसकर ही वर्णित किया है । उनका मत है कि रसापकर्षक दोष हैं, रसोत्कर्षक गुण हैं तथा अलङ्कार रसाश्रित होने चाहियें । रसाभाव मे अलङ्कार को काव्य के दोष ही समझना चाहिये । अलङ्कार केवल बाह्य सौन्दर्य के लिए नही, उन से आन्तरिक सुन्दरता अर्थात् रसनिष्पत्ति होना आवश्यक है ।

वे रस-सिद्धान्त के कट्टर अनुयायी थे । रस-सिद्धान्त की अभिव्यक्ति में उनकी मौलिकता प्रकट होती है । हेमचन्द्र के मत से व्यभिचारि भाव स्थायी भावो को जो सहायता पहुँचाते हैं, वह सहायता स्वय का धर्म स्थिर रखकर नही बल्कि स्वय का धर्म स्थायी भावो मे अर्पण करके पहुँचाते हैं । व्यभिचारि भाव दुर्बल दासो के समान परावलम्बी होते हैं, अस्थिर होते है । स्वामी की लहर के अनुसार जिस प्रकार सेवको को बदलना पडता है उसी प्रकार व्यभिचारि भाव स्थायी भावो के अनुसार बदलते हैं । स्वय का अस्तित्व मिटाकर स्थायी भावो मे अर्पित हो जाते हैं, उनका पर्यवसान उन्ही मे हो जाता है । हेमचन्द्र का उक्त कथन बहुत मार्मिक एव मौलिक है !

काव्यानुशासन के मतानुसार काव्य सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश मे भी लिखा जा सकता है । काव्यानुशासन की एक अन्य विशेषता है — उसमे वर्णित कथा के प्रकार तथा गेय के प्रकार ।

'काव्यानुशासन' के 'अलङ्कारचूडामणि' तथा 'विवेक' मे जो उदाहरण एव जानकारी हेमचन्द्र ने दी, वह सस्कृत-साहित्य मे एव काव्य-शास्त्र के इतिहास के लिए अत्यत उपयुक्त है । हेमचन्द्र ने जो ग्रन्थ एव ग्रन्थकारो के नाम उद्धृत किये हैं उनसे सस्कृत-साहित्य के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड सकता है ।

डा० एस० के० डे० ने 'काव्यानुशासन' को 'काव्य प्रकाश' से निकृष्ट बताया है[१] । डा० रसिकलाल पारीख ने 'काव्यानुशासन' की प्रस्तावना मे डा०

१ —History of Sanskrit Poetics, Vol. I, Page-203

डे० के मत का खण्डन किया है, किन्तु डा० रसिकलाल पारीख ने भी 'काव्यानुशासन' को एक सर्वोत्कृष्ट पाठयपुस्तक बताया है। सत्य बात यह है कि आचार्य हेमचन्द्र के सम्मुख सभी स्तर के पाठक थे। वे युग-पुरुष थे एव प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य था। अत सूत्र शैली मे ग्रन्थ-रचना की और फिर साधारण पाठको की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्होने 'अलङ्कारचूडामणि' लिखा। विशेष ज्ञान की पिपासा रखने वाले मेधावी छात्रो के लिए 'विवेक' नामक विवृति लिखकर उन्हे भी ज्ञानवृद्धि का अवसर दिया है। इस प्रकार सभी कोटि की जनता के लिए 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ उपादेय बन गया है। मम्मट का 'काव्यप्रकाश' एक तो क्लिष्ट है, साधारण पाठको के लिए वह सुगम नही, और सस्कृत के काव्य के अतिरिक्त अन्य साहित्य विद्याओ का अध्ययन करने के लिए पाठको को दूसरे ग्रन्थ भी देखने पडते हैं। हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' इस अर्थ मे परिपूर्ण ग्रन्थ है। उसमे काव्य के अतिरिक्त नाटक, नाटिका, कथा, चम्पू आदि साहित्य की विविध शाखाओ का समुचित परिचय दिया गया है। अत आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' का अध्ययन करने के पश्चात् फिर दूसरा ग्रन्थ पढने की जरूरत नही रहती।

डा० एस० के डे० ने काव्यानुशासन को केवल एक शिक्षा-ग्रन्थ कहा है, यह मत नितान्त भ्रान्त है। नि सन्देह उसमे कवि शिक्षा प्रकरण हैं, किन्तु इससे वह ग्रन्थ केवल शिक्षा ग्रन्थ की कोटि मे नही आ सकता। 'काव्यानुशासन' मे काव्य शास्त्र के सभी अङ्गो पर सविस्तार विचार किया गया है। अत वह सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र पर सुव्यवस्थित तथा सुरचित प्रबन्ध है। जिस प्रकार हेमचन्द्र ने गुजरात के लिए पृथक् व्याकरण दिया, उसी प्रकार उन्होने गुजरात के सभी स्तरो के पाठको के लिए एक उत्कृष्ट अलङ्कार-ग्रन्थ भी दिया। यह ग्रन्थ अब साहित्यशास्त्र के प्रत्येक जिज्ञासु के लिए उपादेय ग्रन्थ बन गया है। अलङ्कार शास्त्र के उत्कृष्ट ग्रन्थो मे आज आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' की गणना होती है।

---o---

हेमचन्द्र के अनुसार काव्य-भेद
काव्य
प्रेक्ष्य
श्रव्य
पाठ्य
गेय
महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू, अनिबंद्ध,
१ नाटक, २ प्रकरण, ३ नाटिका,
४ समवकार, ५ ईहामृग, ६ डिम,
७ व्यायोग, ८ उत्सृष्टिकाङ्क, ९ प्रहसन,
१० भाण, ११ वीथी, १२ सट्टक,
संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश ग्राम्यापभ्रंश
१ आख्यान. २ निदर्शन.
३ प्रवल्लिका. ४ मत्तल्लिका.
५ मणिकुल्या. ६ परिकथा.
७ खण्डकथा. ८ सकलकथा.
९ उपकथा. १० बृहत्कथा.
डोंबिका, भाण, प्रस्थान, शिङ्गक, भाणिक, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक रासक, श्रीगदित, गोष्ठी,
कोमल
उद्धत
मिश्र

अध्याय : ५
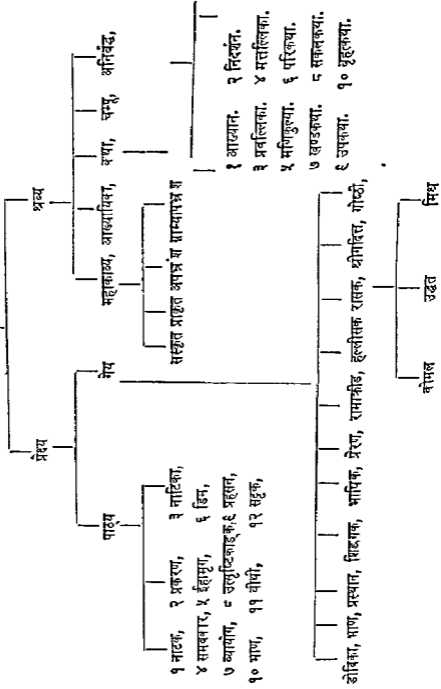
कोश ग्रन्थ

हेमचन्द्र पूर्व कोश साहित्य — कालचक्र के अबाध रूप मे चलते रहने से लौकिक शब्दो के भी ज्ञाताओ का ह्रास हो जाने पर आचार्यों ने लौकिक कोशो का निर्माण किया। इसका वास्तविक ज्ञान आज तक अन्धकार मे ही पडा है, क्योकि प्राय सभी प्राचीन कोश अनुपलब्ध हैं। १२ वी शताब्दी मे रचित, 'शब्द कल्पद्रुम' नामक कोश मे २६ कोशकारो के नाम उपलब्ध होते हैं। सम्प्रति *उपलब्ध कोशो मे सबसे प्राचीन ख्याति प्राप्त अमरसिंह का 'अमर-कोश' है।* प्राचीन प्रणाली के अनुसार अध्ययन-अध्यापन करने वाले पण्डितो के यहाँ अभी भी अमरकोश' कण्ठस्थ करने की प्रवृत्ति चली आ रही है। इससे इसकी लोकप्रियता अभी तक अक्षुण्ण है, यह सिद्ध होता है। अत आचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोशो के निर्माण मे इनसे प्रेरणा एव सहायता ली हो तो उसमे आश्चर्य नही। *'अमरकोष' के अतिरिक्त ६ वी तथा १० वी शताब्दी मे जैन आचार्यों ने सस्कृत* कोश निर्माण मे जो योगदान दिया, वह भी हेमचन्द्र के सामने था। उसी शताब्दी मे धनञ्जय के तीन कोश ग्रन्थ भी हेमचन्द्र के लिए प्रेरणा के स्रोत बने होंगे क्योंकि 'नाममाला' मे कोशकार ने केवल २०० श्लोका मे ही आवश्यक शब्दावली का चयन किया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की प्रकिया हेमचन्द्र के कोशो म भी दिखायी देती है– उदाहरणार्थ पृथ्वी के नामो के आगे धर शब्द या धर के पर्यायवाची शब्द जोड देने से पर्वत के नाम, पति या पति के समानार्थक स्वामिन् आदि शब्द जोड देने से राजा के नाम एव रुह शब्द जोड देने से वृक्ष के नाम हो जाते हैं। इससे एक प्रकार के पर्यायवाची शब्दो की जानकारी से दूसरे प्रकार के पर्यायवाची

शब्दो की जानकारी सहज मे ही हो जाती है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र के जीवनकाल का समय कोश–साहित्य की समृद्धि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। १२ वी शताब्दी से हमे विभिन्न प्रकार के अनेक कोश ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। भैरवी के 'अनेकार्थ कोश' मे अमर, शाश्वत, हलायुध, और धन्वन्तरि का उपयोग किया गया है। अभयपाल की "नानार्थ–रत्नमाला" इसी युग मे रची गयी थी। महेश्वर के 'विश्वप्रकाश कोश' की रचना इसी युग की है। केशव स्वामी के ग्रन्थ द्वय "नानार्थार्णव संक्षेप" एव "शब्दकल्पद्रुम इसी युग की देन हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने भी 'अभिधानचिन्तामणि' 'अनेकार्थसङ्ग्रह', 'निघण्टुशेष' एवं 'देशी नाममाला' कोशो की रचना इसी समय की। आचार्य हेमचन्द्र युग-प्रवर्तक थे, अत. वे समकालीन कोश–निर्माण–आन्दोलन से दूर कैसे रह सकते थे ?

हेमचन्द्र के कोश ग्रन्थ– १२ वी शताब्दी मे जितने कोश ग्रन्थ लिखे गये उनमे से सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हेमचन्द्र के कोश हैं। श्री ए० बी० कीथ भी अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे उक्त कथन का समर्थन करते हैं। आचार्य हेमचन्द्र का 'अभिधान चिन्तामणि' ६ काण्डो मे समानार्थक शब्दो का सङ्ग्रह है, जिनका आरम्भ जैन देवताओ से और अन्त भाववाचक शब्दो (Abstracts), विशेषणो और अव्ययो से होता है। इस पद्यमय कोश के ६ काण्ड हैं–(१) देवाधिदेव काण्ड–८६, (२) देवकाण्ड–२५०, (३) मर्त्यकाण्ड–५९८, (४) भूमिकाण्ड–४२३, (५) नारक काण्ड–७ और (६) सामान्य काण्ड–१७८।

इस प्रकार इस कोश मे कुल १५४२ पद्य हैं। उसके बाद उन्होंने 'शेष नाममाला' लिखी जिसकी श्लोक सख्या कुल २०८ है तथा अनुक्रम निम्नानुसार है–शेष नाममाला–प्रथम काण्ड शेषः श्लो० १५४३ से १६३३; द्वितीय काण्ड शेषः श्लोक १६३४ से १६९८, चतुर्थ काण्ड शेषः श्लोक १६९९ से १७३८, नारक पचम शेष. श्लोक १७३९ से १७४०–५०।

अभिधान चिन्तामणि–इस कोश मे समानार्थक शब्दों का सङ्ग्रह किया गया है। वे आरम्भ मे ही रूढ, यौगिक और मिश्र शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखने की प्रतिज्ञा भी करते हैं। व्युत्पत्ति से रहित, प्रकृति तथा प्रत्यय के विभाग करने से भी अन्वर्थहीन शब्दो को रूढ कहते है–जैसे आखण्डल आदि। कुछ आचार्य रूढ शब्दो की भी व्युत्पत्ति मानते हैं, पर उस व्युत्पत्ति का प्रयोजन केवल वर्णानुपूर्वी का ज्ञान कराना ही है, अन्वर्थ प्रतीति नहीं। अत. 'अभिधान चिन्तामणि' मे सङ्ग्रहीत शब्दो मे प्रथम प्रकार के शब्द रूढ है।

दूसरे प्रकार के शब्द यौगिक हैं। शब्दो के परस्पर अर्थानुगम को योग

कहते हैं। यह योग गुण, क्रिया तथा अन्य सम्बन्धो से उत्पन्न होता है। गुण के कारण नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, कालकण्ठ इत्यादि शब्द ग्रहण किये गये हैं। क्रिया के सम्बन्धो से उत्पन्न होने वाले स्रष्टा, धाता इत्यादि हैं। अन्य सम्बन्धो मे स्वस्वामित्व, जन्य, जनक, धार्यधारक, पतिकलत्र, सख्य, वाह्यवाहक, आश्रय-आश्रयी एव वध्यवध भाव सम्बन्ध ग्रहण किया गया है। स्ववाचक शब्दो मे स्वमिवाचक शब्द या प्रत्यय जोड देने से स्वस्वामि वाचक शब्द बन जाते हैं। स्वामिवाचक प्रत्ययो मे मतुप्, इन् अण्, अक इत्यादि प्रत्यय एव शब्दो मे पाल भुज्, धन, नेतृ, शब्द परिगणित हैं। यथा—भू-मतुप्=भूमान्, धन+इन्-धनी, शिव+अण=शैव, दण्ड+इक=दाण्डिक, भू+पाल=भूपाल, भू+पति =भूपति आचार्य हेमचन्द्र ने उक्त प्रकार के सभी सम्बन्धो से निष्पन्न शब्दो को कोश मे स्थान दिया है। उन्होंने मूल श्लोको मे जिन शब्दो का सङ्ग्रह किया है, उनके अतिरिक्त 'शेषाश्च' कहकर कुछ अन्य शब्दो को स्थान दिया है। इसके पश्चात् स्वोपज्ञ वृत्ति मे भी छूटे हुए शब्दो को समेटने का प्रयास किया है। इस प्रकार इस कोश मे उस समय तक प्रचलित और साहित्य मे व्यवहृत शब्दो को स्थान दिया है। यही कारण है कि यह कोश सस्कृत साहित्य मे सर्वश्रेष्ठ है।

टीका मे नाममाला को 'अभिधानचिन्तामणि' नाम दिया गया है। सम्भवत वृत्ति का नाम 'तत्वबोधविधायिनी' है। इस ग्रन्थ मे शब्द प्रमाण्य वासुकि एव व्याडि से लिया गया है। व्युत्पत्ति धनपाल और प्रपञ्च से ली गयी है। विकास विस्तार वाचस्पति एव अन्यो से लिया गया है। इस प्रकार वे जिन्हे प्रमाण मानते हैं उन प्रधान आचार्यों के नाम उसमे हैं। वासुकि और व्याडि के आधार पर वे शब्द की सत्यता सिद्ध करते हैं। व्याख्या के लिए धनपाल की सहायता लेते हैं। यह प्रतीत होता है कि आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-ग्रन्थ की पर्याप्त आलोचना हुई है अतः वे इस ग्रन्थ मे प्रमाण देने मे प्रारम्भ से ही विशेष सावधान हैं। 'अभिधान चिन्तामणि' के प्रत्येक काण्ड के अन्त मे परिशिष्ट है। अनेकार्थ सङ्ग्रह इसी का पूरक ग्रन्थ है।

'अभिधानचिन्तामणि कोश' अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इतिहास की दृष्टि से इस कोश का बडा महत्व है। हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति टीका म पूर्ववर्ती निम्नलिखित ५६ ग्रन्थकारो तथा ३१ ग्रन्थो का उल्लेख किया है। ग्रन्थकार है—

१. अमर २. अमरादि, ३. अलङ्कारकृत् ४. आगमविद्, ५. उत्पल, ६. काप, ७. कामन्दकि, ८ कालिदास ९. कौटिल्य, १०. कौशिक, ११. क्षीरस्वामी

१२. गौड, १३ चाणक्य, १४. चान्द्र, १५. दन्तिल, १६. दुर्ग, १७. द्रमिल, १८ धनपाल, १९. धन्वन्तरी, २०. नन्दी, २१. नारद, २२. नैरुक्त, २३ पदार्थविद्, २४. पालकाप्य, २५ पौराणिक, २६. प्राच्य, २७. बुद्धिसागर, २८. बौद्ध, २९. भट्टतोत, ३०. भट्टि, ३१. भरत, ३२. भागुरि, ३३. भाष्यकार, ३४. भोज, ३५. मनु, ३६. माघ, ३७. मुनि, ३८. याज्ञवल्क्य, ३९. याज्ञिक, ४०. लौकिक, ४१. लिङ्गानुशासनकृत, ४२. वाग्भट, ४३. वाचस्पति, ४४. वासुकि, ४५. विश्वदत्त, ४६. वैजयन्तीकार, ४७. वैद्य, ४८. व्याडि, ४९. शाब्दिक, ५०. शाश्वत, ५१. श्रीहर्ष, ५२. श्रुतिज्ञ, ५३. सभ्य, ५४. स्मार्त, ५५. हलायुध तथा ५६. हृध्य।

ग्रन्थो के नाम इस प्रकार है— १. अमरकोश, २. अमरटीका, ३. अमरमाला, ४. अमरशेष, ५. अर्थ-शास्त्र, ६. आगम, ७. चान्द्र, ८. जैन-समय, ९. टीका, १०. तर्क, ११. त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, १२. द्वयाश्रय महाकाव्य, १३. धनुर्वेद १४. धातुपारायण, १५. नाट्यशास्त्र, १६. निघण्टु, १७. पुराण, १८. प्रमाण-मीमासा, १९. भारत, २०. महाभारत, २१. माला, २२. योगशास्त्र, २३. लिङ्गानुशासन, २४. नामपुराण, २५. विष्णुपुराण, २६. वेद, २७. वैजयन्ती, २८. शाकटायन, २९. श्रुति, ३०. सहिता तथा ३१. स्मृति।

इस कोश मे व्याकरण वार्तिक, टीका, पञ्जिका, निबन्ध, सङ्ग्रह, परिशिष्ट, कारिका, कालिन्दिका, निघण्टु, इतिहास, प्रहेलिका, किंवदन्ति, वार्ता आदि की भी व्याख्या और परिभाषा प्रस्तुत की गयी हैं। इन परिभाषाओ से साहित्य के अनेक सिद्धान्तो पर प्रकाश पडता है।

आरम्भ मे ही आचार्य कहते है कि यह प्रयास नि.श्रेयस, अर्थात् मुक्ति के लिए है। आत्म-प्रशसा एव परनिन्दा से क्या प्रयोजन ? अत. जैन-सम्प्रदाय की दृष्टि से भी इसमे धार्मिक सामग्री पर्याप्त रूप मे मिलती है। रूढ, यौगिक मिश्र शब्दो के विभागो का वर्णन कर मुक्तादि जीवो के क्रम वर्णित हैं। पहले काण्ड मे गणधरादि अङ्गो के सहित देवाधिदेव, वर्तमान भूत भविष्यत् अर्हन्तो का वर्णन किया गया है। दूसरे काण्ड मे अङ्गो सहित देवो का वर्णन किया गया है। तीसरे मे अङ्गो सहित मनुष्यो का, चौथे मे अङ्गो सहित तिर्यञ्चो का वर्णन किया गया है। इनमे एक इन्द्रिय वाले पृथ्वीकायिक शुद्ध पृथ्वी, बालू रेत इत्यादि, जलकायिक, हिम, बर्फ आदि, तेजस्कायिका–अङ्गारादि; वायुकायिक-पवनादि; वनस्पतिकायिक, शैवालादि; दो इन्द्रिय वाले जीव–काष्ठकीट, घुण, कृमि आदि जीव; तीन इन्द्रिय वाले जैसे पिपीलक, पीलक; चार इन्द्रिय वाले

जीव जैसे मकडी, भ्रमर आदि; पाञ्च इन्द्रिय वाले जैसे स्थल चरपशु, खेचर पक्षी, जलचर, मत्स्यादि, देव, देवता तथा नारकीय का वर्णन मिलता है। पाँचवे मे अङ्गोसहित नारकीय जीवों का वर्णन तथा छठे काण्ड मे साधारण तथा अव्यय शब्द हैं।

जीवो की गतियाँ पाँच होती हैं; यथा १, मुक्तगति, २, देवगति, ३, मनुष्यगति, ४, तिर्यग्गति तथा ५, नारकगति। अतः जीव पाँच प्रकार के होते हैं—मुक्त, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारक। १. प्रभव, प्रभु २. शय्यंभव, ३, यशोभद्र ४, सम्भूतविजय, ५, भद्रबाहु और ६, स्थूलभद्र, ये छः श्रुतकेवली कहे जाते हैं। तत्पश्चात् तीनों कालों में होने वाले २४-२४ तीर्थङ्करों के जन्म के साथ ही होने वाले अतिशयो का वर्णन हैं।

ऋतुओ के सम्बन्ध मे 'अभिधान चिन्तामणि कोश' मे बडी ही मनोरञ्जक जानकारी मिलती है। ऋतुभेद से प्रत्येक मास मे सूर्य की किरणें घटती-बढती हैं। 'पूषति वर्धते' इस विग्रह से सूर्य का नाम 'पूषा' होता है। आचार्य व्याडि के मत से—चैत्र मे १२००, वैशाख मे १३००, ज्येष्ठ मे १४००, आषाढ मे १५००, श्रावण मे १४००, भाद्रपदमे १४००, अश्विन मे १६००, कार्तिक मे ११००, अगहन मे १०५०, पौष मे १०००, माघ मे ११०० और फाल्गुन मे १०५०, सूर्य की किरणें होती है। समय परिमाण भी बडा मनोरञ्जक है। मनुष्यो के ३६० वर्ष=देवो के ३६० दिन=१ दिव्य वर्ष; १२,००० दिव्य वर्ष=१ चतुर्युग; ४३२०००० मनुष्यो के वर्ष = देवो का एक युग—दिव्ययुग। २००० दिव्ययुग का ब्रह्मा का एक दिन—रात होता है अथवा ८६४०००००००० ब्रह्मा के दिन-रात मनुष्यो का कल्प-द्वय होता है। देवो के ७१ युग = १ मन्वन्तर—३०६७२०००० वर्ष। १४ मनुओं मे से प्रत्येक मनु का स्थिति काल इतना होता है। इससे काल की अनन्तता की कल्पना सहज मे ही आ सकती है।

उसी प्रकार नाप-तोल परिमाण के विषय मे भी तत्कालीन प्रचलित परिमाणो पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। 'अभिधान चिन्तामणि' के अनुसार दो सहस्र दण्ड अर्थात ८००० हाथ का एक गव्यूति होता है[1]। आचार्य हेमचन्द्र ने

---

१. त्रिविधमान बोधक चक्र

(१) पौतवमानः—१, गुञ्जा—१, रत्ति—५ गुञ्ज—१ माषक, १६ माषक—१ कर्ष, ४ कर्ष—१ पलम्, १६ माषका—१ विस्त, ४ विस्त—१ कुविस्त, १०० पल—१ तुला, २० तुला—१ भार, २० भार—१, आचित (अगले पृष्ठ पर भी)

अपने कोश मे सेना का अङगो सहित वर्णन किया है। उक्त वर्णन देखने से प्रतीत होता है कि वे सङग्राम मे या तो कभी साथ रहे होंगे या उन्होने अपनी आँखो से सेना का सूक्ष्म निरीक्षण किया होगा। उस समय प्रचलित सेना-पद्धति पर पूर्ण प्रकाश पडता है। इतना ही नही महाभारत के समय की अक्षौहिणी पद्धति पर भी प्रकाश पडता है।

लगभग महाभारत के समय से ही हमारे भारतीय समाज मे वर्णसङ्कर होता आ रहा है। समय-समय की अपरिहार्य परिस्थिति के अनुसार यह अवश्य-भावी भी था। किन्तु समाज को दुर्बल होने से बचाने के लिए उस प्राचीन काल मे भी मनु महाराज ने वर्णसङकर की समुचित व्यवस्था दी थी तथा सभी प्रकार के मानवो को नागरिकता का सम्मान प्राप्त था। 'मनुस्मृति' मे निर्दिष्ट ८ प्रकार के सम्मत विवाह इसी बात को सिद्ध करते हैं। भारत मे जन्मी सभी सन्तानो को अपनाने का वह महान् सफल प्रयास था। इससे समाज सबल बना रहा; किन्तु कुछ शताब्दियो के अनन्तर जब जन्मजात जातियो का प्राबल्य बढ रहा

---

(२) द्रव्यमान — १ कुडव—२ प्रसृती, ४ कुडव—१ प्रस्थ, ४ प्रस्थ—१ आढक १६ आढक—१ खारी

(३) पाय्यमान — १ अगुल—३ यव, २४ अगुल—१ हस्त, ४ हस्त—१ दण्ड, २००० दण्ड—१ क्रोश, २ क्रोश—१ गव्यति, २ गव्यति; —१योजन,

सेना संख्या बोधक चक्र

नाम	गज	रथ	अश्व	पत्ति	योग
१, पत्ति.	१	१	३	५	१०
२, सेना	३	३	९	१५	३०
३, सेनामुख	९	९	२७	४५	९०
४, गुल्म	२७	२७	८१	१३५	२७०
५, वाहिनी	८१	८१	२४३	४०५	८१०
६, पृतना	२४३	२४३	७२९	१२१५	२४३०
७, चमुः	७२९	७२९	२१८७	३६४५	७२९०
८, अनीकिनी	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	२१८७०
९. अक्षौहिणी	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	२१८७००
१०, महा-अक्षौहिणी	१३२१२४९०	१३२१२४९०	३६६३७४७०	६६०६२८५०	१३२१२२००

था तब सङ्करित वर्णों की भी अनेक जातियाँ बनी । आचार्य हेमचन्द्र के समय प्रचलित सङ्करित जातियो के वर्णन से तत्कालीन समाज-व्यवस्था पर प्रकाश पडता है । यद्यपि सभी वर्णों को अपनाने का प्रयास इसमे भी है फिर भी उच्च-नीच का भाव अत्यधिक प्रभावशील था यह सत्य है ।

वर्णसङ्करो के मातृ-पितृ जाति बोधक चक्र

क्रमांक	पितृजाति	मातृजाति	वर्णसङ्कर सन्तान जाति
१	ब्राह्मण	क्षत्रिया	मूर्धावसिक्त.
२	ब्राह्मण	वैश्या	अम्बष्ट
३	ब्राह्मण	शूद्रा	पाराशव, निषाद
४	क्षत्रिय	वैश्या	माहिष्य
५	क्षत्रिय	शूद्रा	उग्र
६	वैश्य	शूद्रा	करण
७	शूद्र	वैश्या	आयोगव
८	शूद्र	क्षत्रिया	क्षता
९	शूद्र	ब्राह्मणी	चाण्डाल
१०	वैश्य	क्षत्रिया	मागध
११	वैश्य	ब्राह्मणी	वैदेहक
१२	क्षत्रिय	ब्राह्मणी	सूत
१३	माहिष्य	करणी	तक्षा (रथकारक)

अभिधानचिन्तामणि कोश की विशेषताएँ—

हेमचन्द्र के कोश ग्रन्थ, विशेषत: 'अभिधानचिन्तामणि कोश', अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है । हेमचन्द्र के कोश ग्रन्थो की पहली विशेषता यह है कि ये कोश इतिहास और तुलना की दृष्टि से बहुत मूल्यवान हैं । विभिन्न ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारो के उद्धरण विविध दृष्टियो से भाषा सम्बन्धी परिचय प्रस्तुत करते हैं ।

दूसरी विशेषता यह है कि धनञ्जय के समान शब्द योग से अनेक पर्यायवाची शब्दो के बनाने का विधान हेमचन्द्र ने किया है किन्तु 'कविरूढया ज्ञेयोदाहरणावलि' के अनुसार उन्ही शब्दो को ग्रहण किया है जो कविसम्प्रदाय द्वारा प्रचलित एव प्रयुक्त हैं—उदाहरणार्थ पति वाचक शब्दो से कान्ता, प्रियतमा, वधू, प्रणयिनी, एव विभा शब्दो को या इनके समान अन्य शब्दो को जोड देने से पत्नी के नाम और कलत्रवाचक शब्दो मे वर, रमण, प्रणयी, एव प्रिय शब्दो

को या इनके समान अन्य शब्दो को जोड देने से पतिवाचक शब्द बन जाते है। गौरी के पर्यायवाची शब्द बनाने के लिए शिव शब्द मे उक्त शब्द जोडने पर शिवकान्ता, शिवप्रियतमा, शिववधू, शिव प्रणयिनी, आदि शब्द बनते हैं। विभा का समानार्थक परिग्रह भी है। किन्तु जिस प्रकार शिवकान्ता शब्द ग्रहण किया जाता है उस प्रकार शिव परिग्रह नही। अत कवि-सम्प्रदाय मे यह शब्द ग्रहण नही किया गया है। कलत्रवाची गौरी शब्द मे वर, रमण, शब्द जोडने से गौरी-वर, गौरीरमण, गौरीश आदि शिववाचक शब्द बनते हैं। जिस प्रकार गौरीवर, शिववाचक है, उसी प्रकार गङ्गावर नही यद्यपि कान्तावाची गगा शब्द मे वर शब्द जोडकर पतिवाचक शब्द बन जाते है, तो भी कवि-सम्प्रदाय मे इस शब्द की प्रसिद्धि नही होने से यह शिव के अर्थ मे ग्राह्य नही है। अतएव शिव के पर्याय कपाली के समानार्थक कपालपाल, कपालधन, कपालभुक, कपालपति, जैसे अप्रयुक्त अमान्य शब्दो के ग्रहण से भी रक्षा हो जाती है। इससे हेमचन्द्र की नयी सूझबूझ का भी पता चल जाता है। व्याकरण द्वारा शब्द-सिद्धि सम्भव होने पर भी कवियो की मान्यता के विपरीत होने से उक्त शब्दो को कपाली के स्थान पर ग्रहण नही किया जाता।

तीसरी विशेषता यह है कि सास्कृतिक दृष्टि से हेमचन्द्र के कोशो की सामग्री महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारत मे प्रसाधन के कितने प्रकार प्रचलित थे, यह उनके अभिधानचिन्तामणि कोश से भलीभाँति जाना जा सकता है[1]। शरीर को सस्कृत करने को परिकर्म, उबटन लगाने को उत्सादन, कस्तूरी कुङ्कुम का लेप लगाने को अङ्गराग, चन्दन, अगर, कस्तूरी, कुङ्कुम के मिश्रण को 'चतु सममू' कर्पूर, अगर, कङ्कोल, कस्तूरी, चन्दन द्रव के मिश्रित लेप को 'यक्षकर्दम' और सस्कारार्थ लगाये जाने वाले लेप का नाम वर्ति या गात्रानुलेपिनी कहा गया है।

उसी प्रकार प्राचीन काल में पुष्पमालाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से पहनी जाती थी। उसके विषय मे भी विविध नाम इस कोश मे प्राप्त होते हैं। यथा माल्यम्, मालास्त्रक—मस्तक पर धारण की जाने वाली पुष्पमाला, गर्भक—बालो के बीच म स्थापित पुष्पमाला, प्रभ्रष्टकम्—चोटी मे लटकने वाली पुष्पमाला ललामकम्—सामने लटकती हुई पुष्पमाला, वैकक्षम्—छाती पर तिरछी लटकती हुई पुष्पमाला, प्रालम्बम्—कण्ठ से छाती पर सीधी लटकती हुई पुष्पमाला, आपीड—सिर पर लपेटी हुई माला, अवतस—कान पर लटकती हुई माला, बाल-

---

१. अभिधान चिन्तामणि— ३।२९९,

पाश्या–स्त्रियों के जूड़े में लगी हुई माला।

इसी प्रकार कान, कण्ठ, गर्दन, हाथ, पैर, कमर इत्यादि विभिन्न अङ्गों में धारण किये जाने वाले आभूषणों के अनेक नाम आये हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन समय में आभूषण धारण करने की प्रथा कितनी अधिक थी। मोती की १००, १००८, १०८, ५५४, ५४, ३२, १६, ८, ४, २, ५, ६४ विभिन्न प्रकार की लड़ियों की माला के विभिन्न नाम आये हैं।

सामान्य स्त्रियों की साड़ी के नीचे पहने जाने वाले वस्त्र का नाम है 'चलनी'। वैसे लहँगे के लिए चलनक अथवा चण्डातक शब्द आते हैं। पुत्रोत्पत्ति या विवाहादि के समय मित्रों के द्वारा, नौकरों के द्वारा हठपूर्वक जो कपड़ा माल छीन लिया जाता है उसका नाम पूर्णपात्र, पूर्णानक होता है। सङ्गीत-कला के विषय में हेमचन्द्र के कोशों के अनुसार उस समय वीणा के दो भेद थे। काष्ठमयी वीणा और शारिरी वीणा, एक में तार से दूसरे में कण्ठ से उक्त स्वरों की उत्पत्ति होती थी। इस प्रकार सस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से यह कोश बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न वस्तुओं के व्यापारियों के नाम तथा व्यापार योग्य अनेक वस्तुओं के नाम भी इस कोश में सङ्ग्रहीत हैं। प्राचीन समय में मद्य बनाने की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं। शहद मिलाकर बनाये गये मद्य को मध्वासव, गुड़ से बने मद्य को मैरेय, चावल उबालकर तैयार मद्य को नग्नहू कहा गया है।

गायों के भी वष्कयणी, धेनु, परेष्टु, गृष्टि, वल्या, सुव्रता, करटा, बञ्जुला द्रोणदुग्धा, पीनोघ्नी, धेनुष्या नैचिकी पलिक्नी, समांसमीना, सुकरा वत्सला इत्यादि नामों को देखने से मालूम होता है कि उस समय गौ-सम्पत्ती बहुत महत्वपूर्ण थी। विभिन्न प्रकार के घोड़ों के नामों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में कितने प्रकार के घोड़े काम में लाये जाते थे, माधुवाही, शुक्ल, कश्य, श्रीवृक्षकी, पञ्चभद्र, कर्क खोगाह, क्रियाह, नीलका, सुरूहक, वोरूवान, कुलाह, उकनाह, शोण, हरिक, पगुल, हलाह तथा अश्वमेध के घोड़े को ययु कहा गया है। इतना ही नहीं, घोड़े की विभिन्न प्रकार की चालों के विभिन्न नाम आये हैं।

कुली (३।२१८)–बड़ी साली, यन्त्रणी या केलिकुञ्चिका (३।२१९)–छोटी साली इत्यादि नामों को देखने से अवगत होता है कि उस समय छोटी साली के साथ हँसी मजाक करने की प्रथा थी। साथ ही पत्नी की मृत्यु के पश्चात् छोटी साली से विवाह भी किया जाता था इसीलिये उसे केलिकुञ्चिका कहा गया

है।

निष्कुट–घर के पास वाला बगीचा, पौरक–गाँव के बाहर वाला बगीचा, आक्रीड–क्रीडा का बगीचा, उद्यान, प्रमदवन–राजाओं के अन्त पुर योग्य बगीचा पुष्पवटी–धनिको का बगीचा, क्षुद्राराम–प्रसीदिका–छोटा बगीचा, ये नाम भी सास्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार मसाले, अङ्ग, प्रत्यङ्ग के नाम, माला, सेना, के विभिन्न नाम, वृक्षलता, पशुपक्षी एव धान्य आदि के अनेक नवीन नाम आये हैं।

'अभिधानचिन्तामणि' की कुल श्लोक सख्या १५४२ है जो प्राय अमरकोश के बराबर ही हैं, किन्तु अभिधानचिन्तामणि मे नाम और उनके पर्याय अत्यधिक सख्या म कही-कही दुगनी सख्या तक मे दिये गये हैं। इनमे स्वोपज्ञ वृत्ति मे कथित पर्याय सख्या जोड दी जाय तो उक्त सख्या कही-कही अमरकोश से तिगुनी-चौगुनी तक पहुँच जाएगी। उदाहरणार्थ– अभिधानचिन्तामणि मे सूर्य के ७२ नाम आये हैं, जबकि अमरकोश मे ३७, किरण के ३६, अमरकोश मे ११; चन्द्र के ३२, अमरकोश मे २०, शिव के ७७, अमरकोश मे ४८, गौरी के ३२, अमरकोश मे १७, ब्रह्मा के ४०, अमरकोश मे २०; विष्णु के ७५, अमरकोश मे ३६, और अग्नि के ५१, अमरकोश मे ३४ नाम है।

इसी प्रकार 'अमरकोश' मे अवर्णित चक्रवर्तियो, अर्धचक्रवर्तियो, उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी, काल के तीर्थङ्करो एव उनके माता पिता, वर्णचिन्ह और वश आदि का भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ मे किया गया है। इसके अतिरिक्त अमरकोश मे अल्पसख्यक नदियो, पर्वतो, नगरो, शाखा नगरो, भोज्य पदार्थों के पर्यायो का वणन किया गया है, 'अभिधानचिन्तामणि' मे लगभग एक दर्जन नदिया, उदयाचल, अस्ताचल, हिमाचल, विध्य आदि देढ़ दर्जन पर्वतो, गया, काशी आदि सप्त पुरियो के साथ कान्यकुब्ज, मिथिला, निषधा, विदर्भ लगभग डेढ़ दर्जन देशो, वाल्मीकि, व्यास, याज्ञवल्क्य आदि ग्रन्थकार, महर्षियो, अश्विन्यादि २७ नक्षत्रो और साङ्गोपाङ्ग, ग्रहावयवो के साथ बर्तनो, सेर, घीवर, लड्डू आदि विविध भोज्य पदार्थों तथा हाट-बाजार आदि अनेक नामो के पर्याय दिये गये है। इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि ग्रन्थकारोक्त शैली के अनुसार कविरूढ़ि प्रसिद्ध शतम यौगिक पर्यायो की रचना करके पर्याप्त सख्या म पर्याय बनाये जा सकते हैं, किन्तु अमरकोश मे उक्त या अन्य किसी भी शैली से पर्याय निर्मित करने की चर्चा तक नही की गई है।

ऊपर निर्दिष्ट विवेचन से यह स्पष्ट है कि अमरकोश की अपेक्षा यह श्रेष्ठतम सस्कृत कोश है । अतएव यह कथन सत्य है कि आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना कर सस्कृत साहित्य के शब्द-भाण्डार की प्रचुरप रिमाण म वृद्धि की है ।

जहाँ शब्दो के अर्थ मे मत-भेद उपस्थित होता है वहाँ हेमचन्द्र अन्य ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारो के वचन उदधृत कर उस मत-भेद का स्पष्टीकरण करते हैं। यथा—हेमचन्द्र ने गूँगे बहरे के लिए 'अनेउमूक' शब्द को व्यवहृत किया है। इनके मत मे 'एडमूक' 'अनेकमूक' और 'अवाक्श्रुति' ये तीन पर्याय गूङ्गे-बहरे के लिए आये हैं, इन्होंने मूक तथा अवाक् ये दोनो नाम गूङ्गे के लिए लिखे हैं। 'शेषाश्च' मे मूक के लिए जड तथा कड पर्याय भी बतलाये हैं। इसी प्रमङ्ग मे मतभिन्नता बतलाते हुए 'कलमूकस्त्ववाक्श्रुति इतिहलायुध' कनेडोऽपि अवर्कोऽपि मूक अनेडमूक, 'अन्धो ह्यनेडमूक' स्यात्' इति भागुरि अर्थात् हलायुध के मत म अन्धे को अनेडमूक कहा है। वैजयन्तीकार ने जड को 'अनेडमूक' कहा है और भागुरि ने शठ को अनेडमूक बतलाया है, इस प्रकार अनेडमूक शब्द अनेकार्थक है ।

हेमचन्द्र के सस्कृत कोश 'अभिधानचिन्तामणि' मे अनेक शब्द ऐसे आये हैं जो अन्य कोशो म नही मिलते । अमरकोश म सुन्दर के पर्यायवाची १२ शब्द दिये हैं तो हेमचन्द्र ने २६ शब्द बतलाये हैं। इतना ही नहीं हेमचन्द्र ने अपनी वृत्ति म 'लडह' देशी शब्द को भी सौन्दर्यवाची माना है। एक ही शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दो को ग्रहण कर उन्होंने अपने इस कोश को खूब समृद्ध बनाया है। सैकडो ऐसे नवीन शब्द आये हैं जिनका अन्यत्र पाया जाना सम्भव नहीं। यथा— जिसके वर्ण या पद लुप्त हो, जिसका पूरा उच्चारण नही किया गया हो उस वचन का नाम 'ग्रस्तम्', थूक सहित वचन का नाम 'अम्बूत्कृतम्' आया है। शुभ वाणी का नाम कल्या, हर्षक्रीडा से युक्त वचन के नाम चर्चरी चर्मरी एव निन्दापूर्वक उपालम्भयुक्त वचन का नाम परिभाषण आया है। जल हुए भात के लिए भिस्सटा और दग्धिका नाम आये है। गेहूँ के आटे के लिए समिता (३।६६) और जौ के आटे के लिए चिक्कस (३।६६) नाम आये है। नाक की विभिन्न बनावट वाले व्यक्तियो के विभिन्न नामो का उल्लेख भी शब्द सङ्कलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चिपटी नाक वाले के लिए नतनासिक, अवनाट, अवटीट, अवभ्रट, नुकीली नाकवाले के लिए-खरणस, छोटीनाक वाले के लिए 'न क्षुद्र' खुर के समान बडी नाकवाले के लिए-खुरणस एव ऊँची नाक वाले के

लिए उनसे शब्द सङ्कलित किये गये हैं। निर्वीरा (३।१९४) पति-पुत्र से हीन स्त्री, नरमालिनी (३।१९५)–जिस स्त्री के दाढ़ी या मूंछ के बाल हो; भानवीय-दायी आँख, सौम्य–बायी आंख (३।२६६); कुलुक्म्-जीभ की मैल, पिप्पिका-दांत की मैल (३।२६६), ध्वजिअन–मृगचर्म का पंखा, तालावर्तम्–कपडे का पंखा, पौलिन्दा–नांव के बीच वाला डण्डा। उपर का भाग मङ्ग, सेकपात्र या सेचन (६।५४२)–नाव के भीतर जमे हुए पानी फेंकने का चमडे का पात्र, गोपानसी–(४।७५)–छापर छाने के लिए लगायी गयी लकडी,–विष्कम्भ (४।८९)–जिसमे बांधकर मथानी घुमायी जाती है वह लकडी, रूप्यम् (४।११२-११३)–सोना, चांदी, तांबे का सिक्का, घनगोलक–मिश्रित सोना-चांदी। तन्त्रिका (४।१५७) कूएँ पर रस्सी बांधने के लिए काष्ट की बनी चरखी, आदि ये शब्द अपने भीतर सास्कृतिक इतिहास भी समेटे हुए हैं।

हेमचन्द्र का कोश–साहित्य मे स्थान– यद्यपि व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त-वाक्य, व्यवहार आदि को व्युत्पन्न शब्द का शक्तिग्राहक बतलाया है तो भी उनमे व्याकरण एव कोश ही मुख्य हैं। इनमे भी व्याकरण के प्रकृति-प्रत्यय-विश्लेषण द्वारा प्राय यौगिक शब्दो का ही शक्ति ग्राहक होने से सर्वविध रूढ, यौगिक तथा योगरूढ शब्दो का अबाध ज्ञान कोश के द्वारा ही हो सकता है। इस दृष्टि से हेमचन्द्र का स्थान न केवल सस्कृत कोश ग्रन्थकारो मे अपितु सम्पूर्ण कोश साहित्यकारो मे अक्षुण्ण है। 'शेषाश्च' कहकर अन्य शब्दो का भी इनके कोश मे स्थान है। उन्होने तत्कालीन समय तक प्रचलित एव व्यवहृत सभी शब्दो को अपने कोश मे स्थान दिया है, यह उनके कोश की सर्वश्रेष्ठता का एक कारण है। उनके कोश जिज्ञासुओ के लिए केवल पर्यायवाची शब्दो का सङ्कलनमात्र नही है अपितु इसमे भाषा सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री सङ्कलित है। समाज और सस्कृति के विकास के साथ भाषा के अङ्ग-उपाङ्गो मे भी विकास होता है और भावाभिव्यञ्जना के लिए नये-नये शब्दो की आवश्यकता पडती है। कोश नवीन तथा प्राचीन सभी प्रकार के शब्द-समूह का रक्षण और पोषण करता है। हेमचन्द्र ने अधिकाधिक शब्दो को स्थान देते हुए नवीन और प्राचीन का समन्वय उपस्थित किया है। यथा–गुप्तकाल के भुक्ति-प्रान्त, विषय-जिला युक्त-जिले का सर्वोच्च अधिकारी, विषयपति–जिलाधीश, शौल्किक–चुङ्गी विभाग का अध्यक्ष, गौल्मिक–जङ्गल विभाग का अध्यक्ष, बलाधिकृत–सेनाध्यक्ष, महा-बलाधिकृत–फील्ड मार्शल, अक्षयपटलाधिपति–रेकार्ड कीपर–इत्यादि नये शब्द इसमे ग्रहण किये गये है।

हेमचन्द्र के 'अभिधानचिन्तामणि कोश' के स्वोपज्ञ वृत्ति मे अनेक प्राचीन आचार्यों के प्रमाण आये हैं। अनेक शब्दो की ऐसी व्युत्पत्तियां भी उपस्थित की गयी हैं जिनसे उन शब्दो की आत्म-कथा लिखी जा सकती है। शब्दो मे परिवर्तन किस प्रकार होता रहा है, अर्थ विकास की दिशा कौनसी रही है, यह भी वृत्ति से स्पष्ट होता है। उदाहरणार्थ—भाष्यते भाषा, 'वण्यतेवाणी' श्रूयते श्रुति, विगतो धवो भर्ता अस्या विधवा' समुख लपन सलाप, सम्मुख कथन मङ्क्या, पण्डते जानाति इति पण्डित पण्डा बुद्धि सञ्जाता अस्येति वा, इत्यादि। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि शब्दो की व्युत्पत्तियाँ कितनी सार्थक हैं। अत स्वोपज्ञवृत्ति भाषा के अध्ययन के लिए बहुत आवश्यक है। शब्दों की निरुक्ति के साथ उनकी साधनिका भी अपना विशेष महत्व रखती है।

अभिधानचिन्तामणि और भाषा विज्ञान — भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हेमचन्द्र का 'अभिधानचिन्तामणि कोश' बड़ा मूल्यवान है। हेमचन्द्र के शब्दों पर प्राकृत, अपभ्र श एव अन्य देशी भाषाओ के शब्दो का पूर्णत प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक शब्द तो आधुनिक भाषाओ मे दिखलायी पडते हैं। कुछ शब्द भाषा-विज्ञान के समीकरण, विषमीकरण इत्यादि सिद्धान्तो से प्रभावित हैं।

उदाहरणार्थ — १. पोलिका (३।६२)—गुजराती मे पोणी, वृजभाषा मे पोनी, भोजपुरी मे पिउनी, हिन्दी—पिउनी.

२. मोद को लड्डुकश्च (शेष ३।६४)—हिन्दी—लड्डू, गुजराती—लाडू, मराठी तथा राजस्थानी—लाडू,

३. चोटी (३।३३६)—हिन्दी—चोटी, गुजराती—चोणी, राजस्थानी—चोडी या चुणिका,

४. समौ कन्दुकगेन्दुकौ (३।३५३)—हिन्दी—गेन्द, ब्रजभाषा—गेन्द, मराठी-गेन्द

५. हेरिको - गूढ़ पुरुष (३।३६७)—ब्रजभाषा मे—हेरहेरना, गुजराती—हेर

६. तरवारि (३।४४६)—ब्रजभाषा—तरवार, मराठी—तलवार, गुजराती—तरवार

७. जङ्गलो निर्जल· (४।१६)—ब्रजभाषा, हिन्दी तथा मराठी—जगल

८. चालनी तितउ (४।८४)—ब्रजभाषा तथा गुजराती—चालनी
हिन्दी—चलनी तथा छलनी, राजस्थानी—चालनी

इस प्रकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से, सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से, शब्द-ज्ञान की दृष्टि से हेमचन्द्र का 'अभिधानचिन्तामणि कोश' सर्वोत्कृष्ट एव सर्वाङ्गसुन्दर है। फिर भी अपने कोश की पूर्णता हेतु उन्होंने परिशिष्ट रूप दो और काण्ड लिखे। तदनन्तर देशी-नाम-माला लिखकर शब्द कोश की समाप्ति की

है।

अनेकार्थ सङ्ग्रह–आचार्य हेमचन्द्र ने अपना 'अभिधानचिन्तामणि कोश' "अनेकार्थ सङ्ग्रह" नामक परिशिष्ट कोश लिखकर पूरा किया है। अनेकार्थ सङ्ग्रह मे ७ काण्ड और १९३९ श्लोक हैं[१]। अनुक्रम निम्नानुसार है–(१) एकस्वर काण्ड श्लोक १७, (२) द्वि-स्वर काण्ड-श्लोक ६१७, (३) त्रि-स्वर काण्ड-श्लोक ८१४, (४) चतुस्वर काण्ड श्लोक ३५६, (५) पञ्चम् स्वर काण्ड-श्लोक ५७, (६) षट्स्वर काण्ड-श्लोक ७ तथा (७) परिशिष्ट काण्ड-श्लोक ६८।

प्रारम्भिक श्लोक मे ही तीर्थङ्करो को प्रणाम करते हुए उन्होने कहा है कि अब वे ६ अध्यायो म अनेकार्थ सङ्ग्रह की रचना करते हैं। जिसमे एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं। अनेकार्थक शब्दो के इस सङ्ग्रह मे प्रारम्भ एकाक्षर शब्दो से और अन्त षडक्षर शब्दो से होता है। शब्दो का क्रम आदिम अकारादि वर्णों तथा अन्तिम ककारादि व्यञ्जनो के अनुसार चलता है। 'अभिधान चिन्तामणि' मे एक ही अर्थ के अनेक पर्यायवाची शब्दो का सङ्ग्रह है किन्तु अनेकार्थ सङ्ग्रह मे एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं।

आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्रसूरि ने उनके नाम मे अनेकार्थ सङ्ग्रह पर वृत्ति लिखी। वृत्ति के द्वितीय अध्याय के अन्त मे स्वय महेन्द्रसूरि ही इस बात को स्वीकार करते है। इन कोशा से हेमचन्द्र ने सस्कृत कोशकार के रूप मे कीर्ति प्राप्त की। हेमचन्द्र के समय मे तथा उनके बाद भी उनके कोश प्रमाण माने जात थे। यह कई उद्धरणो से सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ–

'हेमचन्द्रश्च रुद्रश्चामरोऽय सनातन"

देशी नाममाला – जिस प्रकार 'शब्दानुशासन' मे हेमचन्द्र ने प्राकृत एव अपभ्र श का व्याकरण लिखकर शब्दानुशासन को पूर्णता प्रदान की उसी प्रकार कोश साहित्य मे भी उन्होने 'देशी नाममाला' लिखकर कोश साहित्य को पूर्णता दी। 'देशी नाममाला' के अन्त मे हेमचन्द्र ने स्पष्ट लिखा है कि उन्होने अपने व्याकरण के परिशिष्ट के रूप मे उक्त कोशो की रचना की। वृत्ति मे उन्होने लिखा है कि शब्दानुशासन के ८ वें अध्याय का परिशिष्ट देशी नाममाला कोश है। अत यह स्पष्ट है कि आचार्य हेमचन्द्र के मत से उक्त कोश उनके व्याकरण से सम्बन्धित है। देशी नाममाला' उनके प्राकृत व्याकरण का ही एक भाग है। 'काव्यानुशासन मे भी उन्होने शब्दानुशासन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे ही किया है जिसम व्याकरण तथा कोश दोनो का अन्तर्भाव हो जाता है।

१–एकादि पचस्वराव्ययाभिध परिशिष्ठ काण्ड –अनेकार्थ सङ्ग्रह।

देशी नाममाला मे ३९७८ देशी शब्दो का सङ्कलन किया गया है। इसके आधार पर आधुनिक भापाओ के शब्दो की साङ्गोपाङ्ग व्युत्पत्ति लिखी जा सकती है। वास्तव मे देशी नामो का सङ्ग्रह एव सुव्यवस्थित विभाजन बडा ही कठिन कार्य था। हेमचन्द्र स्वय कहते हैं कि देश्य शब्दो का सङ्ग्रह कठिन कार्य है। सङ्ग्रह करने पर भी उनका ग्रहण करना और भी कठिन है और इसीलिए हेमचन्द्र ने यह कार्य हाथो मे लिया।

हेमचन्द्र ने देशी शब्द स्त्रीलिङ्ग मे लिखकर उसे बोली जाने वाली भाषा से सम्बद्ध किया है। यह बोली जाने वाली भाषा सस्कृत अथवा प्राकृत व्याकरण के परे थी। इन देशी शब्दो की व्युत्पत्ति सस्कृत से नही हो सकती थी। अत इसे निरर्थक शब्दो का सङ्ग्रह कहकर डा० बूलर महोदय ने हेमचन्द्र की आलोचना की है, किन्तु डा० बूलर आलोचना करते समय हेमचन्द्र के मन्तव्य को समझ नही पाये। प्रो० मुरलीधर बेनर्जी ने स्वसम्पादित 'देशी नाममाला' के प्रस्तावना मे इस प्रश्न पर युक्ति सङ्गत विचार किया है तथा हेमचन्द्र के आलोचका को समुचित उत्तर दिया है। 'देशी नाममाला' में लिखित उदाहरणो के सम्बन्ध मे प्रो० पिशेल ने उन्हें मूर्खतापूर्ण बतलाया है तथा कहा कि उनसे कोई सयुक्तिक अर्थ नहीं निकल सकता। प्रो० बेनर्जी ने उत्तर देते हुए लिखा है कि यदि गाथाओं को शुद्ध रूप में पढा जाय तो उनसे ही सुन्दर अर्थ निकलता है। प्रत्येक रसिक उन गाथाओ को सुन्दर कविता समझकर पढता है[1]। फिर भी अनेक गाथाओ के सशोधन की अभी भी आवश्यकता है।

१– "These examples are either void of all sense or of an incredible stupidity It was most disgusting task to make out the sense of these examples, some of which have remained rather obscure to me"

(P. 8 *Introduction to Desinammala B S S*)

"If the illustrative gathas of Hemchandra which have appeared to Pischel as examples of 'extreme absurdity' or non sense are read correcting the errors made by the copyists in the manner explained above, they will yield very good sense. A few examples of such corrected readings are given below to make the point clear (P P. XLIII to LI)

After discussing this point in detail Prof Banerjee comes

देशी नाममाला (रयणावलि) – आचार्य हेमचन्द्र का देशी शब्दो का यह शब्द-कोश बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी है। प्राकृत-भाषा का यह शब्द-भाण्डार तीन प्रकार के शब्दो से युक्त है–तत्सम, तद्भव और देशी। तत्सम वे शब्द है, जिनकी ध्वनियाँ सस्कृत के समान ही रहती है, जिनमे किसी भी प्रकार का वर्ण-विकार उत्पन्न नही होता, जैसे नीर, कङ्कक, कण्ठ, ताल, तीर, देवी आदि। जिन शब्दो को सस्कृत ध्वनियो मे वर्ण लोप, वर्णागम, वर्ण-विकार, अथवा वर्ण-परिवर्तन के द्वारा ज्ञात कराया जाए, वे तद्भव कहलाते हैं; जैसे अग्र–अग्ग, इष्ट–इट्ठ, धर्म –धम्म, गज–गय, ध्यान–धाण, पश्चात्–पच्छा आदि। जिन प्राकृत शब्दो की व्युत्पत्ति–प्रकृति प्रत्यय विधान सम्भव न हो और जिसका अर्थ मात्र रूढि पर अवलम्बित हो तो इन शब्दो को देश्य या देशी कहते है, जैसे अगय–दैत्य, आकासिय–पर्याप्त, इराव–हस्ति, पलाविल–धनाढ्य, छासी–छाश, चोढ–बिल्व। देशी नाममाला मे जिन शब्दो का सङ्कलन किया गया है उनका स्वरूप निर्धारण स्वय आचार्य हेम ने किया है।

जो शब्द न तो व्याकरण से व्युत्पन्न हैं और न संस्कृत कोशो मे निबद्ध है तथा लक्षणा-शक्ति के द्वारा भी जिनका अर्थ प्रसिद्ध नही है, ऐसे शब्दो का सङ्कलन इस कोश मे करने की प्रतिज्ञा आचार्य हेम ने की है। "देस विसेस पसिद्धीह भण्णभाणा अणन्तया हुन्ति। तम्हा अणाइपाइ अपयट्ट भासा विसेसओ देशी" देशी शब्दो से यहाँ महाराष्ट्र, विदर्भ, आभीर आदि प्रदेशो मे प्रचलित शब्दो का सङ्कलन भी नही समझना चाहिये। देश विशेष मे प्रचलित शब्द अनन्त हैं। अतः उनका सङ्कलन सम्भव नही है। अनादि काल से प्रचलित प्राकृत भाषा ही देशी है। कोषकार का 'देशी' से अभिप्राय स्पष्टतः उन शब्दो से हैं जो प्राकृत साहित्य की भाषा और उसकी बोलियो मे प्रचलित हैं, तथापि न तो व्याकरणो से या अलङ्कार की रीति से सिद्ध होते और न सस्कृत के

---

to the conclusion, "As the gathas when read in this way give a good sense, they can no longer be regarded as examples of 'incredible stupidity'. They will be appreciated, it is hoped by every lover of poetry as a remarkable feat of ingenuity worthy of Hemchandra and far beyond the capacity of his disciples to whom Pischel is inclined to ascribe them" (P LI)

कोषो मे पाये जाते हैं। इस महान् कार्य मे उद्यत होने की प्रेरणा उन्हे कहाँ से मिली—यह हेमचन्द्र ने दूसरी गाथा और उसकी स्वोपज्ञ टीका मे स्पष्टीकरण कर दिया है। जब उन्होंने उपलब्ध निःशेष देशी शब्दो का परिशीलन किया, तब उन्हे ज्ञात हुआ कि कोई शब्द है तो साहित्य का, किन्तु उसका प्रयोग करते-करते कुछ और ही अर्थ हो रहा है, किसी शब्द मे वर्णों का अनुक्रम निश्चित नही है, किसी के प्राचीन और वर्तमान देश-प्रचलित अर्थ मे विरोध है तथा कही गतानुगति से कुछ का कुछ अर्थ होने लगा है। तब आचार्य को यह आकुलता उत्पन्न हुई कि अरे, ऐसे अपभ्रष्ट शब्दो के कीचड मे फँसे हुए लोगो का किस प्रकार उद्धार किया जाय। बस इसी कुतूहलवश वे इस देशी शब्द सङ्ग्रह के कार्य मे प्रवृत्त हो गये। हेमचन्द्र ने उपर्युक्त प्रतिज्ञा-वाक्य मे बताया है कि जो व्याकरण से सिद्ध न हो, वे देशी शब्द हैं, और इस कोश मे इस प्रकार के देशी शब्दो के सङ्कलन की प्रतिज्ञा की गयी है। पर इसमे आधे से अधिक शब्द ऐसे हैं, जिनकी व्युत्पत्तियाँ व्याकरण के नियमो के आधार पर सिद्ध हो जाती हैं, जैसे अभयणिग्गमो—अमृतानिर्गम। हेमचन्द्र ने सस्कृत शब्द कोश मे इस शब्द के न मिलने के कारण ही इसे देशी शब्दो मे स्थान दिया है। इसी प्रकार डीला, हलुअ, अइहारा, थेरो शब्द देशी नाममाला मे देशी माने गये है। और प्राकृत व्याकरण मे सस्कृत निष्पन्न।

इस कोश मे ४०५८ शब्द सकलित हैं—इसमे तत्सम शब्द १८०, गर्भित तद्भव—१८५०, सशययुक्त तद्भव—५२८, अव्युत्पादित प्राकृत शब्द—१५००, हैं।

वर्णक्रम से लिखे गये इस कोश मे ८ अध्याय हैं और कुल ७८३ गाथायें हैं। उदाहरण के रूप मे इसमे ऐसी अनेक गाथायें उद्धृत हैं जिनमे मूल मे प्रयुक्त शब्दो को उपस्थित किया गया है। इन गाथाओ का साहित्यिक मूल्य भी कम नही है। कितनी ही गाथाओ मे विरहणियो की चित्तवृत्ति का सुन्दर विश्लेषण किया गया है। उदाहरणो की गाथाओ का रचयिता कौन है, यह विवादास्पद है। शैली और शब्दो के उदाहरणो को देखने से ज्ञात होता है कि इनके रचयिता भी आचार्य हेम होने चाहिये। शब्द-विवेचन के सम्बन्ध मे अभिमान चिह्न, अवन्ति, सुन्दरी, गोपाल, देवराज, द्रोण, धनपाल, पाठोद्‌खल, पादलिप्ताचार्य, राहुलक, शाम्ब, शीलङ्क और सातवाहन इन १२ शास्त्रकारो तथा सारतर देशी और अभिमान चिह्न इन दो देशी शब्दो के मूल पाठो के उल्लेख मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि देशी शब्दो के अनेक कोश ग्रन्थकार के सम्मुख थे।

कोश मे सङ्ग्रहीत नामो की संख्या प्रो० बेनर्जी के अनुसार ३९७८ है जिनमे यथार्थ देशी वे केवल १५०० मानते है, शेष मे १०० तत्सम, १८५० तद्भव और ५२८ सशयात्मक तद्भव शब्द बतलाते हैं। इस कोश की निम्नाकित विशेषताएँ है—

१– सुन्दर साहित्यिक उदाहरणो का सङ्कलन किया गया है।

२– सङ्कलित शब्दो का आधुनिक भारतीय भाषाओ के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

३– ऐसे शब्दो का सङ्कलन किया है, जो अन्यत्र उपलब्ध नही है।

४– ऐसे शब्द सङ्कलित है, जिनके आधार पर उस काल के रहन-सहन और रीति-रिवाजो का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

५– परिवर्तित अर्थवाले ऐसे शब्दो का सङ्कलन किया गया है, जो सास्कृतिक इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी है।

साहित्यिक सौन्दर्य– उदाहृत गाथाओ से अनेक गाथाओ का सरसता, भावतरलता एवं कलागत सौन्दर्य की दृष्टि से गाथा-सप्तशती के समान मूल्य है। इनमे शृंगार, रतिभावना, नख-शिख चित्रण, धनिको के विलासभाव, रणभूमि की वीरता, सयोग, वियोग, कृपणो की कृपणता, प्रकृति के विभिन्न रूप, दृश्य, नारी की मसृण और मासल भावनाएँ एवं नाना प्रकार के रमणीय दृश्य अङ्कित हैं। विश्व की किसी भी भाषा के कोश मे इस प्रकार के सरस पद्य उदाहरण के रूप मे नही मिलते। कोशगत शब्दो का अर्थ उदाहरण देकर अवगत करा देना हेमचन्द्र की विलक्षण प्रतिभा का ही कार्य है।

उदाहरणार्थ– आयावलो य वालयवम्मि आवालय च जलणियडे।
आडोविय च आरोसियम्मि आराइय गहिए॥ १–७०

आयवली–बालआतप, आलालय–जलनिकट, आडोविय–आरोपितम् आराइयं–ग्रहितम् अर्थ मे प्रयुक्त है, इन शब्दो का यथार्थ प्रयोग अवगत करने के लिए उदाहरण मे निम्नाकित गाथा उपस्थित की गयी है।

आयावले पसरिए कि आडोवसि रहंड ! णियदइयं।
आराइय विसवन्दो आवालठिय पसाएसु॥ ७० प्रथम वर्ग

हे घत्रवाल ! सूर्य के बाल आतप के फैल जाने पर, उदय होने पर, तुम अपनी स्त्री के ऊपर क्यो क्रोध करते हो ? तुम कमलनाल लेकर जल के निकट बैठी हुई अपनी भार्या को प्रसन्न करो। इस प्रकार ७५ प्रतिशत शृंगारात्मक गाथाएँ हैं। ६५ गाथाएँ कुमारपाल की प्रशसा विषयक हैं तथा शेप अन्य हैं।

आधुनिक भाषा-शब्दों से साम्य

देशी नाममाला का महत्व भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारत की प्रान्तीय भाषाओ पर देशी नाममाला से पर्याप्त प्रकाश पडता है। कोश मे ऐसे अनेक शब्द सङ्ग्रहीत हैं जिनसे मराठी, कन्नड, गुजराती, अवधी, व्रजभाषा और भोजपुरी के शब्दो की व्युत्पत्ति सिध्द की जा सकती है। उदाहरणार्थ—अम्मा (१।५) हिन्दी की विभिन्न ग्रामीण बोलियो मे यह इसी अर्थ मे प्रयुक्त है। चुल्लीह उल्लि-उद्दाणा (१।८७) भोजपुरी, राजस्थानी, व्रजभाषा और अवधी मे चूल्हा, गुजराती म चूलो, बुन्देली मे चूलो और खडी बोली मे चूल्हा, ओड्ढणं उत्तरीयम् (१।१५५) राजस्थानी-औढनी व्रजभाषा, अवधी, गुजराती-ओढनी। कट्टारी क्षुरिका-(२।४) हिन्दी की सभी ग्रामीण बोलियो मे कटारी, सस्कृत कर्तरी से सम्बन्ध किया जा सकता है। कन्दोमूल-साकम् (२।१) हिन्दी, बगला तथा मैथिली मे कन्द, सस्कृत में भी प्रयुक्त। खड्डा (खनि)(२।६६) हिन्दी मे खड्डा। चाउला (तण्डुला) (३।८) हिन्दी मे चावल। ढँकनी पिधानिका (४।१४) हिन्दी मे ढकनी।

इसी प्रकार सस्कृति सूचक शब्द भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। उदाहरणार्थ—केश-रचना, बम्बरी (६।९०)—सामान्य केश-रचना,

फुण्टा (६।८४)-रुखे केश बाँधने के लिए,
ओलागिर्जं (१।१७२)-जूडा बाँधने के लिए,
कुम्भी (२।३४) सुन्दर ढग से सजाये गये केश विन्यास,
ढुमन्तओ (५।४७) रुखे बाल लपेटना,
अणराहो (१।२४) सिर पर रगीन कपडा लपेटना,
मीरगी (५।३१) अवगुण्ठन,
वसन्तोत्सव (फग्गू)६।८२, आलुंका (१।५३) लुकाछिपी का खेल,
अम्बोच्ची-पुष्पलावी(१।६) पुष्पचयन करने वाली मालिन
अम्बसमी (१।३७)बासा भोजन, आमलय(१।६७) अलङ्करण करने का घर
उआली (१।९०) सोने के बने कर्णाभूषण, उल्लरय (१।१९०) कौडियो के आभूषण,
मयरेद्दआ (१।७१) शराब वितरित करने का बर्तन, कोगिनी (४।१२) पानदान,
वण्णय (७।३७) चन्दनचूर्ण।

इस प्रकार यह प्राकृत-कोश साहित्य और सस्कृति विषयक शोध और

अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। देशी शब्दो के सम्बन्ध की सीमाओ का कोशकार ने बडी सावधानी से पालन किया है, जिसका कुछ अनुमान हमे उनकी स्वय बनायी हुई टीका के अवलोकन से होता है। यथा– आरम्भ मे ही अज्ज शब्द ग्रहण किया है उसका प्रयोग 'जिन' के अर्थ मे बतलाया है। टीका मे प्रश्न उठाया है कि अज्ज तो स्वामी का पर्यायवाची आर्य शब्द से सिद्ध होता। इसका उत्तर उन्होने यह दिया है कि उसे यहा ग्रन्थ के आदि मे मगलवाची समझ कर ग्रहण कर लिया है। १८ वी गाथा मे अविणयवर शब्द जार के अर्थ मे ग्रहण किया गया है। टीका मे कहा है कि इस शब्द की व्युत्पत्ति अविनय वर से होते हुए भी सस्कृत मे उसका यह अर्थ प्रसिद्ध नही है, और इसलिए उसे यहां देशी माना गया है। ६७ वीं गाथा मे आरणाल का अर्थ कमल बतलाया गया है, टीका मे कहा गया है कि उसका वाचिक अर्थ यहां इसलिये नही ग्रहण किया गया क्योकि वह सस्कृतोद्भव है। 'आसियअ' लोहे के घडे के अर्थ मे बतलाकर टीका मे कहा है कि कुछ लोग इसे अयस् मे उत्पन्न आयसिक का अपभ्रश रूप भी मानते है। उनकी सस्कृत टीका मे इस प्रकार से शब्दो के स्पष्टीकरण व विवेचन के अतिरिक्त गाथाओ के द्वारा देशी शब्दो के प्रयोग के उदाहरण भी दिये हैं। ऐसी गाथायें ६३४ पायी जाती हैं।

पूर्व ग्रन्थो के समान इस ग्रन्थ मे भी हेमचन्द्र ने पूर्व लेखको का समुचित उपयोग किया है। देशी नाममाला मे उन्होंने २० ग्रन्थ-कर्ताओ का एव दो कोशो का उल्लेख किया है। इन ग्रन्थ-कर्ताओ मे एक नाम अवन्ति सुन्दरी का है। सम्भवत यह पण्डित राजशेखर की पत्नी होगी जिन्हे राजशेखर ने अपनी 'काव्य-मीमासा' मे एक अधिकारिणी के रूप मे दिखाया है। हेमचन्द्र ने देशी नाममाला मे धनपाल, देवराज, गोपाल, द्रोण, अभिमान-चिन्ह्न, पादलिप्ताचार्य, शीलाङ्क नामक कोशकारो का उल्लेख किया है। धनपाल की 'पाइयलच्छी नाममाला' उपलब्ध है।

४– निघण्टु– अभिधान चिन्तामणि कोश, अनेकार्थ सग्रह, देशी नाममाला सम्पादन करने के पश्चात् अन्त मे आचार्य हेमचन्द्र ने 'निघण्टुशेष' नामक वनस्पति कोश की रचना की। यह उनके प्रारम्भिक श्लोक से विदित होता है[१]। यह वनौषधि का एक कोश है। निघण्टु मे भी ६ काण्ड हैं तथा ३९६ श्लोक हैं। इनमे सभी वनस्पतियो के नाम दिये गये हैं। इसके वृक्ष, गुल्म, लता, शाक, तृण और धान्य ६ काण्ड है। वैद्यक-शास्त्र के लिए भी इस कोश की अत्यधिक उपयोगिता है। काण्ड विवरण निम्न अनुसार है–

---

१ —निघण्टुशेष–प्रारम्भिक श्लोक

निघण्टु शेष : १. वृक्षकाण्ड श्लोक १८६०–२०७०,
२ गुल्म ,, ,, २०७१–२१७५,
३. लता ,, ,, २१७६–२२२०,
४. शाक ,, ,, २२२१–२२५२,
५. तृण ,, ,, २२५३–२२७०,
६. धान्य ,, ,, २२७१–२२८५,

इस कोश पर अभी तक कोई वृत्ति प्राप्त नहीं होती है। इस कोश से हेमचन्द्र का शब्द-शास्त्र का कार्य सम्पूर्ण होता है। पञ्चाङ्ग सहित सिद्ध हेम शब्दानुशासन (उनके वृत्तियों सहित) तथा वृत्ति सहित तीनों कोश एवं 'निघण्टु शेष' यह सब मिलाकर हेमचन्द्र का शब्दानुशासन पूर्ण होता है। इस प्रकार हेमचन्द्र ने गुजरात के ज्ञान-पिपासु अध्ययनार्थी के लिए—और इस माध्यम से भारत के ज्ञानेच्छु पाठकों के लिये, शब्द-शास्त्र के अध्ययनार्थ सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की। विशेष ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पाठकों के लिए उन्होंने विस्तृत जानकारी से युक्त वृत्तियाँ लिखीं। अध्ययन के लिए हेमचन्द्र के ग्रन्थों का महत्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा। इस प्रकार चालुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह की इच्छा उसके वैभव और उच्च स्तर के अनुसार कार्यरूप में परिणत हुई और साहित्य की प्रत्येक शाखा में सिद्धराज जयसिंह के आश्रय में गुजरात ने सर्वोत्कृष्टता प्राप्त की। हम कह सकते हैं कि सिद्धराज जयसिंह ने न केवल आचार्य हेमचन्द्र के रूप में एक जीवन्त विश्वविद्यालय खड़ा किया अपितु अध्ययन के ज्ञानपूर्ण ग्रन्थों का समूह भी प्रस्तुत किया। एक गुजराती कवि ने 'हेम' शब्द पर कोटि लिखते हुए ठीक ही कहा है।

'हेम प्रदीप प्रगटावी सरस्वतीनो सार्थकय कौ थु
निज नामनु सिद्धराजे' अर्थात् सिद्धराज ने सरस्वती का हेम प्रदीप जलाकर (सुवर्ण दीपक अथवा हेमचन्द्र) अपना 'सिद्ध'नाम सार्थक कर दिया[1]।

—o—

१— रानवो देवी काव्य—सं० रामनारायण पाठक।

अध्याय : ६

दार्शनिक एवं धार्मिक-ग्रन्थ

अ. भारतीय दर्शन में जैन-दर्शन का स्थान— ईसा की पांचवी-छठी शताब्दी पूर्व वैदिक कर्म-काण्ड के विरोध में एक महान् क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, जिसके नेता थे *महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध। धर्म के क्षेत्र मे यह वैमनस्य* साहित्य के क्षेत्र मे अत्यन्त शुभ सिद्ध हुआ। भारतीय षड् दर्शन की अभ्युन्नति मे भी इस क्रान्ति का हाथ रहा है। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास मे एव भारतीय दर्शन मे जैन-धर्म एवं दर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है। उस समय पारस्परिक स्पर्धा के कारण साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक जीवन मे भी अद्भुत, उन्नति हुई। भारत के धार्मिक इतिहास मे जैन-धर्म का प्रमुख स्थान है। भारतीय साहित्य को प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रगति प्रदान करने मे जैन-धर्मावलम्बी आचार्यों का प्रमुख योग रहा है। अपने आरम्भिक काल मे जैन-धर्म को विरोध का सामना करना पडा किन्तु उत्तरोत्तर उसमे समन्वय एव सामञ्जस्य की भावना का विकास हुआ और आज भारत का सारा जन-मानस जैन-धर्म को परमादर की दृष्टि से देखता है।

भारत के धार्मिक इतिहास मे प्रगतिशील धर्मों मे जैन-धर्म की गणना होती है। अत इस देश की सस्कृति के निर्माण मे जैन-दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्यत जैन-धर्म और हिन्दू-धर्म मे कोई विशेष अन्तर नही है। जैन-धर्म केवल वैदिक कर्म-काण्ड के प्रतिबन्धो एव उसके हिंसा सम्बन्धी विधानो को स्वीकार नही करता है। वेदो मे वर्णित अहिंसा और तप को ही जैनो ने अपनाया है। साधना और वैराग्य की भावना उन्होने वेदान्त से ग्रहण की। श्रमण पर-

म्परा का जन्मदाता जैन-धर्म है। सत्यतः दो चिन्तन धारायें बहती हैं। पहली परम्परा-मूलक ज्ञान के सरक्षित स्वरूप के अनुगमन पर जोर देती है। वह ब्राह्मण-वादी परम्परा है। दूसरी चिन्तनधारा प्रगति-शील है, ज्ञान को विकास-शील मानती है, इसमे यज्ञ के स्थान पर आचरण को महत्व है, देवयजन के ऊपर मनुष्यत्व को महत्व है, निः श्रेयस के लिये मानवीय पुरुषार्थ का महत्व है, यह श्रामण्य परम्परा कहलाती है। जैन-धर्म का त्रिरत्न—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र हिन्दू-धर्म के भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग का ही रूपान्तर है। इस प्रकार जैन-धर्म मूलतः हिन्दू-धर्म, विशेषत. वैष्णव सम्प्रदाय के, अधिक पास है। दार्शनिक दृष्टिकोण मे भी ब्राह्मणो के सांख्य और योग-दर्शनो के निरीश्वरवाद से जैन-धर्म की पर्याप्त समानता है। सृष्टि और ब्रह्म की पृथक् सत्ता का जितना समर्थक कपिल का सांख्य है, उतना ही जैन-दर्शन भी। वेदान्त का मुमुक्षु या जीवन्मुक्त ही जैन-दर्शन का सिद्धजीव एव अर्हत् है। दोनो दर्शन आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते हैं, और ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए आत्मा के विकास पर जोर देते हैं। आत्मा और मोक्ष के स्वरूप सम्बन्ध दृष्टि में रखकर विचार किया जाय तो जैन-दर्शन उतना ही आस्तिक ठहरता है जितना कि ब्राह्मण दर्शन। जैन-दर्शन आत्मा का चरमोद्देश्य साधना एव तपश्चर्या को बताता है, वेदान्त में भी जीवन्मुक्त के लिए ब्रह्म तक पहुँचना अनिवार्य बताया गया है।

जैन-परम्परा अत्यन्त विशाल एव विस्तृत है। जैन-मत का अविर्भाव वैदिक मत के बाद मे हुआ। दिगम्बर श्वेताम्बरो का आविर्भाव ३०० ई० पू० मे हो चुका था। भद्र, साहूँ आदि दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रवर्तक एव स्थूलभद्र आदि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। स्थूलभद्र का परलोकवास २५२ ई० पू० मे हो चुका था। मध्ययुगीन न्याय-शास्त्र के इतिहास मे जैनो का एक विशेष स्थान है। अकलङक का 'न्याय वार्तिक' स्वामी विद्यानन्द का 'श्लोक वार्तिक', समन्तभद्र की 'आप्त मीमासा', हरिभद्रसूरि के 'षड्दर्शन समुच्चय' मल्लिसेन की 'स्याद्वाद मञ्जरी' इत्यादि ग्रन्थो मे नैयायिक दृष्टि से जैन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। जैन-धर्म की सबसे बडी देन 'स्यादवाद वाद' है। उसमे सविकल्प मानवीय ज्ञान की अल्पता की अनुभूति कूट-कूट कर भरी है। वस्तुतः वीतरागता, सम्पूर्ण वीतरागता जैन-धर्म का लक्ष्य है।

जैन-धर्म की अनेक शाखायें और उप-शाखायें हैं। जैन-धर्म की परम्परा भारत मे आज भी जीवित है। इसका एक मात्र कारण यह है कि भारतीय धर्म एवं दर्शन मे जैन-धर्म का एक विशिष्ट स्थान है। समन्वयवाद, जिसे अनेकान्त-

वाद से पुकारा जाता है—का साक्षात् दर्शन प्रदान कर जैन-दर्शन ने भारतीय दर्शन में अपना अन्यतम स्थान बना लिया है। श्रामण्य विचार-परम्परा का जन्मदाता होने के कारण और श्रमण संस्कृति का प्रवर्तक होने के कारण आज जैन-धर्म श्रमण प्रधान—जिसमे आचरण को प्रमुखता दी गयी है—बन गया है।

हेमचन्द्र के दार्शनिक ग्रन्थ – प्रमाण मीमासा

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी सम्पूर्ण साहित्य सर्जना एक विशेष हेतु की पूर्ति अर्थात् जैन-धर्म के प्रचार हेतु की है। अतः उनके प्रत्येक ग्रन्थ मे—फिर वह काव्य हो या स्तुति हो या पुराण हो, जैन धर्म एव दर्शन के उच्च तत्व रत्न अन्तर्निहित हैं। उनकी 'वीतराग–स्तुति' अथवा 'द्वात्रिंशिका' काव्य, सभी मे दार्शनिक तत्व गुथे है। फिर भी विशुद्ध दार्शनिक कोटि मे गणनीय उनका एक मात्र अपूर्ण ग्रन्थ है—और वह है उनका 'प्रमाण मीमासा' नामक ग्रन्थ।

आचार्य हेमचन्द्र के दर्शन ग्रन्थ—'प्रमाण मीमासा' मे यद्यपि उनकी मूल स्थापनाएँ विशिष्ट नही है फिर भी जैन प्रमाण-शास्त्र को सुदृढ करने में, अकाट्य तर्कों पर सुप्रतिष्ठित करने मे'प्रमाण मीमासा'का विशिष्ट स्थान है। उनके द्वारा रचित 'प्रमाणमीमासा' प्रमाण प्रमेय की साङ्गोपाङ्ग जानकारी प्रदान करने में सक्षम है। अनेकान्तवाद, प्रमाण, पारमार्थिक प्रत्यक्ष की तात्विकता इन्द्रिय-ज्ञान का व्यापार-क्रम, परोक्ष के प्रकार, अनुमानावयवों की प्रायोगिक व्यवस्था, निग्रह्-स्थान, जय-पराजय व्यवस्था, सर्वज्ञत्व का समर्थन आदि मूल विषयो पर इस लघु ग्रन्थ मे विचार किया गया है।

कलि-काल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि की अन्तिम कृति 'प्रमाण मीमासा' का प्रज्ञाचक्षु प० श्री सुखलाल जी द्वारा सम्पादन किया गया तथा सिंधी जैन ग्रन्थमाला के द्वारा ई० स० १९३९ मे प्रकाशन हुआ। 'प्रमाण मीमासा' सूत्र-शैली का ग्रन्थ है। यह अक्षपाद गौतम के सूत्रो की तरह पाच अध्यायो मे विभक्त है और प्रत्येक अध्याय कणाद या अक्षपाद के अध्याय के समान दो आन्हिको मे परिसमाप्त है। इसमें गौतम के प्रसिद्ध न्यायसूत्रो के अध्याय आन्हिक का ही विभाग रखा गया है, जो हेमचन्द्र के पूर्व श्री अकलंक ने जैन वाङ्मय मे शुरू किया था। दुर्भाग्य की बात है कि यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से उपलब्ध नही है। इस समय तक सूत्र १०० ही उपलब्ध हैं तथा उतने ही सूत्रों की वृत्ति भी है। अंतिम उपलब्ध २:१:३५ की वृत्ति पूर्ण होने के बाद एक नये सूत्र का उत्थान उन्होंने शुरू किया और उस अधूरे उत्थान मे ही खण्डित लभ्यग्रन्थ पूर्ण हो जाता है। उपलब्ध ग्रन्थ दो अध्याय तीन आन्हिक मात्र है जो स्वोपज्ञवृत्ति

सहित ही है। सम्भवतः आचार्य अपनी वृद्धावस्था मे इस ग्रन्थ को पूर्ण नहीं कर सके, अथवा सम्भव है कि शेष भाग काल कवलित हो गया हो। इस ग्रन्थ मे हेमचन्द्र की भाषा वाचस्पति मिश्र की तरह नपी-तुली, शब्दाडम्बर शून्य, सहज, सरल है ; उसमे न अति सक्षिप्तता है और न अधिक विस्तार।

तुलनात्मक दृष्टि से दर्शन-शास्त्र की परिभाषा का अध्ययन करने वालो के लिए 'प्रमाण मीमासा' महत्वपूर्ण है। भारतीय दर्शन विद्या के ब्राह्मण, बौद्ध और जैन इन तीनो मतो की तात्विक परिभाषाओ मे और लाक्षणिक व्याख्याओ मे किस प्रकार क्रमश विकसन, वर्धन और परिवर्तन होता गया यह ज्ञान इस ग्रन्थ के अध्ययन से हो जाता है। सूत्र तथा उसकी वृत्ति की तुलना मे अनेक जैन, बौद्ध और वैदिक ग्रन्थो का उपयोग उन्होंने किया है। 'प्रमाण मीमासा' का उद्देश्य केवल प्रमाणो का चर्चा करना नही है। अपितु प्रमाणनय और सोपाय बन्ध मोक्ष इत्यादि परम पुरुषार्थोपयोगी विषयों की चर्चा करना है। हेमचन्द्र ने 'स्वप्रकाशत्व' के स्थापन और ऐकान्तिक 'परप्रकाशत्व' के खण्डन म बौद्ध, प्रभाकर, वेदान्त, आदि सभी स्वप्रकाशवादियो की युक्तियों का सग्रहात्मक उपयोग किया है। श्वेताम्बर आचार्यो मे भी हेमचन्द्र की खास विशेषता यह है कि उन्होंने ग्रहीत ग्राही और ग्रहीष्यमाणग्राही दोनो का समत्व दिखाकर सभी धारावाही ज्ञानो मे प्रामाण्य का समर्थन किया है और यह समर्थन करते हुए सम्प्रदाय निरपेक्ष तार्किकता का परिचय कराया है। यद्यपि वे जिनभद्र, हरिभद्र देवसूरि तीनो के अनुगामी हैं तथापि धेधारणा के लक्षण सूत्र मे दिगम्बराचार्य अकलङ्क, विद्यानन्द, आदि का शब्दश अनुसरण करते हैं। जिनभद्र के मन्तव्य का खण्डन न करके, हेमचन्द्र समन्वय करते हैं। अनुमान-निरूपण मे भी हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती तार्किको के अनुसार वैदिक परम्परा सम्मत त्रिविध अनुमान प्रणाली का खण्डन नही किया किन्तु अनुमान प्रणाली को व्यापक बना दिया है जिससे असङ्गति दूर हो गयी।

'प्रमाण मीमासा' का आभ्यन्तर स्वरूप– 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' के अनुसार आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने ग्रन्थ का आरम्भ 'अथ प्रमाण मीमासा' १।१।१ सूत्र मे किया है और फिर उपोद्घात के विस्तार मे न जाते हुए एकदम दूसरे ही सूत्र मे प्रमाण की लघुतम एवं सारतम परिभाषा प्रस्तुत की है। 'सम्यगर्थ-निर्णय प्रमाणम्' १।१।२ उनका प्रमाण विभाग विशेष महत्व रखता है। उनके अनुसार प्रमाण दो हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष। आचार्य का यह प्रमाण विभाग दो दृष्टियो से अन्य परम्पराओ की अपेक्षा विशेष महत्व रखता है। एक तो एक

विभाग में आने वाले प्रमाण दूसरे विभाग से असङ्कीर्ण रूप से अलग हो जाते है। दूसरी बात यह है कि सभी प्रमाण बिना खींच-तान के इस विभाग मे समा जाते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव को सामने रखकर आचार्य जी ने प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो मुख्य विभाग किये जो एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं। इसमे न तो चार्वाक की तरह परोक्षानुभव का अपलाप है, न बौद्ध-दर्शन-सम्मत प्रत्यक्ष अनुमान द्वैविध्य की तरह आगम आदि इतर प्रमाण व्यापारो का अपलाप है, न त्रिविध प्रमाणवादी साख्य तथा प्राचीन वैशेषिक, न चतुर्विध प्रमाणवादी नैयायिक, पञ्चविध प्रमाणवादी प्रभाकर, षड्विध प्रमाणवादी मीमासक, सप्त-विध या अष्टविध प्रमाणवादी पौराणिक आदि की तरह अपनी प्रमाण संख्या का अपलाप है। चाहे जितने प्रमाण हो, वे या तो प्रत्यक्ष होगे या परोक्ष। इस प्रकार प्रमाण शक्ति की मर्यादा के विषय मे जैन दर्शन का या कहें हेमचन्द्र इन्द्रियाधिपत्य तथा अनिन्द्रियाधिपत्य दोनो स्वीकार करके उभयाधिपत्य का ही समर्थन करते हैं।

प्रत्यक्ष का तात्विक विवेचन करते हुए आचार्य हेमचन्द्र की मत है कि इन्द्रियाँ कितनी ही पटु क्यो न हो, पर वे अन्ततः है परतन्त्र ही! परतन्त्र-जनित ज्ञान की अपेक्षा स्वतत्र-जनित ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानना न्याय सङ्गत है। स्वतन्त्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष हैं। आचार्य के ये विचार तत्व-चिंतन मे मौलिक हैं। ऐसा होते हुए भी लोक-सिद्ध प्रत्यक्ष को साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहकर उन्होंने अनेकान्त दृष्टि का उपयोग किया है।

'प्रमाण मीमासा' मे सन्निपातरूप प्राथमिक इन्द्रिय व्यापार से लेकर अन्तिम इन्द्रिय व्यापार तक का विश्लेषण एवं स्पष्टता के साथ अनुभव सिद्ध अतिविस्तृत वर्णन है। यह वर्णन आधुनिक मानस-शास्त्र तथा इन्द्रिय व्यापार-शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन करने वालो के लिए बहुत महत्व का है।

आचार्य ने सभी प्रकार के ज्ञानो को प्रमाण कोटि मे अन्तर्भुक्त किया जिनके बल पर वास्तविक व्यवहार चलता है। सभी प्रमाण-प्रकारो को उन्होंने परोक्ष के अन्तर्गत लेकर अपनी समन्वय दृष्टि का परिचय कराया है। वे इन्द्रियो का स्वतन्त्र सामर्थ्य मानते हैं। उसी प्रकार अनिन्द्रिय अर्थात् मन और आत्मा दोनों का अलग-अलग भी स्वतन्त्र सामर्थ्य मानते हैं। वे सभी आत्माओ का स्वतन्त्र प्रमाण सामर्थ्य मानते है प्रमाण सामर्थ्य मानते है। इसके विपरीत न्याय-दर्शन के अनुसार केवल ईश्वर मात्र का प्रमाण सामर्थ्य इष्ट है, किन्तु हेमचन्द्र की दृष्टि से अनिन्द्रिय का भी प्रमाण सामर्थ्य इष्ट है, इन्द्रियो का प्रमाण-साम-

मायें भी मान्य है। धर्मा-धर्म के विषय मे केवल आगम नहीं, मन, आत्मा दोनो का प्रमाण-सामर्थ्य इष्ट हैं।

जैन तार्किको के अनुसार 'प्रमाण-मीमासा' मे भी हेतु का एकमात्र अन्यथा-नुपपत्ति रूप निश्चित किया गया जो उसका निर्दोष लक्षण भी हो सके और सब मतों के समन्वय के साथ जो सर्वमान्य भी हो। हेतु के ऐसे एकमात्र तात्विक रूप के निश्चित करने का तथा उसके द्वारा ३,४,५,६, पूर्व प्रसिद्ध हेतु रूपा के यथा सम्भव स्वीकार करने का श्रेय जैन तार्किका के साथ आचार्य हेम-चन्द्र की ही है। परार्थानुमान के अवयवो की सख्या का निर्णय श्रोता की योग्यता के आधार पर ही किया गया है। अवयव प्रयोग की यह व्यवस्था वस्तुत सर्व सङ्ग्राहिणी है। अन्य परम्पराओ मे शायद ही यह देखी जाती है।

आचार्य हेमचन्द के समय सम्भवतः तत्व-चिन्तन मे जल्प, वितण्डा, कथा का चलाना प्रतिष्ठा समझा जाने लगा था, जो छल जाति आदि के असत्य दाव-पेचों पर ही निर्भर था। हेमचन्द्र ने अपने तर्क-शास्त्र मे कथा का एक वादात्मक रुप ही स्थिर किया, जिसमे छल आदि किसी भी कपट-व्यवहार का प्रयोग वर्ज्य है। "तत्वसरक्षार्थ प्रश्निकादि समक्ष साधन दूषण वदन वाद" (२।१।२०), कथा वही जो एकमात्र तत्व-जिज्ञासा की दृष्टि से चलायी जाती है। इस प्रकार एक मात्र वाद कथा को ही प्रतिष्ठित बनाने का मार्ग जैन तार्किका ने प्रशस्त किया है। वाद के साथ ही हेमचन्द्राचाय ने अपनी 'प्रमाण मीमासा' मे जयपरा-जय व्यवस्था का नया निर्माण किया है। यह नया निर्माण सत्य और अहिंसा दोनो तत्वो पर प्रतिष्ठित हुआ है। यह जय-पराजय की पूर्व व्यवस्था मे नही था।

प्रमेय और प्रमता के स्वरूप—जैन दर्शन के अनुसार वस्तुमात्र परिणामी नित्य है। जब अनुभव न केवल नित्यता का है और न केवल अनित्यता का तब किसी एव अश को मानकर दूसरे अश का बलात् मेल बैठाने की अपेक्षा दोनो अशो को तुल्य रूप मे—तुल्य सत्यरूप मे स्वीकार करना ही न्याय सगत है। द्रव्य-पर्याय की व्यापक दृष्टि का यह विकास जैन-परम्परा की ही देन है। प्रमाण मीमासा ने इसी को स्वीकार किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने आत्मा का स्वरुप ऐसा माना जिसम एकसी परमात्म शक्ति भी रहे और जिसमे दोष,वासना,आदि के निवारण द्वारा जीवन शुद्धि का वास्तविक उत्तरदायित्व भी रहे। इस प्रकार हेमचन्द्र के आत्मविषयक चिन्तन मे वास्तविक परमात्म-शक्ति या ईश्वर भाव का तुल्यरूप से स्थान है। दोषा के निवाणार्थ तथा सहजशुद्धि के आविर्भावार्थ प्रयत्न का पूरा

अवकाश है। इसी व्यवहार-सिद्ध बुद्धि मे-से जीव-भेदवाद तथा देह-प्रमाणवाद स्थापित हुए जो सम्मिलित रूप से एक मात्र जैन-परम्परा मे ही है।

जैन-परम्परा, दृश्य-विश्व के अतिरिक्त, जड और चेतन जैसे परस्पर अत्यन्त भिन्न, अनन्त सूक्ष्म तत्वो को मानती है। स्थूल जगत् को सूक्ष्म जड-तत्वो का ही कार्य या रूपान्तर मानती है। सूक्ष्म जड-तत्व परमाणु रूप हैं। ये परमाणुरूप सूक्ष्म जड-तत्व आरम्भवाद के परमाणु की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म माने गये है। जैन-दर्शन परिणामवाद की तरह परमाणुओ को परिणामी मानकर स्थूल जगत् को उन्ही का रूपान्तर या परिणाम मानता है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार जैन दर्शन वस्तुत परिणामवादी है। साख्य-योग का परिणाम वाद केवल जड तक ही परिमित है। भर्तृ प्रपच आदि का परिणामवाद मात्र चेतनतत्वस्पर्शी है। हेमचन्द्र के अनुसार जैन परिणामवाद जड, चेतन, स्थूल, सूक्ष्म समग्र वस्तुस्पर्शी है। वह सर्व व्यापक परिणामवाद है। आरम्भ और परिणाम दोनो वादो का जैन-दर्शन मे व्यापक रूप मे पूरा स्थान तथा समन्वय है। वस्तुमात्र को परिणामी नित्य और समान रूप से वास्तविक सत्य मानने के कारण जैन-दर्शन प्रतीत्य समुत्पादवाद तथा विवर्तवाद का सर्वथा विरोध ही करता है।

जैन-दर्शन चेतन बहुत्ववादी है, किन्तु उसके चेतन-तत्व अनेक दृष्टि से भिन्न स्वरूप वाले हैं। हेमचन्द्र चेतन को न्याय, साख्य के समान न,तो सर्वव्यापक द्रव्य मानते है, न विशिष्टाद्वैत की तरह अणुमात्र ही मानते हैं। न बौद्ध-दर्शन की तरह ज्ञान की निर्द्रव्य धारा मात्र। जैनो का चेतन-तत्व, समग्र चेतन-तत्व मध्यम परिमाणवाले सङ्कोच-विस्तारशील होने के कारण इस विषय मे जडद्रव्यो स अत्यन्त विलक्षण नही।

'प्रमाण मीमासा' के अनुसार जैन-दर्शन जीवात्मा और परमात्मा के बीच भेद नही मानता। सब जीवात्माओ मे परमात्म-शक्ति एक-सी है और वह साधन पाकर व्यक्त होती भी है। जैन-दर्शन चेतन बहुत्ववादी होने के कारण तात्विक रूप से बहुपरमात्म वादी है। प्रकृति से अनेकान्त-वादी होते हुए भी जैन दर्शन का स्वरूप एकान्तत वास्तववादी ही है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार इन्द्रियजन्य, मतिज्ञान और पारमार्थिक केवल ज्ञान मे सत्य की मात्रा मे अन्तर है, योग्यता अथवा गुण मे नही। आचार्य अनेक सूक्ष्मतम भावो की अनिर्वचनीयता को मानते हुए भी निर्वचनीय भावो को भी यथार्थ मानते हैं। जीवात्मा और परमात्मा मे अभेद की कल्पना हिन्दू-दशन (वैदिक) का ही प्रभाव प्रतीत होता है।

'प्रमाण मीमासा' म जीव-सर्वज्ञवाद सिद्ध किया गया है जो उसकी

एक अन्यतम विशेषता है। आचार्य जी अनुसार हर कोई अधिकारी व्यक्ति सर्वज्ञ बनने की शक्ति रखता है। उनके अनुसार जैन पक्ष निरपवादरूप से सर्वज्ञ-वादी ही रहा है, जैसा कि न बौद्ध-परम्परा मे हुआ है, और न वैदिक-परम्परा मे। इस कारण से काल्पनिक, अकाल्पनिक, मिश्रित यावत् सर्वज्ञत्व समर्थक युक्तियो का सङ्ग्रह अकेले जैन प्रमाण-शास्त्र मे ही मिलता है।

जैन-दर्शन के अनुसार ही आचार्य हेमचन्द्र पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक दोनो दृष्टियो को सापेक्ष भाव से तुल्यबल और समान सत्य मानते हैं। द्रव्य के बीच विश्लेषण करते-करते अन्त मे सूक्ष्मतम पर्यायो के विश्लेषण तक वे सही पहुँचते हैं पर वे पर्यायो को वास्तविक मानकर भी द्रव्य की वास्तविकता का परित्याग बौद्ध-दर्शन की तरह नही करते। पर्यायो और द्रव्यो का समन्वय करते-करते एक सत् तत्व तक वे पहुँचते हैं। फिर भी वे ब्रह्मवादी की तरह द्रव्य-भेदो और पर्यायो की वास्तविकता का परित्याग नही करते। जैन-धर्म मे बौद्ध परम्परा की तरह न तो आत्यन्तिक विश्लेषण हुआ और न वेदान्त की तरह आत्यन्तिक समन्वय। इसी कारण से जैन दृष्टि मे अपरिवर्तिष्णुता आज तक रही है। उसका वास्तववादित्व स्वरूप स्थिर रहा।

'प्रमाण मीमासा' मे आचार्य हेमचन्द्र ने अनेकान्तवाद तथा नयवाद का शास्त्रीय निरूपण प्रस्तुत किया है जो जैनाचार्यों की भारतीय प्रमाण-शास्त्र को विशिष्ट देन है। विश्व के अधिकतम वाद अनेकान्त दृष्टि से शान्त किये जा सकते हैं। अनेकान्त दृष्टि के द्वारा जैनाचार्यों ने देखा कि प्रत्येक सयुक्तिकवाद अमुक-अमुक दृष्टि से अमुक-अमुक सीमा तक सत्य है। प्रत्येक वाद को उसी की विचार-सरणी से उसी की विषय सीमा तक परीक्षित किया जाय और इस परीक्षण मे वह ठीक निकले तो उसे सत्य का एक भाग मानकर, ऐसे सब सत्याश मणियो को एक पूर्ण सत्य रूप विचार-सूत्र मे पिरोकर अविरोधी माला बनायी जाय। इस विचार ने जैनाचार्यों को अनेकान्त दृष्टि के आधार पर तत्कालीन सब वादो का समन्वय करने की ओर प्रेरित किया। आज भी अनेक वादो मे उचित समन्वय यह अनेकान्त दृष्टि कर सकती है। समन्वय मात्र अथवा विश्लेषण मात्र के अवान्तर विचार-सरणियो के कारण अनेक तत्वो पर अनेक विरोधी वाद आप ही आप खडे हो जाते हैं। उन सबका समाधान अनेकान्त वाद से ही होता है। सभी वाद विरोध की शान्ति के लिए अनेकान्तवाद कुञ्जी है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार प्रतीति अभेदगामिनी हो या भेदगामिनी किन्तु सभी वास्तविक हैं। अभेद और भेद की प्रतीतियाँ विरुद्ध इसी से जान

पड़ती है कि प्रत्येक को पूर्ण प्रमाण मान लिया जाता है। सामान्य और विशेष की प्रत्येक प्रतीति स्व विषय मे यथार्थ होने पर भी पूर्ण प्रमाण नही वह प्रमाण का अश अवश्य है। इसे वृक्ष और वन के दृष्टान्त से भी स्पष्ट किया जा सकता है। अनेक वृक्षो को सामान्य रूप मे वन रूप मे ग्रहण करते हैं तब विशेषो का अभाव नही हो जाता, पर सब विशेष लीन हो जाते है यही एक प्रकार का अद्वैत हुआ। जब एक-एक वृक्ष को विशेष रूप से देखते हैं तब सामान्य अन्त-र्लीन हो जाता है। दोनो अनुभव सत्य है।। अपने-अपने विषयो मे दोनो की सत्यता होते हुए भी किसी एक को पूर्ण सत्य नही कह सकते। पूर्ण सत्य दोनो अनुभवो का समुचित समन्वय ही है। इसी मे दोनो अनुभव समा सकते हैं। यही स्थिति विश्व के सम्बन्ध मे सद्अद्वैत, अथवा सद द्वैत दृष्टि की भी है। जो तत्व अखण्ड प्रवाह की अपेक्षा से नित्य कहा जा सकता है वही तत्व खण्ड-खण्ड क्षण परिमित परिवर्तनो व पर्यायो की तुलना से क्षणिक भी कहा जा सकता है। वस्तु का कालिक पूर्ण स्वरूप अनादि अनन्तता और सादि सान्तता दोनो अशो से बनता है। दोनो दृष्टियाँ प्रमाण तभी बनती है जब वे समन्वित हो। दूध दूध रूप से भी प्रतीत होता है और अदधि या दधि-भिन्न रूप से भी। ऐसी दशा मे वह भाव, अभाव, उभय रूप सिद्ध होता है। इसी तरह धर्म धर्मी, गुण गुणी, कार्य-कारण, आधार-आधेय, आदि द्वद्वो के अभेद और भेद के विरोध का परि-हार भी अनेकान्त दृष्टि कर देती है। एक ही विषय मे प्रतिपाद्य भेद से हेतुवाद और आगमवाद दोनो को अवकाश है। जीवन मे दैव और पौरुष दोनो वाद समन्वित किये जा सकते हैं। कारण मे कार्य सत् भी है, और असत् भी [1] कडा बनने के पूर्व सुवर्ण मे क्षमता के कारण कार्य सत् किन्तु उत्पादक सामग्री के अभाव मे उत्पन्न न होने के कारण असत् भी है। बौद्धो का परमाणुपुञ्जवाद एव नैयायिको का अपूर्वावयवी वाद दोनो का समन्वय आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्रमाण-मीमासा' मे अनेकान्तवाद के अन्तर्गत कर दिया है। इस प्रकार का सामञ्जस्य या समन्वय करत समय नयवाद और भङ्गवाद आप ही आप फलित हो जाते हैं।

सम्भावित सभी अपेक्षाओ से दृष्टिकोणो से चाहे वे विरुद्ध ही क्यो न दिखायी देते हो किन्तु वास्तविक चिन्तन व दर्शनो का सार-समुच्चय ही उस विषय का पूर्ण अनेकान्त दर्शन है। प्रत्येक अपेक्षा सम्भवी दर्शन उस पूर्ण दर्शन का एक अग है जो परस्पर विरुद्ध होकर भी पूर्ण दर्शन मे समन्वय पाने के कारण वस्तुत अविरुद्ध ही है। (१) अभेद भूमिका पर "सत्" शब्द के एक

मात्र अखण्ड अर्थ का दर्शन सङ्ग्रह नय है। (२) गुण-धर्मकृत भेदों की ओर झुकने वाला विश्व का दर्शन व्यवहार नय कहलाता है। (३) अतीत अनागत को 'सत्' शब्द से हटाने वाला, वर्तमान भेद गामी दर्शन ऋजुसूत्र नय कहलाता है। (४) सभी शब्दों को अव्युत्पन्न मानना-उनका अर्थ भेद का दर्शन 'शब्दनय' या साम्प्रत नय हैं। (५) प्रत्येक शब्द को व्युत्पत्ति सिद्ध मानने वाला दर्शन समभिरूढनय कहलाता है। (६) एक ही व्युत्पत्ति से फलित होने वाले अर्थभेद एवं भूत नय कहलाता हैं। (७) देश, रूढि के अनुसार भेदगामी, अभेदगामी, सभी विचारों का समावेश नैगम नय कहलाता हैं। प्रायः प्रत्येक दृष्टिकोण एक नय ही है। नयरूप आधार-स्तम्भों के अपरिमित होने के कारण विश्व का पूर्ण दर्शन अनेकान्त भी निस्सीम है।

सप्तभंगी का आधार नयवाद है और उसका ध्येय समन्वय है। दर्शनों का समन्वय बतलाने की दृष्टि से उनके विषयभूत भाव अभावात्मक दोनों अंशों को लेकर उन पर सम्भावित वाक्य भंग बनाये जाते हैं। वही सप्तभंगी है। इस तरह नयवाद और भंगवाद अनेकान्त दृष्टि के क्षेत्र में आप ही आप फलित हो जाते हैं। समन्वय के आग्रह में जैन तार्किकों ने अनेकान्त, नय और सप्तभंगीवाद का बिलकुल स्वतन्त्र और व्यवस्थित शास्त्र निर्माण किया। अनेकान्त दृष्टि और उस शास्त्र निर्माण के पीछे जो अखण्ड और सजीव सर्वांश सत्य को अपनाने की भावना जैन-परम्परा में रही और जो प्रमाण-शास्त्र में अवतीर्ण हुई उसमें जीवन के समग्र क्षेत्रों में सफल उपयोग होने की पूर्ण योजना होने के कारण ही उसे भारतीय प्रमाण-शास्त्र को जैनाचार्य की अपूर्व देन कहना अनुपयुक्त नहीं है। **भारतीय दर्शन को हेमचन्द्र की देन** — 'प्रमाण मीमांसा' में हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती आगमिक तार्किक, सभी जैन मन्तव्यों को विचार व मनन से पचाकर अपने ढंग की विशद् अनुक्त, सूत्र-शैली तथा सर्व सङ्ग्राहिणी विशदतम स्वोपज्ञवृत्ति में उसे सन्निविष्ट किया। नियुक्ति, विशेषावश्यकभाष्य तथा तत्त्वार्थ जैसे आगमिक ग्रन्थ तथा सिद्धसेन, समन्तभद्र,अकलङ्क,माणिक्य नन्दी,विद्यानन्द की प्रायः समस्त कृतियां 'प्रमाण मीमांसा' की उपादान सामग्री बनी हैं। प्रभाचन्द्र के 'मार्तण्ड' का भी इसमें पूरा प्रभाव है। अनन्तवीर्य की 'प्रमेयरत्नमाला' का भी इसमें विशेष उपयोग हुआ है। वादी देवसूरि की कृतिका भी उपयोग स्पष्ट है। फिर भी प्रमाण मीमांसा' में अकलंक और माणिक्य नन्दी का ही मार्गानुगमन प्रधानतया देखा जाता है। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट शान्तरक्षित आदि बौद्ध तार्किक भी इनके अध्ययन के विषय रहे हैं। कणाद, भासर्वज्ञ, व्योमशिव,

श्रीधर, अक्षपाद्, वात्स्यायन, उद्योतकर, जयन्त, वाचस्पति मिश्र, शबर, प्रभाकर, कुमारिल, आदि विविध वैदिक परम्पराओं के प्रसिद्ध विद्वानों की सब कृतियाँ प्राय: इनके अध्ययन की विषय रही । चार्वाक् जयराशि भट्ट का "तत्वोपप्लव" भी इनकी दृष्टि के बाहर नहीं था । आचार्य हेमचन्द्र की भाषा तथा निरूपण शैली पर धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, अर्चट, भासर्वज्ञ,वात्स्यायन, जयन्त, वाचस्पति मिश्र, कुमारिल, आदि का ही आकर्षक प्रभाव पड़ा है । 'प्रमाण मीमासा' ऐतिहासिक दृष्टि से जैन तर्क साहित्य मे तथा भारतीय दर्शन साहित्य मे विशिष्ट स्थान रखती है ।

भारतीय प्रमाण-शास्त्र मे 'प्रमाण मीमासा' का विशिष्ट स्थान है । भारतीय प्रमाण-शास्त्र न्याय-दर्शन के अन्तर्गत आता है, जिसके प्रवर्तक महर्षि गौतम माने जाते है । न्याय-दर्शन का मूल ग्रन्थ गौतम का न्याय-सूत्र है । इसके बाद न्याय-भाष्य के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जैसे वात्सायायन का 'न्यायभाष्य', उद्योतकर का 'न्यायवार्तिक', वाचस्पति की 'न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका', उदयन की 'न्यायवार्तिक तात्पर्य परिशुद्धि' तथा' कुसुमाजलि' जयन्त की 'न्याय मञ्जरी' आदि । इनमे स्वमतमण्डन तथा परमतखण्डन विशेष रूप से विद्यमान है । नव्य न्याय का आरम्भ गगेश की 'तत्वचिन्तामणि' से हुआ है । नव्यन्याय मे तर्क-विज्ञान अथवा प्रमाण-शास्त्र सम्बन्धी विषयो का विशद् विवेचन है । "प्रमाणैरर्थ परीक्षण न्याय." फिर भी इसमे १६ पदार्थों का परीक्षा पूर्वक विवेचन होता है, १. प्रमाण, २. प्रमेय, ३. सशय, ४. प्रयोजन, ५ दृष्टान्त, ६. सिद्धान्त, ७. अवयव, ८. तर्क, ९. निर्णय, १०. वाद, ११. जल्प, १२. वितण्डा, १३. हेत्वाभास, १४. छल, १५. जाति और १६. निग्रहस्थान ।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी 'प्रमाण मीमासा' में इन् सभी पदार्थो पर प्रकाश डालते हुए भी भारतीय प्रमाण-शास्त्र को कुछ मौलिक एव नवीन विचार भेंट किये है, जो जैनाचार्यों की भी भारतीय प्रमाण शास्त्र को अपूर्व देन कही जा सकती है । सबसे प्रथम एव सर्वश्रेष्ठ देन-'अनेकान्त-वाद' है । 'प्रमाण मीमासा' मे 'अनेकान्तवाद' की विशद चर्चा कर हेमचन्द्र ने प्रमाण-शास्त्र को समन्य की ओर अग्रसर किया है । इस प्रकार दर्शन शास्त्र मे अधिक से अधिक व्यापक दृष्टि कोण को अपनाने के लिए उन्होंने प्रेरित किया है । इससे सर्वधर्मसहिष्णुत्व अथवा परमतसहिष्णुत्व की भावना को बल मिला है । भारतीय दर्शन, जो अधिकाश मे हिन्दू दर्शन है परमतसहिष्णु है । यह सहिष्णुता सम्भवत जैनदर्शन से सम्पर्क के कारण ही है । प्रत्येक क्षेत्र मे दृष्टि की इस व्यापकता का

दर्शन होता है। उदाहरणार्थ भारतीय प्रमाण-शास्त्र मे चार ही प्रमाण माने जाते हैं, किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने प्रमाणो का ऐसा विभाजन किया है कि उसके अन्तर्गत सभी प्रमाण समा जाते हैं। प्रत्यक्ष का तात्विकत्व, 'प्रमाण मीमासा' की दूसरी विशिष्टता है। स्वतन्त्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। परतन्त्र इन्द्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष नही है। तत्वचिन्तन मे ये विचार नितान्त मौलिक है। हेमचन्द्र की अनुमान के अवयवो की व्यवस्था सर्व सङ्ग्राहिणी है, जो भारतीय प्रमाण-शास्त्र को उनकी तीसरी देन है। वस्तु मात्र परिणामी नित्य कहकर द्रव्य पर्याय की व्यापक दृष्टि का परिचय जैन-परम्परा की ही देन है। आत्म विषयक जैन-चिन्तन मे परमात्म-शक्ति का स्थान है, तदैव दोष निर्वाणार्थ प्रयत्न का पूरा अवकाश भी है-यह 'प्रमाण मीमासा' की अन्यतम विशिष्टता है। न्याय के अनुसार शरीर ग्रस्त आत्मा के दुखो का पूर्ण विनाश सम्भव नही है। अन्त मे 'प्रमाण मीमासा मे जीव-सर्वज्ञवाद का प्रभावपूर्ण समर्थन कर जीवमात्र के लिए अमृतमार्ग खुला कर दिया है। सर्वज्ञत्व समर्थक युक्तियो का सङ्ग्रह जैन प्रमाण-शास्त्र मे तथा 'प्रमाण मीमासा' मे ही मिलता है।

इस प्रकार भारतीय प्रमाण-शास्त्र मे हेमचन्द्र की 'प्रमाण मीमासा' का स्थान अद्वितीय है, जो भारतीय प्रमाण-शास्त्र के विकास मे अपूर्व योगदान देता है। 'प्रमाण मीमासा' के कारण प्रमाण शास्त्र और अधिक व्यापक बन गया है। सम्प्रदायातीत विचारो के प्रचार मे तथा प्रसार मे 'प्रमाण मीमासा' अपूर्व सहायता कर सकती है। 'प्रमाण मीमासा' से दर्शन-जगत में तथा तर्क-साहित्य मे परमतसहिष्णुता का प्रसार हुआ है, जो पोषक वातावरण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सम्प्रदाय वृद्धयर्थ लिखा गया ग्रन्थ सम्प्रदायातीत बन गया, यह 'प्रमाण मीमासा' की अपूर्व विशेषता है। अत.'प्रमाण मीमासा' से न केवल जैन दर्शन का अपितु सम्पूर्ण भारतीय दर्शन-शास्त्र के गौरव मे वृद्धि हुई

भारतीय दर्शन पाश्चात्य दर्शनों की भांति केवल तत्वो की मीमासा ही नही करता है, अपितु आचार-शास्त्र, प्रमाण-शास्त्र, क्रिया-शास्त्र, मोक्ष-शास्त्र, आदि सभी विषयों को अपने मे समेट कर चलता है। इस दृष्टि मे आचार्य हेमचन्द्र का दूसरा धार्मिक एव दार्शनिक ग्रन्थ 'योग-शास्त्र' भी द्रष्टव्य, विचारणीय एव चिन्तनीय है।

योग शास्त्र— *आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र पर बडा ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ* लिखा है। इसकी शैली पतञ्जलि के 'योग-सूत्र' के अनुसार ही है, किन्तु विषय और वर्णन क्रम मे मौलिकता एव भिन्नता है। इस दृष्टि से 'योग-शास्त्र' का

महत्व अधिक है। यह ग्रन्थ सरल श्लोको मे लिखा गया है। इसके साथ ही बहुत-कुछ परिष्कृत गद्य मे लिखित ग्रन्थकार की ही अपनी टीका भी मिलती है। विशद् टीका सहित प्रथम चार परिच्छेदो मे जैन-दर्शन का विस्तृत और स्पष्ट वर्णन दिया गया है, अन्तिम आठ परिच्छेदो मे जैन धर्म के विभिन्न कृत्यो का और मुनियो के आचारो का प्रतिपादन किया गया है। डॉ कीथ के मत के अनुसार जैन-धर्म ग्रन्थो के समान इसमे भी अहिंसा की प्रशसा तथा नारी की निन्दा की गयी है। हेमचन्द्र मे उत्कृष्ट कविता लिखने की योग्यता है तो भी इनकी इस कृति 'योग-शास्त्र' को कोई विशिष्ट साहित्यिक महत्व नहीं दिया जा सकता। वास्तव मे जैनाचार्य हेमचन्द्र का 'योग-शास्त्र' नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य की कोटि मे आता है, जो कि आचार प्रधान है तथा धर्म और दर्शन दोनो से प्रभावित है। योग-शास्त्र ने नीति-काव्यो या उपदेश काव्यो की परम्परा को समृद्ध एव समुन्नत किया है। 'योग-शास्त्र' एक प्रकार से जैन-सम्प्रदाय का विशुद्ध धार्मिक एव दार्शनिक ग्रन्थ है।

चालुक्य नरेश कुमारपाल के अनुरोध से हेमचन्द्र ने 'योग-शास्त्र' की रचना की थी। इसमे १२ प्रकाश तथा १०१८ श्लोक हैं। जिस प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय मे योगविषयक शुभचन्द्रकृत 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ अप्रतिम है उसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे हेमचन्द्र का 'योग-शास्त्र' भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। १२ प्रकाशो मे विभक्त 'योग-शास्त्र' भी 'ज्ञानार्णव' के समान सरल सुबोध सस्कृत मे रचा गया है। इसका ६१ पद्यमय ११ वां प्रकाश आर्यावृत्त मे और १२ वें प्रकाश के प्रारम्भिक ५१ पद्य भी आर्यावृत्त मे, ५२–५३ ये दो पद्य क्रम से पृथ्वी व मदाक्रान्ता वृत्तो में तथा अन्तिम दो पद्य शार्दूल विक्रीडित वृत्त मे रचे गये हैं। शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ अनुष्टुभ छद मे रचित है। प्रथम चार प्रकाशो पर विस्तृत टीका मिलती है, किन्तु अन्तिम आठ प्रकाशो पर सक्षिप्त टीका मिलती है। सम्भवत हेमचन्द्र के शिष्यो मे से किसी शिष्य ने टीका लिखी हो 'त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित' के भी उद्धरण इसमें मिलते हैं।

'योग-शास्त्र' को अध्यात्मोपनिषद् भी कहा गया है। गृहस्थ जीवन मे आत्म साधना करने की प्रक्रिया का निरूपण इसमे किया गया है। इसमे योग की परिभाषा, व्यायाम, रेचक, कुम्भक, पूरक आदि प्राणायामो तथा आसनो का निरूपण किया गया है। 'योग-शास्त्र' के अध्ययन एव अभ्यास से मुमुक्षु को आध्यात्मिक प्रगति की प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियो के उदघाटन का पूर्ण प्रयास इसमे किया गया है। सम्भवत कुमारपाल को धर्म का

मुनि जहाँ उपर्युक्त अहिंसादि व्रतों का सर्वात्मना पालन करते हैं वहाँ उस मुनि-धर्म में अनुरक्त गृहस्थ उक्त व्रतों का देशतः ही पालन करते हैं। इस गृहि धर्म की प्ररूपणा करते हुए हेमचन्द्राचार्य ने प्रथमतः दस श्लोकों में (४७–५७) यह बतलाया है कि कैसा गृहस्थ उस गृहि धर्म परिपालन के योग्य होता है। तत्पश्चात् पांच अणुव्रतादि स्वरूप गृहस्थ के १२ व्रतों को सम्यक्त्व मूलक बतलाकर यहाँ उस सम्यक्त्व व उसके विषयभूत देव, गुरु, धर्म, का भी वर्णन करते हुए द्वादश व्रतों का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। प्रथम प्रकाश के अन्त में आदर्श गृहस्थ का वर्णन अनुकरणीय है।

इस प्रकार आदर्श गृहस्थ बनने के लिए द्वितीय प्रकाश का आरम्भ व्रत-निर्देशों से होता है। गृहस्थों के लिए निर्देशित व्रतों के अन्तर्गत ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत तथा ४ शिक्षाव्रत आते हैं। इन्हीं को सम्मिलित रूप से द्वादश-व्रत भी कहते हैं[1]। पूर्व निर्देशित पञ्च महाव्रत ही पाँच अणुव्रत हैं तथा द्वितीय प्रकाश इन्हीं व्रतों का वर्णन किया गया है।

तृतीय प्रकाश में तीन गुणव्रतों का वर्णन है। इसके अन्तर्गत मदिरा दोष, मांस दोष, नवनीत भक्षण-दोष, मधु दोष, उदुम्बर भक्षण दोष, रात्रि भोजन दोष आदि का वर्णन हैं। तत्पश्चात् चार शिक्षाव्रतों का वर्णन है। इसके बाद महा-श्रावक की दिन-चर्या का सुन्दर वर्णन किया गया है। ब्राह्म मुहूर्त में जाग्रत होकर रात्रि में शयनपर्यन्त सम्पूर्ण कार्यक्रम को यथाविधि सम्पन्न करते हुए मोक्ष का आनन्द प्राप्त करने की सदैव इच्छा करनी चाहिये।

चतुर्थ प्रकाश में इन्द्रियजय, कषायजय, मन शुद्धि और राग-द्वेष जय की विधि का विवेचन करते हुए समान भाव को उद्दीप्त करने वाली १२ भावनाओं

१– द्वादशव्रतः अणुव्रत, ५– १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ अपरिग्रह, ५ ब्रह्मचर्य
गुणव्रत ३– १ दिग्विरतिः २, भोगोपभोगमान, ३ अनर्थदण्ड-विरमण
शिक्षाव्रत ४– १ सामायिक, २ देशावकाशिक, ३ पोषध, ४ अतिथिसंविभाग।

इन व्रतों की मान्यता के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम मत में 'देशावकाशिक व्रत' की गणना गुणव्रतों में की गयी है और द्वितीय में शिक्षाव्रतों में। प्रथम मत 'भोगोपभोगपरिमाण' को शिक्षाव्रतों में परिगणित करता है और द्वितीय गुणव्रतों में।

का वर्णन किया गया है। साथ ही वहाँ यह कहा गया है कि मोक्ष जिस कर्मक्षय से सम्भव है, वह कर्मक्षय आत्मज्ञान से होता है और वह आत्मज्ञान ध्यान से सिद्ध किया जा सकता है। साम्यभाव के विना ध्यान नही और ध्यान के विना वह स्थिर साम्यभाव भी सम्भव नही है। इसलिए ध्यान तथा साम्यभाव दोनो परस्पर एक दूसरे के कारण है। इस प्रकार ध्यान की भूमिका बांधते हुए ध्यान का स्वरूप व उसके दो भेद-धर्म्य और शुक्ल, निर्दिष्ट किये गये है। तथा धर्म्य-ध्यान को सस्कृत करने के लिए मैत्री आदि भावनाओ को ध्यान का रसायन बतलाकर उनका भी सक्षेप मे स्वरूप दिखलाया गया है। इस प्रकार रत्नत्रयो का सम्यग् वर्णन करने के पश्चात् चतुर्थ प्रकाश से प्रारम्भ मे मोक्ष की सुन्दर व्याख्या दी है। यह आत्मा ही चिद्रूप है, ध्यानाग्नि मे सर्वकर्म भस्मसात होकर आत्मा निरञ्जन हो जाती है। कषायो को जीतकर जितेन्द्रिय पुरुष को ही मोक्ष मिलता है। इसके बाद काम-क्रोध रूप का वर्णन किया गया है। इन्द्रिय जय तथा मन शुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करके समत्व प्राप्ति करनी चाहिये। तत्पश्चात् बारह भावनाओ का वर्णन है। तप के दो प्रकारो—बहिस्तप तथा आन्तरतप, का वर्णन किया गया है। ध्यान का वर्णन करते हुए "समत्वमलम्ब्याय ध्यान योगी समाश्रयेत" कहकर गीतोक्त समत्वयोग की ही आचार्य जी ने प्रतिष्ठा की है। ध्यान की सिद्धि के लिए योगी को, जिसने आसन पर विजय प्राप्त करली है, आत्मस्थिति के हेतुभूत किसी तीर्थ-स्थान अथवा अन्य किसी भी एकान्त, पवित्र स्थान का आश्रय लेना चाहिये। इसके लिए प्रकृत मे पर्यंक, वीर, वज्र, कमल भद्र, दण्ड उत्कटिका, गोदोहिका, और कायोत्सर्ग इन आसन विशेषो का निर्देश करके उनके पृथक पृथक लक्षण भी दिखलाये गये है।

पञ्चम प्रकाश मे प्राणायाम की प्ररूपणा करते हुए प्राणापानादि वायु-भेदो के साथ पार्थिव, वारुण, वायव्य, और आग्नेय, नामक वायु-मण्डलो तथा उनके प्रवेश, निगमन को लक्ष्य मे रखकर उससे सूचित फल की विस्तार से चर्चा की गयी है। योग की आश्चर्य जनक शक्तियो के बारे मे भी वर्णन किया गया है। प्राणायाम का ३०० श्लको मे प्ररूपण करने पर भी ज्ञानार्णव के समान ही उसे मोक्ष प्राप्ति मे बाधक कहा गया है। हेमचन्द्र को शुभचन्द्र का इस विषय मे ऋणी मानना चाहिये।

६ ठे प्रकाश मे परपुरप्रवेश व प्राणायाम को निरर्थक कष्टप्रद बतलाकर उसे मुक्ति-प्राप्ति मे बाधक बतलाया है। साथ ही धर्म-ध्यान के लिए मन को

इन्द्रिय विषयों की ओर से खींच कर उसे नाभि आदि विविध स्थानों मे से किसी भी स्थान मे स्थापित करने की प्रेरणा की गयी है।

७ वें प्रकाश के प्रारम्भ मे कहा गया है कि ध्यान के इच्छुक जीव को ध्यान, ध्येय और उसके फल को जान लेना चाहिये। क्योकि सामग्री के बिना कभी कार्य सिद्ध नहीं होते है, तदनुसार यहाँ ध्यान के विषय मे कहा गया है कि जो सयम की धुरा को धारण करके प्राणो का नाश होने पर भी कभी उसे नही छोड़ता है, शीत-उष्ण आदि की बाधा से कभी व्यग्र नहीं होता है, क्रोधादि कषायों से जिसका हृदय कभी कलुषित नहीं होता है, जो काम-भोगो से विरक्त होकर शरीर मे भी निःस्पृह रहता है, तथा जो सुमेरु के समान निश्चल रहता है, वही ध्याता प्रशसनीय है।

ध्येय (ध्यान का विषय) के पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत—इन चार भेदो का निर्देश करके पिण्डस्थ मे सम्भव पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी और तत्रभू इन पांच धारणाओ का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है। साथ ही, उस पिण्डस्थ ध्येय के आश्रय से जो योगी को अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है, उसका भी दिग्दर्शन कराया गया है।

८ वें प्रकाश मे पदस्थ, ९ वें प्रकाश मे रूपस्थ और १० वें प्रकाश मे रूपातीत ध्यान का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त १० वें प्रकाश मे उस धर्म-ध्यान के आज्ञा विचयादि अन्य चार भेदों का स्वरूप दिखलाते हुए उक्त धर्म-ध्यान का फल भी सूचित किया गया है[1]।

११ वें प्रकाश मे पृथक्त्ववितर्क आदि चार प्रकार के शुक्लध्यान का उल्लेख करके केवली 'जिन' के माहात्म्य को प्रकट किया है।

अंतिम १२ वें प्रकाश के प्रारम्भ मे 'श्रुतसमुद्र' और गुरु के मुख से जो कुछ मैंने जाना है उसका वर्णन कर चुका हूँ, अब यह निर्मल अनुभव-सिद्ध तत्व को प्रकाशित करता हूँ' ऐसा निर्देश करके विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट, सुलीन, इन चित्त-भेदो के स्वरूप का कथन करते हुए बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप भी कहा गया है। अन्त मे चित्त की स्थिरता पर विशेष बल दिया गया है। तभी समाधि-अवस्था प्राप्त होकर पुरुष सिद्ध बन जाता है। आचार्य हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' की इस दृष्टि से पतञ्जलि के योगसूत्र से तुलना उचित प्रतीत होती है।

१–भावना १२–अनित्य[1], अशरण[2], ससार[3], एकत्व[4], अन्यत्व[5], अशौच[6], आस्रव[7],

योगशास्त्र का विवेचन — विषय तथा वर्णन क्रम मे मौलिकता तथा भिन्नता होने होने पर भी महर्षि पतञ्जलि के 'योगसूत्र' तथा हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' बहुत सी बातो मे समानता पायी जाती है। उदाहरणार्थ कर्मवाद को ही ले सकते हैं। कर्मवाद को प्रायः भारत के सभी दर्शन मानते हैं। कर्मवाद के अनुसार 'कृत-प्रणाश' तथा 'अकृताभ्युपगम' नही होता है। अर्थात् किये हुए कर्म का फल नष्ट नही होता और बिना किये हुए कर्म का फल नही मिलता। पातञ्जल योगसूत्र के अनुसार भी ससार के सभी जीव अविद्या, अहकार, वासना, राग-द्वेष और अभिनिवेश (मृत्यु भय) आदि के कारण दु.ख पाते हैं। वे भाँति-भाँति के कर्मों के फलस्वरूप सुख-दु.ख भोग करते हैं। योगसूत्र के दूसरे पाद मे कर्म-फल आदि के विषय मे वर्णन आता है। जब तक पूर्व कर्मजन्य सभी सस्कारो का नाश नही हो जाता और चित्त की सभी वृत्तियो का अन्त नही हो जाता तब तक दु.खो के पुनरावर्तन की सम्भावना बनी रहती है। भूत और वर्तमान के विविध कर्मों से उत्पन्न सस्कारो को नष्ट करने के लिए समाधि की स्थिति मे दृढतापूर्वक स्थिर रहना बडा ही दुस्तर कार्य है। इसके लिए चिरसाधना और कठिन योगाभ्यास की जरूरत है।

जैन दर्शन मे भी कर्मवाद प्राणभूत तत्व माना जाता है। हेमचन्द्र के योगशास्त्र के अनुसार ससार की विषमता के मूल मे कर्म का अस्तित्व ही है। सुख दु.ख देने वाला कर्म-पुञ्ज आत्मा के साथ अनादि काल से सयुक्त है। इसी के कारण आत्मा ससार मे परिभ्रमण करती है। वासना विभिन्न प्रकार के परमाणु समूहो का एक समुच्चय ही है। इसी को दूसरे शब्दो मे कर्म कहते हैं। आत्मा की कर्मबद्ध अवस्था ही ससार है। जैन शास्त्रो के समान आचार्य हेमचन्द्र भी मानते है कि सम्पूर्ण कर्मो का क्षय होते ही मुक्तजीव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। कर्म के फल के विषय मे हेमचन्द्र कहते हैं कि उग्र पाप की भाँति

सवर[८], निर्जरा[९], धर्म[१०], लोक[११], बोधिभावना[१२]

तप १२ — अनशन[१], अवमौदर्य[२], वृत्तिपरिसख्यान[३], रसपरित्याग[४], विविक्त-शैय्यासन[५], कायक्लेश[६], प्रायश्चितत्व[७], विनय[८] वैयावृत्य[९], स्वाध्याय[१०], व्युत्सर्ग[११], ध्यान[१२]

कषाय ४ — क्रोध[१], मान[२], लोभ[३], माया[४]

उग्र पुण्य का फल भी इस जन्म मे मिल सकता है। जैन दर्शन के अनुसार कर्म की बध्यमान, सत् और उदयमान अवस्थाएँ मानी गयी है। इन्हे क्रमश बन्ध, सत्ता और उदय कहते है। योगसूत्र मे क्रमश क्रियमाण, सञ्चित, तथा प्रारब्ध नाम से इन्ही अवस्थाओ का वर्णन किया गया है।

कर्मवाद के बाद बन्ध और मोक्ष के विषय मे भी दोनो के विचार एक से मालूम पडते हैं। कर्म का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है। ईश्वरता और मुक्तता एक ही है। पातञ्जल योग के अनुसार चित्तवृत्तियो के निरोध के द्वारा आत्मा बन्धनमुक्त होकर आत्म-साक्षात्कार का अनुभव करती है। कर्मबन्ध से छूट जाना ही मोक्ष है। पातञ्जल योग मे यम-नियम, ध्यान, धारणा द्वारा साधक असप्रज्ञात समाधि तक पहुँचता है। वहाँ पहुँच जाने पर योगी समस्त विषय ससार से मुक्त होता है। इस अवस्था मे आत्मा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप मे रहती है और अपने कैवल्य या मुक्तावस्था के प्रकाश का आनन्द लेती है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर पुरुष सभी दुखो से मुक्ति पा जाता है। इस अवस्था को धर्ममेघ भी कहते हैं क्योकि वह योगी के ऊपर कैवल्य या मुक्ति की वर्षा करता है।

आचार्य हेमचन्द्र भी प्राय इसी प्रकार मुक्तावस्था का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार ईन्धन शेष न रहने पर अथवा ईन्धन का सम्बन्ध समाप्त हो जाने पर आग स्वयमेव बुझ जाती है, उसी प्रकार मन का उपर्युक्त क्रम से अणु पर पूर्ण रूप से स्थिर होते ही चाञ्चल्य दूर हो जाता है और वह पूर्ण रूप स शान्त बन जाता है। केवल ज्ञान, सर्वज्ञता प्रकट होती है। आगे योगशास्त्र की समाप्ति करते हुए आत्मानन्द की अनुभूति का वर्णन आचार्य हेमचन्द्र वैदिक दर्शन के समान ही करते हैं। मोक्ष हो या न हो, परन्तु चित्त की स्थिर दशा मे परमानन्द का सवेदन होता है। जिसके आगे समग्र सुख मानो कुछ भी नही हैं, ऐसा प्रतीत होता हैं।(१२।५१)

इस मोक्षावस्था को प्राप्त करने के लिए जो उपाय या साधन बतलाये हैं उनमे भी पातञ्जल योगसूत्र तथा हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' मे पर्याप्त साम्य दिखलायी देता है। आत्मोन्नति के साधन रूप में पातञ्जल योग की महत्ता को प्राय सभी भारतीय दर्शनो मे स्वीकार किया है। जब तक मनुष्य का चित्त या अन्त करण निर्मल और स्थिर नही होता तब तक उसे धर्म के तथ्य का सम्यक ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मशुद्धि के लिए योग ही सर्वोत्तम साधन है। इससे शरीर और मन की शुद्धि हो जाती है। सभी भारतीय दर्शन अपने-अपने सिद्धान्तो को यौगिक रीति से ध्यान, धारणा आदि के द्वारा अनुभव करने के लिए

प्रयत्न करते हैं। योग का अर्थ है चित्तवृत्ति का निरोध। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि इन आठ साधनो से योग की साधना की जाती है।

जैन दर्शन के पञ्चमहाव्रतो तथा पतञ्जलि योगसूत्र के यमो मे कुछ भी अन्तर नही हैं। जैन धर्म के समान ही योगसूत्र मे भी यम-नियमो की विवेचना की गयी है। योगी के लिए इन की साधना अत्यावश्यक है क्योंकि मन को सबल बनाने के लिए शरीर को सबल बनाना अत्यावश्यक है। जो काम-क्रोधादि पर विजय प्राप्त नही कर सकता उसका मन या शरीर सबल नही रह सकता। जब तक मन पाप वासनाओं से भरा है और चञ्चल रहता है तब तक वह किसी विषय पर एकाग्र नही हो सकता, इस लिए योग या समाधि के साधक को सभी आसक्तियो से और कुप्रवृत्तियो से विरत होना आवश्यक है। नियम का पालन का अर्थ है— सदाचार का पालन। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम हैं, तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एव ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी प्रतिपादित किया है कि सम्यक् ज्ञान, तथा सम्यक् आचार से मोक्ष मिलता है। सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् व्यवहार से ही मोक्ष मिलता है। जैन दर्शन मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करने के हेतु आचार को प्रधानता देता है। नये कर्मों को रोकने के लिए तथा पुराने कर्मों को नष्ट करने के लिए पञ्च महाव्रत पालन करना नितान्त आवश्यक है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह पाँच व्रत हैं। पातञ्जल योगसूत्र मे भी यमो का वर्णन करते हुए काया, वाचा, मनसा अहिंसा का पालन करने के लिए कहा है तथा योग साधनो के लिए अत्यन्त सात्विक आहार की उपादेयता बतलाकर अभक्ष्य भक्षण का निषेध किया गया है। यदि सत्य भी परपीडाकर हो, तो न बोलना चाहिये। कौशिक तापस के सच कहने से कई मनुष्यो की क्रूर हत्या हुई थी और उसे नरक मिला था। यह कथन मनु-वचन 'सत्य ब्रूयात्, प्रिय ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस से बिलकुल मिलता-जुलता है। इस प्रकार सत्य के विषय मे आचार्य जी ने मध्यम-मार्ग ही बतलाया है। ब्रह्मचर्य के विषय मे सुवर्णमध्य का अवलम्बन करते हुए वे योगशास्त्र मे लिखते हैं कि अपनी पत्नी की मर्यादित सगति के अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार की काम-चेष्टा हेय है। इस व्रत का अभिप्रेय है वेश्या, विधवा, कुमारी और परपत्नी का त्याग। "धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्वि" गीता की इस उक्ति से ऊपर की उक्ति मे बहुत साम्य दिखाया देता है। अन्त मे अपरिग्रह व्रत का वर्णन करते हुए हेमचन्द्र कहते हैं कि यह परिग्रह परिमाण

व्रत अच्छी समाज-व्यवस्था का सर्जन कराने वाला व्रत है। व्रत से तृष्णा के समुचित नियन्त्रण, एव लोभ पर अकुश हो जाता है। इसके साथ ही वैदिक कार्यक्रमों मे रात के भोजन का निषेध किया गया है।

इस प्रकार आत्मोन्नति के लिए आचार्य हेमचन्द्र जी ने अपने योगशास्त्र मे आचार-धर्म पर विशेष जोर दिया है। पातञ्जल योग के अष्टाग साधनो म से केवल यम-नियमों पर उन्होने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार किया हैं। जिस आत्मा की उन्नति के हेतु पञ्च-महाव्रत आदि साधना का वर्णन किया गया है उस आत्मा के विषय मे—आत्मा के स्वरूप के विषय म भी 'योगसूत्र' तथा 'योगशास्त्र' मे बहुत कुछ साम्य पाया जाता है।

महर्षि पतञ्जलि अपने योगसूत्र मे आत्मा को स्वभावत शुद्ध चैतन्य स्वरूप तथा नित्य मानते है। योगसूत्र के अनुसार आत्मा वस्तुत शारीरिक बन्धना और मानसिक विकारा से मुक्त रहती है, परन्तु अज्ञान के कारण यह चित्त के साथ साथ अपना तादात्म्य कल्पित कर लेती है। भ्रमवश वह अपने को चित्त समझने लगती है। इन्द्रिय निरोध से चित्त का धारा प्रवाह बन्द हो जाता है और आत्मा को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। यही आत्मसाक्षात्कार योग का उद्देश्य है।

जैन दर्शन के अनुसार, और 'योगशास्त्र' के अनुसार भी, कर्म के अस्तित्व के आधार पर आत्मा स्वत सिद्ध होती है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार आत्मा चैतन्य स्वरूप, परिणामी, कर्ता-साक्षात्, भोक्ता एव स्वदेह परिमाण प्रतिक्षेत्र भिन्न है। आत्मा ज्ञानमय है किन्तु शरीर के बाहर आत्मा का अस्तित्व नही है। आत्मा के ज्ञान इच्छादि गुणो का शरीर में ही अनुभव होने के कारण इन गुणो की स्वामी आत्मा भी शरीर मे ही रहने वाली सिद्ध होती है। आत्मा के ज्ञानमय तथा प्रकाशमय होने के विषय मे आचार्य जी लिखते हैं कि सब प्रकार का (यथार्थ-अयथार्थ) ज्ञान स्वप्रकाशक (स्वसवेदन रूप) है अर्थात् वह स्वय अपने आपको प्रकाशित करता है। जैसे दीपक को प्रकाशन के लिए दूसरी वस्तु की अपेक्षा नही वह स्वय प्रकाशरूप है। वैसे ही ज्ञान भी स्वप्रकाश होकर ही पर प्रकाश करता है।

आचार्य हेमचन्द्र की यह उदारता उनकी परमेश्वर विषयक कल्पना मे भी दिखायी देती है। वे परमात्मा व्यक्ति के नही—उसके गुणो के पूजक हैं। "नमो क्कार" म मबसे प्रथम "नमो अरि हन्ताण" से राग-द्वेषादि आन्तरिक शत्रुओ का नाश करने वाले को नमस्कार कहा है। जैन दर्शन के निरीश्वरवादी

होते हुए भी हेमचन्द्र ईश्वरवादी—से प्रतीत होते है । वीतराग-स्तोत्रो मे उन्होने महावीर की स्तुति की है. इतना ही नही सोमनाथ के मन्दिर मे जाकर उन्होने सोमनाथ की स्तुति भी की है । सर्व साधारण के लिए वे परमेश्वर के लक्षण देते है कि सर्वज्ञ राग-द्वेषादि समस्त दोषो से निर्मुक्त त्रैलोक्यपूजित और यथा-स्थित तत्वो के उपदेशक को ईश्वर कहते हैं । वही परमेश्वर 'अर्हत्' देव है । सभी वस्तुओ के ज्ञान मे जो रुकावटें या आवरण है उनके नष्ट हो जाने पर अर्हन्मुनि का यह स्वभाव ही हो जाएगा कि वे सभी वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त करें । फिर सर्वज्ञत्व उनमे क्यो नही होगा ? ज्ञान के वर्धमान प्रकर्ष की पूर्णता जिसमे प्रकट होती है वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहलाता है । जैनो के अनुसार ईश्वर जगत का कर्ता नही है । वे यद्यपि जगत् स्रष्टा के रूप मे ईश्वर को नहीं मानते हैं फिर भी जैन-धर्म मे तीर्थङ्कर ही मानो ईश्वर है । जो-जो गुण ईश्वर के लिए आवश्यक समझे जाते है वे सभी जैन तीर्थङ्करो मे पाये जाते हैं । मार्ग-दर्शन के लिए एव अन्त प्रेरणा के लिए इन्ही की पूजा की जाती है ।

पातञ्जल योगदशन के सेश्वर होने पर भी उसमे ईश्वर के स्वरूप की विवेचना नही है । ईश्वर की उपयोगिता इसी म है कि वह भी चित्त की एकाग्रता या ध्यान के साधनो मे से एक है । इस प्रकार 'योगसूत्र' तथा 'योगशास्त्र' इस विषय मे भी पास-पास आ रहे हैं । पातञ्जल 'योगसूत्र' के अनुसार यौगिक साधन के लिए अधिकारी- पात्र व्यक्ति की जरूरत है । चाहे जो मनुष्य आसन, प्राणायाम, ध्यान-धारणा आदि नही कर सकता । मनुष्य आसन, प्राणायाम, आदि सोपान परम्परा से ही आत्मसाक्षात्कार का अनुभव कर सकता है, अन्यथा नहीं । अत पातञ्जल का योगमार्ग एक प्रकार से ऐकान्तिक हो गया है । उसके द्वार सबके लिए खुले नही है । उसमे सबको आत्मानुभूति देने का आश्वासन भी नही दिया गया है । 'योगशास्त्र' म सभी मनुष्य उनके बताये हुए मार्ग पर चल कर मुक्तावस्था या आनन्द अनुभव कर सकते हैं ।

जैन धर्म मे सब कुछ आचार-धर्म मे ही समाविष्ट है । आचार धर्म मे भी आचार्य हेमचन्द्र ने ऐकान्तिकता नही आने दी है । उनका दर्शन ससार के भिन्न-भिन्न मतो के प्रति आदरभाव रखने वाला दर्शन है । यहाँ सबके लिये द्वार खुले हैं । उनके मत के अनुसार ब्राह्मण, स्त्री, भ्रूण, गाय, इन सबकी हत्या करने से नरक भोगने के अधिकारी और ऐसे ही अन्य पापी भी योग की शरण लेकर पार उतर गये हैं । (१-१२श्लोक) अपराधियो के लिए भी यहाँ आत्मोत्थान करने का अवसर दिया गया है । 'अपराधी मनुष्य के ऊपर भी प्रभु महावीर के

नेत्र दया से तनिक नीचे झुकी हुई पुतली वाले तथा करुणावश आये हुए किंचित् आँसुओं से आर्द्र हो गये। आचार्य हेमचन्द्र के विश्व-व्यापक प्रेम ने तथा अनन्त कारुण्य ने धर्म के द्वार सबके खोल दिये हैं। जिन भगवान की व्याख्यान सभा मे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था।

आचार्य हेमचन्द्र ने सकुचित दृष्टिकोण भेद के कारण मत-मतान्तरों में संकीर्णता आ जाती है। कामराग और स्नेहराग का निवारण सुकर है; परन्तु अतिपापी दृष्टिराग का उच्छेदन तो पण्डित और साधु-सन्तो के लिए भी दुष्कर है। यह वस्तुस्थिति का सुन्दर चित्रण है। ससार के सभी वाद, सम्प्रदाय, मत इसी दृष्टिराग के ही परिणाम हैं। इस दृष्टिराग के कारण ही ससार मे अशान्ति एव दुख: दिखायी देता है। अत: विश्वशान्ति के लिए तथा दृष्टिराग के उच्छेदन के लिये आचार्य हेमचन्द्र का 'योगशास्त्र' आज भी अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। हमारे धर्म-निरपेक्ष राज्य मे साम्प्रदायिक राग का बढने के पहले ही उच्छेद वांछनीय है। हेमचन्द्र के योगशास्त्र की उपादेयता इसी मे है। कर्म आत्मा पर प्रभाव डालते हैं। कीचड में पैर डालकर फिर धोने की अपेक्षा तो कीचड़ मे पैर न डालना ही अच्छा है।

आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र मे शक्ति-सम्प्रदाय के सिद्धान्त भी जगह-जगह बिखरे मिलते हैं। श्री बालचन्द्र सूरि ने "वसन्त विलास" महाकाव्य के मंगलाचरण मे शक्ति-पद्धति का अनुमोदन किया है। श्वेताम्बर सम्प्रदायानुसार २४ तीर्थङ्कर की २४ शासनदेवता मानी जाती हैं। सरस्वती के १६ विद्याव्यूह माने जाते हैं।

जैन शासन मे तीर्थङ्कार विषयक ध्यान-योग का विधान है। उस ध्यान के धर्मध्यान और शुक्लध्यान दो मुख्य विभाग है। उसमे धर्मध्यान के ध्येयस्वरूप पर बने हुए चार विभाग हैं-(१) पिंडस्थ (२) पदस्थ (३) रूपस्थ और (४) रूपवर्जित। जिस ध्यान मे ध्येय अर्थात् ध्यान का आलम्बन पिण्ड मे हो ऐसे ध्यान को पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं। जिसमे शब्द ब्रह्म के वर्ण पद, वाक्य के ऊपर रचित भावना करनी होती है उसे पदस्थ ध्यान कहते है। जिसमे आकार वाले अर्हत की भावना होती है उसे रूपस्थ ध्यान कहते हैं और जिसमे निराकार आत्मचिन्तन होता है उसे रूपवर्जित ध्यान कहते हैं। इस चार प्रकार के ध्यान मे पृथ्वी, जल वायु आदि की धारणा का क्रम पिण्डस्थ ध्यान योग मे होता है। और इस पिण्डस्थ ध्यान मे अपनी आत्मा को सर्वज्ञकल्प (सर्वज्ञसम) और कल्याण गुण युक्त अपने देश मे सतत ध्यान करने वाले को मन्त्र मण्डल की नीची शक्तियाँ, शाकिनी, आदि

क्षुद्र योगिनियाँ बाध नही कर सकती और हिंस्र स्वभाव के प्राणी अगर उसके पास आकर खडे हो जाये तो स्तम्भित हो खडे रह जाते हैं। जैन ध्यान योग का हेमचन्द्र सूरि के अध्यात्मोपनिषद नामान्तरवाले योगशास्त्र मे अच्छी तरह से प्रतिपादन किया गया है।

पिण्डस्थ ध्यान के बाद दूसरा ध्यान पदस्थ वर्ग का होता है। इस ध्यान मे हिन्दुओ के षट्चक्र वेध की पद्धति के अनुसार वर्णमयी देवता का चिन्तन होता है। इस ध्यानयोग मे हिन्दुओ के मन्त्र शास्त्र की सम्पूर्ण पद्धति स्वीकार की हुई प्रतीत होती है। नाभिस्थान मे षोडशदल मे सोलह स्वर-मात्राएँ, हृदयस्थान मे २४ दल मे मध्य कर्णिका के साथ मे २५ अक्षर और मूल पकज मे अकचटत-पयश वर्णाष्टक को बनाकर मातृ ध्यान का विधान किया गया है। इस मातृ के ध्यान को सिद्ध करने वाले को नष्ट पदार्थों का तत्काल भान होता है। फिर नाभिरकद के नीचे अष्टदल पद्म की भावना करके, उसमे वर्गाष्टक बनाकर प्रत्येक दल की सन्धि मे माया प्रणव के साथ अर्हन् पद बनाकर, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उच्चार से नाभि, हृदय, कण्ठ आदि स्थानो को सुषुम्ना मार्ग से अपने जीव को ऊर्ध्वगामी करना और उसके अन्तर मे यह चिन्तन करना कि अन्तरात्मा का शोधन होता है। तत्पश्चात् षोडशदल पद्म मे सुधा से प्लावित अपनी अन्त-रात्मा को १६ विद्या देवियो के साथ १६ दलों मे बैठाकर यह भावना करना कि अमृत भाव मिलता है,। अन्त मे ध्यान के आवेश से "सोऽहम्" "स ऽहम्" शब्द से अपने को अर्हत् के रूप मे अनुभव करने के लिए मूर्धा मे प्रयत्न करना। इस प्रकार जो अपनी आत्मा को, जिस परमात्मा मे से राग द्वेष, मोह, निवृत हो गये है, जो सर्वदर्शी हैं और जिसे देवता भी नमस्कार करते है ऐसे धर्मदेश- धर्मोपदेश को करने वाले अर्हत् देव के साथ एकीभाव को प्राप्त हुआ अनुभव कर सके वे पिण्डस्थ ध्येय सिद्ध किये हुए समझे जा सकते है।

इस सामान्य प्रतिक्रिया के सिवाय और भी अनेक मन्त्रो की परम्परा से शक्तियुक्त आत्म स्वरूप की भावनाओ का विधान योगशास्त्र के अष्टम प्रकाश मे कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि ने किया है। इन मन्त्रो मे प्रणव (ॐ) माया (ह्रीं) आदि बीजाक्षर शक्ति-तन्त्र के जैसे के तैसे स्वीकार किये गये है। केवल मुख्य देवता रूप मे 'अरिहन्ताणम्' जैन पचाक्षरी ली गयी है। इस मन्त्र शक्ति की प्रक्रिया का हेमचन्द्रसूरि ने स्वय आविष्कार नही किया, परन्तु प्राचीन गणधरो द्वारा स्वीकृत मन्त्र सम्प्रदाय की रीति के आधार पर ही इसका वर्णन किया है। यह तथ्य उनके योगशास्त्र के ८ वे प्रकाश के अन्तिम श्लोको से स्पष्ट मालूम

होता है।

पदस्थ ध्यानयोग का फल वर्णन करते हुए हेमसूरि कहते हैं कि ध्यान से योगी वीतराग होता है। इसके अतिरिक्त श्रम को तो केवल ग्रन्थ विस्तार ही समझना चाहिये। मन्त्र विद्या के वर्ण और पद की आवश्यकता हो तो विश्लेषण करना अर्थात् बिना सन्धिवाले पदों का भी प्रयोग न लाना चाहिये क्योंकि वैसा करने से लक्ष्य वस्तु अधिक स्पष्ट होती है। इस जैन शासन में मन्त्ररूपी तत्व-रत्न का प्राचीन गणधरों के प्रमुख पुरुषों द्वारा स्वीकार किये हुए हैं। यह ज्ञान बुद्धिमानों को भी प्रकाश देते हैं। इसलिए ये मन्त्र अनेक भव के क्लेशों का नाश करने के लिए प्रकाशित किए गये हैं।

योगशास्त्र के नवम और दशम प्रकाश में रूपस्थ और रूपवर्जित ध्यान के प्रकारों का वर्णन है, परन्तु उसके साथ शक्ति-वाद का सम्बन्ध नहीं है। उसके बाद की शुक्लध्यान की प्रक्रिया भी शक्तिवाद के साथ सम्बन्ध नहीं रखती। सारांश यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि पिण्डस्थ और पदस्थ ध्यान योग में जैनों को तन्त्र-साधना और तन्त्र-शक्ति को स्वीकारा है और मूल वस्तु की शक्ति को देवता भाव से अङ्गीकार किया गया है। जैनों में भी मलिन विद्या और शुद्ध विद्या का होना सम्भव है। हेमचन्द्रसूरि ने शुद्ध विद्या पर ही जोर दिया है। श्री विटरनीत्ज अपने भारतीय साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि हेमचन्द्र का 'योगशास्त्र' केवल ध्यानयोग नहीं है अपितु सामान्य धर्माचरण की शिक्षा है। श्री वरदाचारी भी इसी प्रकार का मत प्रकट करते हैं[१]।

१—"योगशास्त्र of Hemchandra does not mean merely meditation or absorption but religions exercise in general, the whole effort which the pious must made. The work contains complete doctrine of duties The actual योग takes about 1/10 of the whole commentary. Hemchandra is well versed in Brahminical literature and quotes the verses from Manu" History of Indian Literature by Winternitz, vol II, Page 511, 569, 571 तथा योगशास्त्र gives an account of duties of Jains and rigid practices peculiar to the asectic temperma-nent of Jains"—History of Sanskrit Litrature by Varadach-ari, Page 101

हेमचन्द्र की धार्मिक आस्था का स्वरूप — धार्मिक आस्था के सम्बन्ध मे विचार करते समय यह ध्यान मे रखना चाहिये कि हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी धर्मों ने भक्ति पथ को स्वीकार किया है। यह एक अत्यन्त प्राचीन साधना-मार्ग रहा है। आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो के विवरण से यह प्रभावित होता है कि केवल स्तुति-स्तोत्र या स्तव-स्तवन ही नही पूजा, वन्दना, विनय, मगल और महोत्सव के रूप मे भी जैन भक्ति पनपती रही है। उनके मत से पूजा भक्ति का मुख्य अग है। ध्यान और भाव पूजा को एक मानकर ध्यान-भक्ति की एकता ही आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्ध की है। उसके भावपूजा, द्रव्यपूजा जैसे कई प्रकार भी बतलाये गये हैं। विनय और श्रद्धा का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। नृत्य, गायन, वादन, नाटक, रास, रथ-यात्रा इत्यादि सभी कुछ भक्त के भावो की अभिव्यक्ति है। 'योगशास्त्र' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैनो का भगवान वीतरागी है। 'पर' मे होने वाला राग ही बन्ध का हेतु है, परन्तु वीतरागी परमात्मा 'पर' नही अपितु 'स्व' आत्मा ही है। वीतराग मे किया गया अनुराग निष्काम ही है। भगवान अरहन्त या सिद्ध राग-द्वेषरहित होने पर भी भक्तो को उनकी भक्ति के अनुसार फल देते हैं। इस प्रकार परमेश्वर की स्तुति पुण्यवर्धक कर्मों को जन्म देती है। स्तुति पुण्यभोग का निमित्त है, कर्म-क्षय का नहीं। भगवान जिनेन्द्र के चरण कमल-युगल की स्तुति को एक ऐसी नदी माना है जिसके शीतल जल से कालोदग्र दावानल उपशम हो जाता है, अर्थात मोक्ष मिलता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने दर्शन ग्रन्थो मे एक ओर आत्मा के गीत गाये तो दूसरी ओर अर्हन्त के चरणो के निकट श्रद्धा के दीपक जलाये। उन्ही ने निर्गुण और सगुण जैसे खण्डो की कभी कल्पना नही की।

हेमचन्द्र के ग्रन्थो से विदित होता है कि तीर्थयात्रा से भी भक्ति पर प्रदर्शित की जाती है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार सम्राट कुमारपाल ने गिरनार की तीर्थ-यात्रा की थी। उस पर चढने के लिए सीढियाँ लगवायी थी। उसने शत्रुञ्जय तीर्थक्षेत्र के उद्धार मे १ करोड ६० लाख रुपया व्यय किया था। स्वय आचार्य हेमचन्द्र भी तीर्थ यात्रा करते थे।

तर्थङकरो के जन्म महोत्सव, रथ-यात्रा महोत्सव, इत्यादि प्रकारो से भी धार्मिक आस्था प्रकट की जाती थी। धार्मिक आस्था प्रकट करने के ये प्रकार आचार्य हेमचन्द्र को मान्य है। उन्होंने अपने महावीरचरित मे उस रथ-यात्रा महोत्सव का सरस वर्णन किया है जो सम्राट कुमारपाल ने सम्पन्न करवाया था[१]।

१—प्रतिग्राम प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले। रथयात्रोत्सव सोऽर्हत्प्रतिमाना करिष्यति
हेमचन्द्राचार्य-महावीरचरित-सर्ग १२-श्लो, ७६

"मोहराज पराजय" नाटक मे भी कुमारपाल द्वारा रथ-यात्रा महोत्सव मनाने की आज्ञा देने का उल्लेख है। श्री सोमप्रभाचार्य के 'कुमारपाल प्रतिबोध'(११८५ई.) मे तो इस महोत्सव का विशद वर्णन है।
तीर्थङ्करो के जन्मोत्सव के अवसर पर नृत्य-नाटयादिको का भी आयोजन होता था। यह भी धार्मिक आस्था प्रकट करने का एक माध्यम था। कुमारविहार मे भगवान महावीर की मूर्ति की स्थापना के अवसर पर यशपाल मोढ के"मोहराज पराजय"नाटक का प्रदर्शन हुआ था। श्री लक्ष्मीशकर व्यास का मत है कि कुमारपाल ने गुरु हेमचन्द्र से वि० स० १२१६ मे जैन धर्म की दीक्षा लेने के उपरान्त कुमारविहार का निर्माण और प्रतिष्ठा करवायी थी[1]।

"इन्द्रमहोत्सव"के प्रारम्भ से सम्बन्धित एक कथा 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' (१-६-२१४-२५) मे दी हुई है जिससे आचार्य हेमचन्द्र की धार्मिक आस्था का स्वरूप मालूम पडता है। एक बार ऋषभदेव के पुत्र भरत ने इन्द्रदेव से पूछा कि क्या आप स्वर्ग मे भी इसी रूप मे रहते है? इन्द्र ने उत्तर दिया कि वहाँ के रूप को मनुष्य देख ही नही सकता। भरत ने देखने की इच्छा प्रकट की तो इन्द्र ने अलङकारो से सुशोभित अपनी एक अगुली भरत को दी। वह जगतीरूपी मन्दिर के लिए दीपक के समान थी। राजा भरत ने अयोध्या मे उस अगुली की स्थापना कर जो महोत्सव मनाया वह 'इन्द्र महोत्सव' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह कथा आवश्यक चूर्णि (पूर्वार्ध २१३५०) और वसुदेव हिण्डी (पृ० १८४) मे भी दी हुई है।

वे जैनाचार्य होते हुए भी सोमेश्वर की यात्रा मे कुमारपाल के साथ गये थे तथा आवाहन, अवगुण्ठन, मुद्रा, मन्त्र, न्यास, विसर्जन आदि स्वरूप पचोपचार विधि से उन्होने शिव की पूजा की एव भगवान शिव को प्रत्यक्ष किया। साराश यह कि आचार्य हेमचन्द्र की धार्मिक आस्था का स्वरूप अतिविशाल एव व्यापक था।

१–श्री लक्ष्मीशकर व्यास-चौलुक्य कुमारपाल-भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५४ पृष्ठ ३३, ४०.

२–भक्ति के १२ भेद–सिद्धभक्ति,[१] श्रुतभक्ति,[२] चारित्रभक्ति,[३] योगभक्ति[४] आचार्य भक्ति,[५] पचगुरु भक्ति,[६] तीर्थङ्कर भक्ति,[७] शान्ति भक्ति,[८] समाधिभक्ति,[९] निर्माण भक्ति,[१०] नन्दीश्वर भक्ति,[११] चैत्यभक्ति,[१२]

धार्मिक साहित्य में योगशास्त्र का स्थान–सस्कृत का धार्मिक साहित्य सुदूर वैदिककाल से आरम्भ होता है। वेदो मे जो कर्मकाण्ड विषयक साहित्य है वही प्राचीनतम धार्मिक साहित्य है। यजुर्वेद तथा ब्राह्मण-ग्रन्थो से यह साहित्य विपुलता से प्राप्त होता है। उसी प्रकार स्मृतिकाल मे या सूत्रकाल मे सस्कृत मे धार्मिक साहित्य की सबसे अधिक समृद्धि हुई। इसके अन्तर्गत यज्ञसस्था को स्थिर रखने के लिए तदनुकूल आचार-धर्म पर विशेष जोर दिया गया है, तथा वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है।

इस काल मे धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत विशेषत कल्पसूत्र तथा गृह्यसूत्र आते हैं। श्रौतसूत्र अथवा कल्पसूत्र मे वेदोक्त कर्मकाण्ड का ही वर्णन है तथा गृह्यसूत्रो मे चातुर्वर्ण्यो के आचार-धर्म का वर्णन है। उसी समय बहुत से स्मृति ग्रन्थ भी लिखे गये जिनमे भी आचार-धर्म की प्रमुखता है।

जैन धर्म भी श्रमण प्रधान है जिसमे आचरण को प्रमुखता दी गयी है। केवल वैदिक कर्मकाण्ड के प्रतिबन्ध एव उसके हिंसा सम्बन्धी विधानो को छोडकर जैन धर्म एक प्रकार से ब्राह्मण धर्म को ही स्वीकार करता है। सत्य, अहिंसा, तप, त्याग, साधना, वैराग्य आदि बाते जैन धर्म मे वेदान्त के सदृश ही हैं। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो का सस्कृत के धार्मिक साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। आचार्य जी अपने योगशास्त्र मे कर्म-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करते हैं, तथा आत्म-चिन्तन के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यास पर जोर देते है। आत्मा की सत्ता एव साक्षात्कार के लिए आत्मा के विकास पर आचार्य हेमचन्द्र ब्राह्मण धर्म के समान ही जोर देते हैं। आत्मा के विकास के अनुसार ही पच–महाव्रत इत्यादि द्वादश–व्रतो का उन्होने योगशास्त्र मे वर्णन किया है। अतः हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र से न केवल जैनियो की आत्मसाधना करने की प्रेरणा की अपितु नैष्कर्म्य के प्रति आसक्त हिन्दूधर्म मे भी आत्म-साधना की प्रेरणा की। योगशास्त्र मे सभी गृहस्थो के लिए गृहस्थ जीवन मे आत्म-साधना करने की प्रेरणा दी है और इस प्रकार पुरुषार्थ से दूर रहने वाले समाज को उन्होंने पुरुषार्थ की प्रेरणा दी। उनका धर्म केवल उन पुरुषो के लिए है जो वीर और दृढचित्त है। इनका मूल मन्त्र मानो स्वावलम्बन है। इसलिए ये मुक्तात्मा को 'जिन' या 'वीर' कहते हैं।

सस्कृत का धार्मिक साहित्य अपनी घिसी-पिटी प्राचीन परम्परा को छोडकर वैष्णवधर्म अथवा भक्ति सम्प्रदाय के रूप म नया मोड ले रहा था। हेमचन्द्र का जीवन एव साहित्य इस सम्प्रदाय के साथ आचार-धर्म मे पर्याप्त साम्य रखता था। इस नयी दिशा मे सस्कृत धार्मिक साहित्य का जो विकास

हो रहा था उसमे आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो ने अपूर्व योगदान देकर विकास मे मदद दी है। उनके ग्रन्थो ने सस्कृत के धार्मिक साहित्य मे भक्ति के साथ श्रमण-धर्म का एव तदर्थ कठोर साधानायुक्त आचार धर्म का प्रचार किया। अतएव सस्कृत के धार्मिक साहित्य मे आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो का महत्वपूर्ण स्थान सदैव अक्षुण्ण रहेगा। तत्कालीन समाज मे निद्रालस्य को भगाकर जाग्रति उत्पन्न करने का श्रेय आचार्य जी के धार्मिक ग्रन्थो को भी है। उनके योगशास्त्र के अध्ययन एव अभ्यास से आध्यात्मिक प्रगति की प्रेरणा तो मिलती ही है। ऐहिक जीवन मे सात्विक जीवन व्यतीत कर दीर्घायु पाने मे एव सदाचार से आदर्श नागरिक निर्माण कर समूचे समाज को सुव्यवस्थित करने मे आचार्य हेमचन्द्र ने अपूर्व योगदान किया है। सक्षेप मे राष्ट्रोत्थान के लिए राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने मे आचार्य हेमचन्द्र के धार्मिक ग्रन्थ पूर्णतया सक्षम हैं। इस दृष्टि से सस्कृत के धार्मिक साहित्य मे आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो का स्थान सदा ही अनुकरणीय रहेगा।

जैन धर्म का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। यह अधिकाशत प्राकृत मे है। सूत्र काल मे जब अन्य दर्शनो ने जैन-मत की आलोचना की तब जैनो ने अपने मत के सरक्षण के लिए सस्कृत भाषा को अपनाया। इस प्रकार सस्कृत मे भी जैन साहित्य का विकास हुआ है। प्राचीनतम धर्म ग्रन्थो मे चतुर्दशपूर्व और एकादश अग गिनाये जाते हैं। लेकिन पूर्व ग्रन्थ अभी लुप्त हो गये है। उनके बाद क्रमश उपाग, प्रकीर्ण सूत्र, इत्यादि नाना श्रेणी के ग्रन्थ लिखे गये हैं। सस्कृत में उमास्वाति का 'तत्वार्थाधिगमसूत्र' सिद्धसेन दिवाकर का 'न्यायावतार' नेमिचन्द्र का 'द्रव्यसङ्ग्रह' मल्लिसेन की 'स्याद्वादमञ्जरी' प्रभाचन्द्र का 'प्रमेय-कमलमार्तण्ड' आदि प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के धार्मिक साहित्य का समुचित उपयोग किया और उसी परम्परा को पुष्ट करते हुए उसे विकसित करते हुए, उसे और आगे बढाया है। प्राचीन काल में जैन वर्ग तात्विक विचारो के नाम पर मानो दारिद्रय ही था। केवल बाह्यतप, अशन, त्यागपर विशेष जोर दिया जाता था। आभ्यन्तर तप मे स्वाध्याय लाचारी से आ गया था। केवल असन त्याग से शरीर तो जीर्ण होता ही है, मन भी जीर्ण, कृशकाय, मरणासन्न हो जाता है, यह प्रतीति जैन पुराण पुरुष को दूसरो की अपेक्षा बहुत विलम्ब से हुई। उमा-स्वाति ने सर्व प्रथम इस अनुभूति को व्यक्त किया। उमास्वाति से जैन देह में दर्शनात्मा ने प्रवेश किया। शुद्ध ज्ञान की चेतना प्रस्फुटित हुई जो आगे

कुन्दकुन्द, सिद्धसेन, अकलंक, विद्यानन्द, हरिभद्र, यशोविजय आदि के रूप में विकसित होती गयी[1]।

इसी ज्ञान की चेतना को आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी तर्कशुद्ध एवं तर्कसिद्ध तथा भक्ति युक्त सरस वाणी के द्वारा विकास की परमोच्च चोटी पर पहुँचा दिया। इन्होंने पुरानी जडता को जडमूल से उखाड फेंक दिया, एवं आत्मविश्वास का सञ्चार किया। और इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों ने जैन धर्म के साहित्य में समृद्धि तो की है, साथ ही इसमें उत्कृष्टता लाये। जैन धर्म के साहित्य में उनके ग्रन्थों का स्थान अपूर्व है। और उनके ग्रन्थों के कारण ही जैन धर्म गुजरात में तो दृढमूल हुआ ही भारतवर्ष में सर्वत्र, विशेषत मध्य-प्रदेश में, जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में आचार्य हेमचन्द्र तथा उनके ग्रन्थों ने अभूतपूर्व योगदान किया है। इस दृष्टि से जैन धर्म के साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का स्थान अमूल्य हैं।

—•—

१—जैन दर्शन—मुनि श्री न्याय विजय जी-प्राक्कथन, शान्तिलाल

अध्याय : ७

उपसंहार

भारतीय साहित्य को हेमचन्द्र की देन

आचार्य हेमचन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा

नमोऽस्तु हेमचन्द्राय विशदा यस्य धी-प्रभा
विकासयति सर्वांणि शास्त्राणि कुमुदानिव ॥१॥

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र – जिन्हें पश्चिमी विद्वान् आदरपूर्वक 'ज्ञान का सागर' (Ocean of Knowledge) कहते हैं – संस्कृत जगत् में विशिष्ट स्थान रखते हैं। संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य के मूर्धन्य प्रणेता, आचार्य हेमचन्द्र का व्यक्तित्व जितना गौरवपूर्ण है, उतना ही प्रेरक भी है। 'कलिकालसर्वज्ञ' उपाधि से उनके विशाल एवं व्यापक व्यक्तित्व के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। न केवल अध्यात्म एवं धर्म के क्षेत्र में अपितु साहित्य एवं भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा का प्रकाश समान रूप से विस्तीर्ण हुआ। इनमें एक साथ ही वैयाकरण, आलङ्कारिक, दार्शनिक, साहित्यकार, इतिहासकार, पुराणकार, कोषकार, छन्दोऽनुशासक, धर्मोपदेशक और महान् युगकवि का अन्यतम समन्वय हुआ है। आचार्य हेमचन्द्र का व्यक्तित्व सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं विश्वजनीन रहा है, किन्तु दुर्भाग्यवश अभीतक उनके व्यक्तित्व को सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित रखा गया। सम्प्रदायरूपी मेघों से आच्छन्न होने के कारण इन आचार्य सूर्य का आलोक सम्प्रदायेतर जन-

साधारण तक पहुँच न सका। स्वय जैन सम्प्रदाय मे भी साधारण बौद्धिक स्तर के लोग आचार्य हेमचन्द्र के विषय मे अनभिज्ञ हैं। किन्तु आचार्य हेमचन्द्र का कार्य तो सम्प्रदायातीत और सर्वजनहिताय रहा है। और इस दृष्टि से वे अन्य सामान्य जन, आचार्यों एव कवियो से कही बहुत अधिक सम्मान एव श्रद्धा के अधिकारी हैं।

भारतीय इतिहास मे १२ वी शताब्दी अर्थात् हेमचन्द्र-युग जैन सस्कृति के जयघोष का युग है। इस समय तक धर्म, आचार और चिन्तन के क्षेत्रो को नियमित और निर्देशित करने वाले शास्त्रो और सूत्र-ग्रन्थो का प्रणयन हो चुका था एव जन-जीवन की जान्हवी जैन आगमो की उपत्यका से उतर कर लोकभाषा की सपाट समतल भूमि पर विचरण करने लगी थी। विस्तार ने उसका वेग तथा भू-विल्विप कर्दम ने उसका नैर्मल्य कुछ क्षीण कर दिया था। आचारांगादि आगम सूत्रो के उभयतटस्पर्शी तुङग कगारो के बीच उसका प्रवाह यद्यपि अपेक्षाकृत आवद्ध था फिर भी उसकी शीतल मधुर पावन फुहार की आह्लाद-दायिनी शक्ति मे रचमात्र की कमी न आने पायी थी।

हेमचन्द्र सच्चे अर्थ मे आचार्य थे। आचार्य किसे कहते हैं ? आचार्य आचार ग्रहण करवाता है, आचार्य अर्थों की वृद्धि करता है या बुद्धि बढाता है। आचार्य के तीनो धर्मों का समावेश इसम हुता है। आजकल की परिभाषा के अनुसार आचार्य शिष्य वर्ग को शिष्टाचार तथा सद्वर्तन सिखाता है। विचारो की वृद्धि करता है। जो इस प्रकार बुद्धि की वृद्धि करता है। जो चरित्र तथा बुद्धि का विकास करने मे समर्थ हो, वह आचार्य है। इस अर्थ मे आचार्य हेमचन्द्र गुजरात के एक प्रधान आचार्य हो गये, यह नि सन्देह है। यह बात उनके जीवन-कार्य का और लोक मे उसके परिणाम का इतिहास देखने से स्पष्ट हो जाती है। आचार्य के सभी गुण हेमचन्द्र मे विद्यमान थे।

सस्कृत साहित्य और विक्रमादित्य के इतिहास मे जो स्थान कालिदास का और श्री हर्ष के दरबार मे जो स्थान बाणभट्ट का है, प्राय वही स्थान १२ वी शताब्दी मे चौलुक्य वशोद्भव सुप्रसिद्ध गुर्जर नरेन्द्र शिरोमणि सिद्धराज जयसिंह के इतिहास मे श्री हेमचन्द्राचार्य का है। आचार्य हेमचन्द्र अनेक विद्याओ तथा शास्त्रो मे निष्णात थे। श्री सोमप्रभसूरि ने शतार्थकाव्य मे इनका गौरव पूर्वक उल्लेख किया है –"विद्याभोनिधि मथ मदर गिरि श्री हेमचन्द्रो गुरु"। ग्रन्थो की सर्वांगपूर्णता वैज्ञानिकता और सरलता की दृष्टि से इनका स्थान अद्वितीय है। निखिलशास्त्र निपुणता तथा बहुज्ञता के कारण उन्होने कलिकाल-

सर्वज्ञ की उपाधि प्राप्त की थी। उनकी योग्यता, उनकी क्षमता, उनका जीवन, उनका कार्य, उनका आचार–व्यवहार–चरित्र सभी गुण शतप्रतिशत आचार्य के समान थे।

आचार्य के साथ-साथ वे कलिकाल-सर्वज्ञ भी थे। महान् विद्वान् के साथ-साथ वे चमत्कारी पुरुष थे। योगसिद्ध होने से उन्होंने अनेक अलौकिक बातें क्रियान्वित की थी। आचार्य हेमचन्द्र मन्त्र-विद्या में पारङ्गत थे किन्तु उन्होंने उसका उपयोग सासारिक वैभवो की प्राप्ति मे कभी नहीं किया। उनके पास विद्याएँ थी, मत्र थे और उन्हें देवियां सिद्ध थीं। किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने उनका कभी रागात्मक प्रयोग नही किया। हेमचन्द्राचार्य स्वय चमत्कारसिद्ध पुरुष थे फिर भी वे लोगो को चमत्कार के जाल मे मोहित करना नही चाहते थे। उनकी धार्मिक आस्था मूलरूप से बुद्धिवाद पर ही थी। हेमचन्द्र यद्यपि बुद्धिवादी प्रकाण्ड पण्डित थे फिर भी अलौकिक शक्ति पर उनका विश्वास था और वे अलौकिक शक्तियुक्त स्वय भी थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता कुमारपाल की बीमारी अपनी मन्त्र-शक्ति से दूर की थी। वृद्धावस्था मे लूता रोग हो जाने पर अष्टागयोगाभ्यास द्वारा लीला के साथ उन्होंने उस रोग को नष्ट कर दिया था[१]। 'प्रभावकचरित' (४–११४–१२७) मे जोणिपाहुड (योनिप्राभृत) के बल से मछली और सिंह उत्पन्न करने की तथा 'विशेषावश्यकभाष्य' (गाथा १७७५) की हेमचन्द्र–सूरि कृत टीका मे अनेक विजातीय द्रव्यो के सयोग से सर्प, सिंह आदि प्राणि और मणि, सुवर्ण आदि अचेतन पदार्थो के पैदा करने का उल्लेख मिलता है। आज भी पाटन मे उनकी अलौकिक शक्तियो के सम्बन्ध मे नाना-प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। वैसे भी ३॥ करोड पंक्तियो के विराट साहित्य का एक व्यक्ति के द्वारा सृजन करना स्वय मे असाधारण बात है। आचार्य हेमचन्द्र अपने भव्य व्यक्तित्व के रूप मे एक जीवित विश्वविद्यालय अथवा मूर्तिमान ज्ञानकोष थे। उन्होंने ज्ञानकोष के समकक्ष विशाल ग्रन्थ सङ्ग्रह का भी भावी पीढी के लिये सृजन किया था

प्रो० पारीख इन्हें 'Intellectual giant' कहा है। वे सचमुच 'लक्षण' साहित्य तथा तर्क' अर्थात व्याकरण, साहित्य तथा दर्शन के असाधारण आचार्य थे। वे सुवर्णाभ कान्ति के तेजस्वी, आकर्षक, व्यक्तित्व को धारण करने वाले महापुरुष थे। वे तपोनिष्ठ थे, शास्त्रवेत्ता थे तथा कवि थे। व्यसनो को छुडाने मे वे प्रभावकारी सुधारक भी थे। उन्होंने जयसिंह और कुमारपाल की

१—प्रबन्धचिन्तामणि–हेमप्रबन्ध

सहायता से मद्यनिषेध सफल किया था। उनकी स्तुतियाँ उन्हें सन्त सिद्ध करती हैं, तथा आत्म-निवेदन उन्हें योगी सिद्ध करता है। वे सर्वज्ञ के अनन्य उपासक थे।

आचार्य हेमचन्द्र के दिव्य जीवन में पद-पद पर हम उनकी विविधता, सार्वदेशीयता, पूर्णता, भविष्यवाणियों में सत्यता और कलिकाल-सर्वज्ञता देख सकते हैं। उन्होंने अपनी ज्ञान-ज्योत्स्ना से अंधकार का नाश किया। वे महर्षि, महात्मा, पूर्ण संयमी, उत्कृष्ट जितेन्द्रिय एवं अखण्ड ब्रह्मचारी थे। वे निर्भय, राजनीतिज्ञ, गुरुभक्त, मातृभक्त, भक्तवत्सल तथा वादिमानमर्दक थे। वे सर्वधर्मसमभावी, सत्य के उपासक, जैन धर्म के प्रचारक तथा देश के उद्धारक थे। वे सरल थे, उदार थे, निस्पृह थे। सबकुछ होते हुए भी, प्रो० पीटर्सन के शब्दों में, दुनिया के किसी भी पदार्थ पर उनका तिलमात्र मोह नहीं था। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में विद्वत्ता की झलक, ज्ञानज्योति का प्रकाश, राजकार्य में औचित्य, अहिंसा प्रचार में दीर्घदृष्टि, योग में स्वानुभव का आदर्श, प्रचार-कार्य में व्यवस्था, उपदेश में प्रभाव, वाणी में आकर्षण, स्तुतियों में गांभीर्य, छन्दों में बल, अलंकारों में चमत्कार, भविष्यवाणी में यथार्थता एवम् उनके सम्पूर्ण जीवन में कलिकाल-सर्वज्ञता झलकती है[1]।

आचार्य हेमचन्द्र जैनाचार के प्रति केवल आस्थावान ही नहीं थे अपितु स्वयं भी एक सूरि का जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने अपने प्रभाव एवम् उपदेश से ३३००० कुटुम्ब अर्थात् लगभग १॥ लाख व्यक्ति जैन धर्म में दीक्षित किये। इतना सब होते हुए भी हेमचन्द्राचार्य प्रकृति से सन्त थे। सिद्धराज जयसिंह एवम् कुमारपाल की राज्यसभा में रहते हुए भी उन्होंने राज्यकवि का सम्मान ग्रहण नहीं किया। वे राज्यसभा में भी रहे तो आचार्य के रूप में ही। गुजरात का जीवन उन्नत करने के लिये उन्होंने अहिंसा और तत्वज्ञान का रहस्य जन-साधारण को समझाया, उनसे आचरण कराया और इसीलिये अन्य स्थानों की अपेक्षा गुजरात में आज भी अहिंसा की जड़ें अधिक मजबूत हैं। गुजरात में अहिंसा की प्रबलता का श्रेय आचार्य हेमचन्द्र को ही है। गुजरात ने ही आचार्य हेमचन्द्र को जन्म दिया तथा गुजरात ने ही आगे जाकर महात्मा गाँधी को जन्म दिया। यह दैवी घटनाओं का चमत्कार प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में आचार्य हेमचन्द्र ने अपने दिव्य आचरण से, प्रभावकारी प्रचार एवं उपदेश से महात्मा गाँधी के जन्म की पृष्ठभूमि ही मानो तैयार की थी।

भारत के इतिहास में यदि सर्वथा मद्यविरोध तथा मद्यनिषेध हुआ है

१—हेमचन्द्राचार्य— ईश्वरलाल जैन-आदर्श ग्रन्थमाला, मुलतान।

तो वह सिद्धराज एवं कुमारपाल के समय मे ही । इसका श्रेय नि सन्देह पूर्णतया आचार्य हेमचन्द्र को ही है । उस समय गुजरात की शान्ति, तुष्टि, पुष्टि एवम् समृद्धि के लिये आचार्य हेमचन्द्र ही प्रभावशाली कारण थे । इनके कारण ही कुमारपाल ने अपने आधीन अठारह बडे देशो मे चौदह वर्ष तक जीवहत्या का निवारण किया था । कर्णाटक, गुर्जर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्धु, उच्च भमेरी, मरुदेश, मालव, कोंकण, कीर जागलक, सपादलक्ष, मेवाड दिल्ली और जालधर देशों मे कुमारपाल ने प्राणियो को अभयदान दिया और सातों व्यसनो का निषेध किया ।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने पाण्डित्य की प्रखर किरणो से साहित्य, संस्कृति और इतिहास के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित किया है । वे केवल पुरातन पद्धति के अनुयायी नही थे । जैन साहित्य के इतिहास मे 'हेमचन्द्र युग' के नाम से पृथक समय अंकित किया गया है तथा उस युग का विशेष महत्व है । वे गुजराती साहित्य और संस्कृति के आद्य-प्रयोजक थे । इसलिये गुजरात के साहित्यिक विद्वान् उन्हे गुजरात का "ज्योतिर्धर" कहते हैं । उनका सम्पूर्ण जीवन तत्कालीन गुजरात के इतिहास के साथ गुथा हुआ है । उन्होंने अपने ओजस्वी और सर्वाङ्गपरिपूर्ण व्यक्तित्व से गुजरात को सवारा है, सजाया है और युगयुग तक जीवित रहने की शक्ति भरी है । 'हेम सारस्वत सत्र' उन्होंने सर्वजनहिताय प्रकट किया । क० मा० मुन्शी ने उन्हे गुजरात का चेतनदाता "Creator of Gujarat consciousness" कहा है[1] ।

'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' की प्रशस्ति मे उन्होने कहा है कि व्याकरण की रचना तो सिद्धराज जयसिंह के अनुरोध पर की गयी किन्तु द्वयाश्रय, काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन, योगशास्त्र आदि की रचना 'लोकाय' लोगो के लिये की गयी । यहा 'लोकाय' का अर्थ 'साम्प्रदायिक मनोवृति के लोग जैन' किया जाता है, किन्तु नि सन्देह आचार्य हेमचन्द्र के सम्मुख जो श्रोतृवृन्द अथवा पाठकवर्ग था वह जैन सम्प्रदाय से अधिक व्यापक था । उसमे सभी धर्मों के सभी सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित थे ।

आचार्य हेमचन्द्र कलात्मक निर्माण के भी प्रेरक थे । इनकी प्रेरणा से पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर भारत मे अनेक मन्दिरो एवं विहारों का निर्माण हुआ । सिद्धपुर मे सिद्धराज ने रूद्रमहालय प्रासाद बनवाया । यह २३ हाथ ऊँचा

१—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास—मो द देसाई तथा गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—क. मा मुन्शी

सर्वाङ्गपूर्ण प्रासाद है। उस प्रासाद मे अश्वपति, गजपति, नरपति इत्यादि बड़े-बड़े राजाओं की मूर्तियाँ बनवाकर हैं और उनके सामने हाथ जोड़े हुए अपनी मूर्ति भी बनवायी है। सिद्धराज ने सहस्रलिङ्ग सरोवर बनवाया। कुमारपाल ने सोमेश्वर-सोमनाथ मन्दिर का उद्धार किया। कुमारपाल ने १४४० नये विहार बनवाये। त्रिभुवनपाल विहार मे पार्श्वनाथ की मूर्ति की स्थापना करवायी। इसके अतिरिक्त मूषक विहार, यूकाविहार, करम्वकविहार, झोलिका विहार आदि विहार बनवाये। संसार-प्रसिद्ध ऐतिहासिक सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निर्माण आचार्य हेमचन्द्र की प्रेरणा से ही हुआ था। 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' मे इसका उल्लेख है। पञ्चकूल के मन्दिर का निर्माण पूर्ण हो जाने पर आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल दोनो ही देवदर्शन करने के लिये गये थे। आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव एव प्रेरणा से गुजरात तथा राजस्थान मे बने मन्दिर एव विहार कला के उत्कृष्ट नमूने है। उनमे वास्तुकला की सारी शैलियो का समावेश हुआ है। उस समय के स्थापत्य निर्माण मे द्राविड़ तथा आर्य-शैलियो का समन्वय किया गया है। जैनो द्वारा निर्मित कीर्तिस्तम्भ अथवा मन्दिरों में पथ के रूप से निर्मित स्तम्भ उनकी कला के यश के परिचायक हैं। स्तम्भ पर नक्काशी भी पायी जाती है[१]। आबू पहाड़ पर स्थित श्वेत पाषाणो से बना हुआ जैन मन्दिर स्थापत्य के वैभव का सूचक है। मन्दिरो के गुम्बद अष्ट-कोणीय हैं। मेहराबो की रचना कुछ इस तरह की है जिससे आठो स्तम्भ उस गुम्बद के अन्तरङ्ग की शोभा बढाते हैं। इस गुम्बद के भीतरी भाग के अलङ्कार चक्र एकहरे, दोहरे, तिहरे होकर गुम्बद के केन्द्र तक पहुँचे हैं। इस अलङ्कार चक्र का वैचित्र्य तथा उसकी समृद्धि दोनो उच्चकोटि की सुरुचि का सवर्धन तथा पोषण करते हैं। गुजरात के बडनगर के सुन्दर तोरणो या प्रवेश द्वार की भव्यता, खुदाई की अनुपम पटुता तथा शोभा भारतीय स्थापत्यकला को ससार की आखो मे नि सन्देह ऊ चा उठाती है। इस युग मे भवन-निर्माण में भी जैनो ने काफी रुचि बतलायी और इस सब के प्रेरणास्रोत आचार्य हेमचन्द्र थे।

व्याकरण शास्त्र मे हेमचन्द्र का योगदान—मालव और गुजरात मे राजनीतिक ईर्ष्या शताब्दियो से चली आ रही थी। राजनीतिक ईर्ष्या की यह भावना आगे जाकर साहित्यिक तथा सास्कृतिक क्षेत्र तक व्यापक हो गयी थी। भोजदेव के लगभग ८० वर्ष पश्चात् गुजरात के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह मालवा के भोजवशीय राजा यशोवर्म देव को युद्ध मे परास्त करके अवन्तिनाथ कहलाने लगा

१—प्रबन्धचिन्तामणि तथा भारतीय वास्तुशास्त्र पृ. ७२—डी. एन. शुक्ल।

था। उस समय सिद्धराज जयसिंह उज्जैन मे आये। 'प्रभावक चरित' के अनुसार जब अधिकारीगण सिद्धराज जयसिंह को उज्जैन का ग्रन्थालय दिखा रहे थे तब इनकी दृष्टि व्याकरण ग्रन्थ पर पडी। हेमचन्द्राचार्य ने बतलाया, यह शब्द-शास्त्र पर ग्रन्थ है। इसी तरह अलङ्कारशास्त्र, दैवज्ञशास्त्र, तर्कशास्त्र, इत्यादि के ग्रन्थ वे बताते रहे। राजा ने पूछा, 'क्या हमारे यहाँ कोई विद्वान नहीं जो इस प्रकार शास्त्रीय ग्रन्थ रचना कर सके'। सब लोग हेमचन्द्राचार्य की तरफ देखने लगे। राजा ने हेमचन्द्र से इस सम्बन्ध मे पुन पुन प्रार्थना की' तब हेमचन्द्र ने कहा, 'कर्तव्यनिर्देश के लिये आपने शब्द पर्याप्त हैं। भारतीय देवी के ग्रन्थालय मे ८ व्याकरण ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थो को काश्मीर से मगाइये'। तत्पश्चात् हेमचन्द्र ने उपलब्ध विभिन्न व्याकरणो का सम्यक् अध्ययन कर सिद्धराज जयसिंह के नाम के साथ जोडकर "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक ग्रन्थ रचा।

जितने प्राचीन आर्य व्याकरण बने उनमे सम्प्रति एकमात्र पाणिनीय व्याकरण ही साङ्गोपाङ्ग उपलब्ध होता हैं। पाणिनि के पश्चात् कई शताब्दियो तक व्याकरण के क्षेत्र मे पाणिनि का ही साम्राज्य रहा है। वार्तिककार कात्यायन तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने बहुमूल्य ग्रन्थो से पाणिनि का ही गौरव बढाया है। कैयट ने 'महाभाष्य प्रदीप' लिखकर तथा जयादित्य वामन ने 'काशिका-वृत्ति' लिखकर, जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' ग्रन्थ लिखकर इस परम्परा को परमोच्च चोटी तक पहुँचाया, किन्तु इस परम्परा मे कुछ परिवर्तन कर, व्याकरण की नयी प्रणाली को जन्म देने का श्रेय आचार्य हेमचन्द्र को ही है।

पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' मे प्रक्रियानुसार प्रकरण रचना नही है। कातन्त्र की प्रक्रियानुसारी परम्परा को पुनरुज्जीवित कर आचार्य हेमचन्द्र ने व्याकरण के क्षेत्र मे स्वय का एक 'हैम सम्प्रदाय' निर्माण किया। हेमचन्द्र के प्रकरणानुसारी 'सिद्धहैम' अथवा 'शब्दानुशासन' का परवर्ती वैयाकरणो पर इतना प्रभाव हुआ कि पाणिनिय वैयाकरणो ने भी अष्टाध्यायी की प्रक्रिया पद्धति से पठन-पाठन की नयी प्रणाली का अविष्कार किया।

सोलहवी शताब्दी के बाद तो पाणिनीय व्याकरण की समस्त पठन-पाठन प्रक्रिया ग्रन्थानुसार होने लगी। सूत्रपाठ, क्रमानुसारी पठन-पाठन शनै शनै उच्छिन्न हो गया। अष्टाध्यायी क्रम से पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन प्राय लुप्त हो गया।

आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण की पहली विशेषता यह है कि उन्होने व्याकरण से सम्बद्ध सभी अङ्गों का प्रवचन स्वय ही किया है। आचार्य हेमचन्द्र

ने अपने व्याकरण की बृहद् वृत्ति मे कतिपय शिक्षासूत्रो को उद्धृत किया है। व्याकरण की रचना मे यह असामान्य बात है। 'शब्दानुशासन' की दूसरी विशेषता यह है कि सस्कृत व्याकरण के साथ ही साथ वह प्राकृत तथा अपभ्रंश का भी प्रामाणिक व्याकरण है। उन्होंने अपने व्याकरण पर दो वृत्तिया लिखी है, एक लघुवृत्ति तथा दूसरी बृहद्वृत्ति। इसके अतिरिक्त स्वोपज्ञवृत्ति सहित धातुपारायण उणादि तथा लिङ्गानुशासन भी उन्होंने लिखा है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण पर एक बृहन्न्यास भी लिखा है। पण्डित भगवानदास ने इसका अन्वेषण तथा सम्पादन किया है। कहते हैं कि उसमे ८४,००० हजार श्लोक थे। सम्पादित अंश को देखकर हम उसकी सत्यता के विषय मे निश्चित अनुमान कर सकते है।

इतनी विशाल एवं विराट् कृति को आश्चर्य जनक रूप से आचार्य जी ने अकेले ही सृजित किया है। हेमचन्द्र का व्याकरणशास्त्र में यह योगदान महत्वपूर्ण है। किन्तु शब्दानुशासन को ही सम्पूर्ण न मानकर शब्दशास्त्र की सम्पूर्णता के लिये उन्होने चार कोश ग्रन्थ लिखे। इतने पर भी आचार्य हेमचन्द्र ने विश्राम नहीं किया। उन्होंने अपने व्याकरण की सोदाहरण व्याख्या करने के लिए शास्त्रकाव्य की भी रचना की। व्याकरण के क्षेत्र मे इतना विशाल योगदान पतञ्जलि के बाद अन्य किसी भी वैयाकरण ने नही किया।

प्राकृत व्याकरण मे अपभ्रंश का प्रकरण तो उनकी अन्यतम विशेषता है ही किन्तु अपभ्रंश के जो उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किये है वे अपभ्रंश साहित्य के मौलिक रत्न भी हैं। हेमचन्द्र प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के उच्चकोटि के आचार्य थे। अपभ्रंश तथा आचलिक बोलियो तथा विभिन्न विषयो का इतना बडा विशेषज्ञ उस युग मे और कोई नही हुआ। पाणिनि और सायण से इनका महत्व किसी प्रकार कम नही था।

अपभ्रंश भाषा और साहित्य को हेमचन्द्र की देन— अपभ्रंश शब्द का अर्थ है शिष्टेतर या शब्द का बिगडा हुआ रूप। यह शब्द अपाणिनीय रूप के लिये प्रयुक्त होता था। अपभ्रंश मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ की बीच की कड़ी है, जिसका अधिक लगाव परवर्ती अर्थात् भारतीय आर्य भाषाओ से है। अपभ्रंश के अनेक नाम मिलते हैं, यथा अपभ्रंश, अवहश, अपभ्रष्ट, अवहट्ट इत्यादि।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य मे लिखा है कि, "भूयासोऽपशब्दाः अल्पीयासः शब्दा.। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशा. तद्यथा-गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः"। अर्थात् अपशब्द

बहुत और शब्द (शुद्ध) थोडे हैं, क्योंकि एक-एक शब्द के बहुत अपभ्रंश है, जैसे गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि अपभ्रंश हैं। यहाँ पर 'अपभ्रंश' शब्द अपशब्द के अर्थ मे ही व्यवहृत है, और अपशब्द अर्थ भी सस्कृत व्याकरण से असिद्ध शब्द है। उक्त उदाहरणो मे गावी, गोणी इन दो शब्दो का प्रयोग प्राचीन जैन सूत्र ग्रन्थो मे पाया जाता है[1]। चण्ड तथा आचार्य हेमचन्द्र आदि प्राकृत वैयाकरणो ने भी ये दो शब्द अपने-अपने प्राकृत व्याकरणो मे लक्षण द्वारा सिद्ध किये हैं[2]। दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में पहले प्राकृत और अपभ्रंश का अलग-अलग निर्देश करते हुए काव्यो में व्यवहृत आभीर प्रभृति की गाथा को अपभ्रंश कहा है और बाद में यह लिखा है कि 'शास्त्र में सस्कृत भिन्न सभी भाषायें अपभ्रंश कही गयी हैं[3]। प्राकृत वैयाकरणो के मत में अपभ्रंश भाषा प्राकृत का ही एक अवान्तर भेद है। 'काव्यालकार' की टीका में नमिसाधु ने लिखा है कि "प्राकृतमेवापभ्रंश" (२–१२) अर्थात् अपभ्रंश भी शौरसेनी, मागधी आदि की तरह एक प्रकार की प्राकृत ही है। उक्त क्रमिक उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि पतञ्जलि के समय में जिस अपभ्रंश शब्द का 'सस्कृत व्याकरण असिद्ध' इस सामान्य अर्थ में प्रयोग होता था उसने आगे जाकर क्रमश. प्राकृत का एक भेद के विशेष अर्थ को धारण किया।

अपभ्रंश भाषा के निदर्शन 'विक्रमोर्वशीयम्' 'धर्माभ्युदय' आदि नाट्य-ग्रन्थो में, 'हरिवशपुराण' (स्वयम्भू), 'पउमचरिउ' (स्वयम्भू), 'भविसयत्तकहा' (धनपाल), 'सजम मजरी', 'महापुराण' (जिनसेन), 'जसहर चरिउ', 'णाय-कुमार चरिउ' (पुष्पदन्त), 'कथाकोष' (हरिषेण), 'पार्श्वपुराण' (चन्द्रकीर्ति), 'सुदसण-चरिउ' (नयनदि), 'करकड चरिउ' (कनकामर), 'जयतिहुअणस्तोत्र', 'विलासवईकहा', 'सणकुमार चरिउ' (हरिभद्र), 'सुपासनाहचरित', 'कुमारपाल चरित' (हेमचन्द्र), 'कुमारपाल प्रतिबोध', 'उपदेशतरगिणी', प्रभृति काव्य ग्रन्थो में 'प्राकृत लक्षण', 'सिद्धहेम शब्दानुशासन' (अष्टम अध्याय), 'सक्षिप्तसार', 'षड्भाषाचन्द्रिका', 'प्राकृत सर्वस्व' आदि व्याकरणो मे और 'प्राकृत पिङ्गल', 'छन्दोऽनुशासन' आदि छन्द-ग्रन्थो में पाये जाते हैं। अधिकतर अपभ्रंश साहित्य जैन भाण्डागारों में प्राप्त हुआ है अर्थात् अधिकतर जैन अपभ्रंश साहित्य सामने आया है। जैनो द्वारा रचित पुराणसाहित्य,आख्यानक काव्य,कथा-काव्य

१— खारीगियाओ गावीओ, गोण वियाल (आचा २,४,५), गोवीण सगेल्ल (व्यवहारसूत्र उ ४) णगरगावीओ (वि पा १,२—पम २६)
२— प्राकृत लक्षण २,१६ तथा हे. प्रा. २, १७४
३— काव्यादर्श १–३६

और उपदेशात्मक धार्मिक और खडनमडनात्मक प्रशस्तिमूलक रचनाएँ मिली है। इतना ही नही, इनके अतिरिक्त मुक्तको के रूप मे विशुद्ध लौकिक शृङगारिक काव्य भी मिले है।

डॉ होर्नेलि के मत मे आर्यों की कथ्यभाषाएँ भारत के आदिमनिवासी अनार्य लोगो की भिन्न-भिन्न भाषाओ के प्रभाव से जिन रूपान्तरो को प्राप्त हुई थी वे ही भिन्न-भिन्न अपभ्र श भाषाएँ । सर ग्रियर्सन प्रभृति आधुनिक भाषा-तत्वज्ञ इसको स्वीकार नही करते । इनके मत से व्याकरण नियमित भिन्न-भिन्न प्राकृत भाषाएँ जनसाधारण मे अप्रचलित होने के कारण जिन नूतन कथ्य-भाषाओ की उत्पत्ति हुई थी, वे ही अपभ्र श भाषाएँ है[1] । ये अपभ्र श भाषाएँ ईसवी पचम शताब्दी के बहुत काल पूर्व से ही व्यवहृत होती थी । महाकवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक मे अपभ्र श के रूप पाये जाते हैं । अत. कालिदास के समय से ही अपभ्र श भाषाएँ साहित्य मे स्थान पाने लगी थी, यह स्पष्ट है । ये अपभ्रंश भाषाएँ प्रायः दशम शताब्दी पर्यन्त साहित्य की भाषाएँ थी । इन अपभ्रंश भाषाओ की मूल वे विभिन्न प्राकृत भाषाएँ हैं जो भारत के विभिन्न प्रदेशो मे पूर्वकाल मे प्रचलित थी ।

अपभ्रंश के बहुत भेद हैं । 'प्राकृतचन्द्रिका' मे इसके २७ भेद बताये गये हैं । मार्कण्डेय ने अपने 'प्राकृत सर्वस्व' मे इन भेदो को नगण्य कहकर समस्त अपभ्रंशो, को नागर, व्राचड, उपनागर, इन तीन प्रधान भेदो मे ही विभाजित किया है । जिन अपभ्र श साहित्य मे निबद्ध होने से जो रूप पाये जाते हैं उनके लक्षण और उदाहरण आचार्य हेमचन्द्र ने केवल अपभ्र श के सामान्य नाम से और मार्कण्डेय ने अपभ्रंश के तीन विशेष नामो से दिये हैं । आचार्य हेमचन्द्र ने 'अपभ्र श' इस सामान्य नाम से जो उदाहरण दिये है वे राजपूताना तथा गुजरात प्रदेश के अपभ्र श से ही सम्बन्ध रखते हैं । व्राचडापभ्र श सिन्ध प्रदेशीय अपभ्र श से सम्बद्ध है । इसके सिवाय शौरसेनी अपभ्र श के निदर्शन मध्यदेश के अपभ्र श मे पाये जाते हैं ।

महाराष्ट्री प्राकृत मे व्यञ्जनो का लोप सर्वापेक्षा अधिक है । अपभ्रंश मे उक्त नियम का व्यत्यय देखने मे आता है । महाराष्ट्री मे जो व्यञ्जन वर्ण-लोप देखा जाता है अपभ्र श मे उसकी अपेक्षा अधिक नही, कम ही वर्णलोप पाया जाता है । ऋ, सयुक्त र कार भी विद्यमान है । वर्णलोप की गति ने महाराष्ट्री को स्वर बहुल आकार मे परिणत कर दिया था । अपभ्र श में उसी

[1]—वगीय साहित्य परिषद पत्रिका, १३१७

की प्रतिक्रिया आरम्भ हुई और प्राचीन स्वर-व्यञ्जनों को फिर स्थान देकर भाषा को भिन्न आदर्श में गठित करने की चेष्टा हुई। प्रादेशिक अपभ्रंश भाषाएं साहित्य की भाषाओं के रूप में उन्नत होने लगी। "सुभव्योऽपभ्रंश. सरसरचन भूतवचनम्"[१] अपभ्रंश भाषा भव्य है, पैशाची की रचना रसपूर्ण है।

अपभ्रंश साहित्य की रचनाएं मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में मिलती हैं। जैनो द्वारा लिखित तीन प्रकार की प्रबन्धात्मक अपभ्रंश रचनाएँ मिलती हैं— पुराण साहित्य, चरितकाव्य तथा कथाकाव्य। विशुद्ध लौकिक शृंगारिक अपभ्रंश काव्य आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो में मुक्तको के रूप में तथा सन्देश रासकादि के रूप में मिलता है। आचार्य हेमचन्द्र के साहित्य में 'कुमारपाल चरित', '*प्राकृत शब्दानुशासन*' का अन्तिम भाग, 'छन्दोऽनुशासन' तथा देशी नाममाला में अपभ्रंश पद्य पाये जाते हैं जिनसे उस कालतक के अपभ्रंश साहित्य का भी अनुमान किया जा सकता है। हेमचन्द्र के 'कुमारपाल चरित' नामक प्राकृत द्वयाश्रय काव्य के अन्तिम सर्ग मे १४–८२ तक पद्य अपभ्रंश मे मिलते हैं। कथा की दृष्टि से प्रथम सर्ग से अष्टम सर्ग तक नगरवर्णन-ऋतुवर्णन, चन्द्रोदय, जिनमन्दिरगमन, पूजनादि विषयो का वर्णन विशद और सुविस्तृत है। काव्य और व्याकरण की आवश्यकताओ की एक-साथ पूर्ति बडा दुष्कर कार्य है। इस दुष्कर कार्य को ही हेमचन्द्र ने अपनी इस कृति मे बडी कुशलता से निबाहा है। इसकी तुलना संस्कृत साहित्य के एक 'भट्टी काव्य' से की जा सकती है, किन्तु 'भट्टी'मे वह पूर्णता और क्रमबद्धता नही जो हम हेमचन्द्र की कृतियों मे मिलती है।

आचार्य हेमचन्द्र के 'शब्दानुशासन' के अष्टम अध्याय के चतुर्थ पाद मे अपभ्रंश भाषा का निरूपण अन्तिम ११८ सूत्रो मे बडे विस्तार से किया है और इससे भी बडी विशेषता यह है कि इन नियमों के उदाहरणो मे उन्होंने अपभ्रंश के पूरे पद्य उद्धृत किये हैं। उनके अपभ्रंश के उद्धरण रसभावापन्न हैं। 'छन्दोऽनुशासन' मे भी उन्होंने अपभ्रंश छन्दो का समावेश कर देने का प्रयत्न किया है।

पण्डित केशवप्रसाद मिश्र ने हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत अनेक दोहो को पूर्वी हिन्दी मे परिणत करके दिखाया है। जैसे —

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कंत हो बलिकीसु।
तसु दइवेण वि मुण्डिअउ जसु खल्लिहडउ सीसु॥ हेम ८-४-३८९
आछत भोग जे छोड़य तेह कन्ताक बलि जावें।
तेकर देवय मे मडल जकर खललउ सीस॥

१—बालरामायण- राजशेखर-१-११

वैसे ही आगे का पद्य देखिये:—वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अद्धावलया महिहिगय अद्धाफुट्ट त उत्ति ॥
—हेम ८-४-३५२

इस पद्य का उत्तरकाल में राजपूताने मे निम्नलिखित रूप हो गया:—
काग उडावन जावती पिय दीठो सहसत्ति ।
आधी चूडी कागगल आधी टूट तडत्ति ।।

आचार्य हेमचन्द्र के मुक्तक पद्यो मे हमे स्वच्छन्द वातावरण मिलता है । जैसे.—
जिवँ जिवँ वकिम लोअणह णिरु सामलि सिक्खे इ ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय सरखर पत्थारि ति करवेई ।। ८-४-३४४

अर्थात् ज्यों-ज्यो वह श्यामा लोचनो की वक्रता—कटाक्षपात सीखती है त्यो त्यो कामदेव अपने बाणो को कठोर पत्थर पर तेज करता है ।

पिय सगमि कउ निद्दडी पिअही परोक्खहो केम्व ।
मइ विन्नि वि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व ।। ८-४-४१८

नायिका कहती है — न तो प्रिय सगम मे निद्रा है और न प्रिय के परोक्ष होने पर । मेरी दोनो प्रकार की निद्रा नष्ट होगयी ।

प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने हेमचन्द्र के ग्रन्थो के महत्व की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । (१) "हेमचन्द्र ने पीछे न देखा तो आगे देखा, उधर का छूटा तो इधर बढा लिया, अपने समय तक की भाषा का विवेचन कर डाला । यही हेमचन्द्र का पहला महत्व है कि और वैयाकरणो की तरह केवल पाणिनि के व्याकरण के लोकोपयोगी अश को अपने ढचर मे बदलकर ही वे सन्तुष्ट नही रहे, पाणिनि के समान पीछे नही तो आगे देखकर अपने समय तक की भाषा तक का व्याकरण बना गया" । (२) 'अपभ्र श के अश मे उन्होने पूरी गाथाएँ, पूरे छन्द और पूरे अवतरण दिये है, यह हेमचन्द्र का दूसरा महत्व है । अपभ्रंश के नियम यो समझ मे न आते । मध्यम पुरुष के लिये पइ, 'शपथ' मे थ की जगह ध होने से सवध और मक्कडघुग्घि का अनुकरण प्रयोग बिना पूरा उदाहरण दिये समझ मे नही आता । (३) तीसरा महत्व हेमचन्द्र का यह है कि वह अपने व्याकरण का पाणिनि और भट्टोजीदीक्षित होने के साथ-साथ उसका भट्टि भी है । उन्होने अपने सस्कृत प्राकृत द्वयाश्रयकाव्य मे अपने व्याकरण के उदाहरण भी दिये है तथा सिद्धराज कुमारपाल का इतिहास भी लिखा है । भटिट और भट्ट भौमक की तरह वह अपने सूत्रो के क्रम से चलता है । याकोवी का विचार है कि हेम ने वररुचि के 'प्राकृत प्रकाश' के आधार

पर अपना प्राकृत व्याकरण बनाया किन्तु डा० पिशेल ने इस विचार का खण्डन किया है। देश-दिशा के भेद से अनेक प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं के होने के कारण हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण मे अनेक प्रकार की भाषाओं का आना अस्वाभाविक नही। धुत्रं तुत्र प्रस्सदि व्रासु, आदि दूसरी बोलियों के शब्द हैं। हेमचन्द्र ने इनके विषय मे अपने अन्य सूत्रो में भी बहुत कुछ लिखा है। अपभ्र शत्तण का सम्बन्ध वैदिकत्वन् से है, एहि वैदिक एभि से निकला है[1]।"

यद्यपि हेमचन्द्र ने भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश दोहों को उद्धृत किया किन्तु निसर्गसिद्ध साहित्यिकता उनके महत्व को बढा देती है। अपभ्रंश भाषा का प्रेम सम्पूर्ण दोहे को उद्धृत करने के लिये आचार्य को बाध्य करता है तथा उसके साहित्यिक स्वरूप को व्यक्त करता है। इससे आचार्य की सग्राहिका प्रतिभा और उनके लोक-भाषानुराग का पता चलता है। अपभ्रंश व्याकरण में उद्धृत दोहों को शृंगारिक, वीरभावापन्न, नैतिक, अन्योक्तिपरक, वस्तुवर्णनात्मक और धार्मिक भेदो में विभक्त कर सकते हैं। रूपवर्णन देखिये.—

जिव तिव तिक्खा लेवि कर जइ ससि छोल्लिज्जन्तु।
तो जइ गोरि हे मुह कमलि सरिसिम क विलहन्तु ॥ ३६५–१

जैसे-जैसे तीक्ष्ण किरणों को लेकर यदि चन्द्र को छीला जाता तब वह गोरी के मुख-कमल की समता कुछ पाता तो पाता। यहा तक्षि को छोल्ल आदेश हो गया। वीररस का उदाहरण देखिये.—

एइ ति घोडा एह थलि एहति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिम जाणिअइ जो नवि वालइ वग्ग ॥ ३३०–४

ये वे घोडे हैं, यह वह युद्धस्थली है, ये वे तीक्ष्ण तलवारें है, यही पर उसकी मुणीसिम पुरुषार्थ की परीक्षा होगी, जो घोडे की वाग नही मोडेगा। यहा पर एते ते के लिये इइ ति, खड्गाः के लिये खग्ग ह्रस्वान्त रूप प्रयुक्त है। शृंगार और वीर का मिश्रित रूप देखिये.—

सगर– स एं हिं जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु।
अइमत ह चत्त कुसह गय–कुम्भइं दारन्तु ॥ ३४५–१

सैकडो युद्धो में जिसकी प्रशसा की जाती है, ऐसे अत्यन्त मत्त तथा इंकुश की कुछ भी पर्वाह नहीं करने वाले गजो के कुम्भस्थलों को विदारने वाले मेरे कान्त को तो देखो। वियोग शृङ्गार का उदाहरण देखिये :—

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएं पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नेहण ॥८–४–३३३

[1] —पुरानी हिन्दी–प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी–पृष्ठ १२९

प्रिय ने प्रवासार्थ जाते हुए जितने दिन बताये थे उन्हे गिनते-गिनते नख मेरी अगुलियाँ नख से जीर्ण हो गयी ।

जइ ससणे हि तो मुअइ अह जीवइ निन्नेह ।

रिहिं वि पयोरेहि गइय घणकि गज्जहि खलमेह ॥८–४–३६७

यदि वह मुझे प्यार करती है तो मर गई होगी, यदि जीवित है तो निस्नेह होगी ! अरे खल मेघ ! दोनो ही तरह से वह सुन्दरी मैंने खो दी है – व्यर्थ क्यो गरजते हो ?

महु कन्त हो वे दोसडा हेल्लि म झख हि आल ।

देन्त हो हउ पर उव्वरिअ जुज्झन्त हो करवालु ॥८–४–३७९

हे सखि, मेरे प्रियतम मे केवल दो दोष है, झूठ मत कहो । दान देते हुए केवल मैं बच रहती हू और युद्ध करते हुए केवल तलवार !

भल्ला हुआ ज मारिआ बहिणि महारा कन्तु ।

लज्जेज्ज तु वय सिअहु जइभग्गा घर एन्तु ॥८–४–३५१

बहिन, अच्छा हुआ मेरा पति रणभूमि मे मारा गया । यदि पराजित हो वह घर लौटता तो मैं अपनी सखियो के सामने लज्जित हाती ।

अत हम कह सकते हैं कि हेमचन्द्र का अपभ्र श प्रतिमित (Standard) अपभ्र श है । शृङ्गारिक दोहो की परम्परा 'गाहा सत्तसई' से जोडी जाती है । जर्मन विद्वान् रिचर्ड पिशेल कहते हैं कि "हेमचन्द्र के दोहो को देखकर कुछ ऐसा लगता है कि वे किसी ऐसे सङ्ग्रह के लिये गये हैं जो सतसई के ढङ्ग का है । शृङगारिक दोहो मे अधिकतर दोहे कवि-निबद्ध-वक्तृ-प्रौढोक्ति के रूप मे विद्यमान है कई दोहे रतिवृत्तिप्रधान होते हुए भी वीररसपूर्ण दिखाई पडते है । नायिका सखी या दूती से रतिवृत्ति जागरित करने वाले भाव व्यक्त करती है अथवा पथिक से वाक्चातुर्य द्वारा गोपनवृत्ति की अभिव्यक्ति करती है । शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसो के भी अनेक उद्धरण मिलते हैं । श्री मधुसूदन मोदी ने 'हेमसमीक्षा" नामक गुजराती पुस्तक मे हेमचन्द्र के दोहो की विविधता की चर्चा की और भावात्मक दृष्टि से भी उनके मत मे अठारह वीररसप्रधान साठ उपदेशात्मक, दस जैनधर्म सम्बन्धी, पाच पौराणिक पद्य हैं । शेष दोहो मे से आधे तो शृङ्गार रस के लगते हैं और दो दोहे मुज के लगते हैं । श्री मोदी ने अपभ्र श सूत्रो की वृत्ति में हेमचन्द्राचार्य ने लगभग १७७ दोहो की चर्चा की है । इससे उनकी सर्वसङग्राहक दृष्टि का पता चलता है । आचार्य हेमचन्द्र ने भाषा, छन्द, साहित्यिकता तीनो दृष्टियो से अपभ्र श को सुव्यवस्थित तथा समृद्ध किया है ।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि अपभ्रंश व्याकरण मे आये हुवे उद्धरणो मे शृङ्गार, वीर आदि तथा अन्य रसों का सयोग है। कही नीति-सम्बन्धी उक्तियां हैं, कहीं धार्मिक सूक्तियां या अन्योक्तियां है। इन उद्धरणो मे अनेक प्रकार के छन्द, रासक, रड्डा, दोहा, गाहा आदि दोहा प्रमुख है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विभावना, हेतु, अर्थान्तरन्यास आदि अनेक अलङ्कार भी हैं जो काव्यात्मकता को और भी बढा देते है। जैनाचार्य हेमचन्द्र ने बहुत ही सूझ-बूझ से इनका सङ्ग्रह किया है। भाषा ही नही साहित्यिक प्रवृत्तियो को समझने के लिये भी इनका अध्ययन आवश्यक है।

हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण मे उद्धृत अनेक पद्य उनके पूर्ववर्ती जोइन्दु, रामसिंह, भोजराज, चण्ड, भट्ट नारायण, वाक्पतिराज, तथा अज्ञात लेखक की रचनाओ मे क्रमशः परमाप्पपयासु, पाहुडदोहा, सरस्वतीकण्ठाभरण, प्राकृत लक्षण, वेणीसहार, गउडवहो और शुक सप्तति से लिये गये है। न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ सम्भव है, हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत पद्यो मे हेमचन्द्र के अपने भी दोहे या पद्य हो। कुछ अपभ्रंश पद्य छन्दोऽनुशासन मे भी मिलते है। यहां इन सुन्दर साहित्यिक दोहो मे सरसता के साथ-साथ लौकिकजीवन और ग्राम्यजीवन के भी दर्शन हमे होते हैं।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हेमचन्द्र के साहित्य का मूल्याङ्कन :—

भारत मे आर्य भाषाओ का विकास मुख्यतया तीन स्तरो मे विभाजित पाया जाता है। पहले स्तर की भाषा का स्वरूप वेदो, ब्राह्मणो, उपनिषदो, द्वितीय का सूत्र-ग्रन्थो और तृतीय का रामायण,महाभारतादि पुराणो तथा काव्यो मे पाया जाता है। ईसापूर्व छठी शती मे महावीर और बुद्ध द्वारा उन भाषाओ को अपनाया गया जो उस समय पूर्व भारत की लोक भाषाएँ थी और जिनका स्वरूप हमे पालि त्रिपिटक एव अर्धमागधी जैनागम मे दिखायी देता है। तत्पश्चात् जो शौरसेनी एव महाराष्ट्री रचनाएँ मिलती हैं, उनकी भाषा को मध्ययुग के द्वितीय स्तर की माना गया है, जिसका विकास ईसा की दूसरी शती से पाँचवी शती तक हुआ। मध्ययुग के तीसरे स्तर को अपभ्रंश का नाम दिया गया है।

हेमचन्द्र के अपभ्रंश मे अनेक प्रकार की भाषाओ का समावेश है। घ्रुत्र (८–४–३६०), ध्रु घ्र (३७२), प्ररसदि (३९३), ब्रोप्पिणु, ब्रोप्पि (३९१), गृहन्ति गृहेप्पिणु (३४१, ३९४, ४३८) और व्रासु (३९९), जो कभी 'र' और कभी 'ऋ' से लिखे जाते हैं — ये दूसरी बोलियो के शब्द हैं, हेमचन्द्र ने इनके

विषय मे बहुत कुछ लिखा है। अपभ्र श मे अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि यह भाषा सिन्ध से बङ्गाल तक बोली जाती थी। साहित्यिक अपभ्रंश निश्चय ही प्राकृतमूलक अपभ्रंश है, जो उकार बहुल है। जैसे :–

संस्कृत – रामः वनं गतः ।
प्राकृत – रामो वणं गओ ।
अपभ्र श – रामु वणु गयउ ।

हेमचन्द्र के अपभ्र श व्याकरण एव साहित्य का अवलोकन करने से यह मालूम होता है कि अपभ्र श मे तीन-चार कारक ही रह गये थे। अयोगात्मकता की ओर उसकी प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी देती है। इसमे तज, केर आदि परसर्गों का उपयोग होने लगा था। क्रियाओ के स्थान पर क्रियाओ से सिद्ध विशेषणो का उपयोग होने लगा था। व्याकरण की इन विशेषताओ के अतिरिक्त काव्यरचना की बिलकुल नयी प्रणालियाँ और नये छन्दो का प्रयोग अपभ्र श मे पाया जाता है। दोहे और पद्धडिया छन्द अपभ्र श काव्य की अपनी वस्तु हैं, इन्ही से हिन्दी दोहो व चौपाईयो का आविष्कार हुआ है।

आचार्य हेमचन्द्र के साहित्य मे 'अपभ्र श का व्याकरण' एक अपूर्व देन है। उन्होंने उदाहरणो के लिये अपभ्र श के प्राचीन दोहो को रखा है इससे प्राचीन साहित्य की प्रकृति और विशेषताओ का ज्ञान होता है, साथ ही भाषा मे उत्पन्न परिवर्तन का पता चलता है। आचार्य हेमचन्द्र ने ही सबसे पहले अपभ्र श का इतना विस्तृत अनुशासन उपस्थित किया है। लक्ष्यो मे पूरे दोहे दिये जाने से लुप्तप्राय अपभ्र श साहित्य सुरक्षित रह सका है। भाषा की नवीन प्रवृत्तियो का नियमन, प्ररूपण, विवेचन इनके व्याकरण मे विद्यमान है। तत्कालीन विभिन्न प्रदेशो मे प्रचलित उपभाषा, विभाषादि का सम्यक् विवेचन कर उन्होने अपभ्र श को अमर बना दिया है। उसमे शब्द-विज्ञान, प्रकृतिप्रत्यय-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान सभी भाषा वैज्ञानिक तत्व उपलब्ध हैं। प्राचीन-अर्वाचीन ध्वनियो की सम्यक् विवेचना की है। आधुनिक भाषाओ की प्रमुख प्रवृत्तियो का अस्तित्व उसमे विद्यमान है। हेमचन्द्र की भाषा पर प्राकृत, अपभ्र श एव अन्य देशी भाषाओ के शब्दो का पूर्णत. प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक शब्द तो आधुनिक भाषाओ मे दिखलायी पडते हैं – जैसे लड्डुक – लड्डू, लाडू, अथवा गेन्दुक–गेन्द, हेरिक– हेर (गूढ पुरुष), कुछ शब्द समीकरण, विषमीकरण इत्यादि सिद्धान्तो से प्रभावित हैं।

इस प्रकार आधुनिक भाषा-विज्ञान के लिये भी उनको 'शब्दानुशासन' पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। प्रत्येक स्तर के पाठक के लिये 'शब्दानुशासन' मे अवकाश है। उनका व्याकरण-ग्रन्थ परिपूर्ण एव समझने में सरल है। कातन्त्र-व्याकरण केवल लौकिक सस्कृत का व्याकरण है और वह भी अतिसक्षिप्त। चान्द्र-व्याकरण मे लौकिक भाग के साथ वैदिक स्वरप्रक्रिया भी है। पाल्यकीर्ति का व्याकरण केवल लौकिक सस्कृत का है। इस दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरण सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश सभी का सर्वाङ्गपरिपूर्ण है। उसमे स्वोपज्ञ-वृत्ति-कोष एव शास्त्रकाव्य सयुक्त है। अत आचार्य हेमचन्द्र का व्याकरणशास्त्र मे अपूर्व योगदान है।

कथा-साहित्य की प्रगति मे हेमचन्द्र का योगदान— सस्कृत कथा-साहित्य मे आचार्य हेमचन्द्र का योगदान सशक्त है। जनसामान्य मे प्रचलित कथाओ का साहित्यिक और धार्मिक स्तर पर सर्वप्रथम सोद्देश्य उपयोग जैन—बौद्धो ने ही किया। इन्होने लोकभाषा के साथ-साथ लोककथाओ का उपयोग अपनी बात की पुष्टि के लिये किया। उन्होंने कुछ नयी कथायें गढीं, कुछ पुरानी कथाओ मे परिवर्तन किये। जो काम ब्राह्मण-ग्रन्थो ने कथाओ के माध्यम से किया था, वही काम जैन और बौद्धो ने लोक-कथाओ से लिया। सस्कृत भाषा मे लोक कथाओ का पहिला सोद्देश्य सङ्ग्रह हमे 'पञ्चतन्त्र' के नाम से उपलब्ध होता है। पञ्चतन्त्र की कहानियाँ धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूढ़िगत भार से सर्वथा मुक्त, विशुद्ध व्यावहारिक जीवन की कहानियाँ है, जिनमे मानव-प्रकृति के उदात्त और कुत्सित दोनो स्वरूपो के दर्शन होते हैं। विश्व की उपलब्ध कहानियो मे 'पञ्चतन्त्र' प्राचीनतम है, यह निर्विवाद है। 'पचतन्त्र' का अनुवाद ससार की सभी प्रमुख भाषाओ मे हो चुका है। वास्तव मे 'पञ्चतन्त्र' वर्तमान विश्व के कथा-साहित्य की पहली कृति है। 'हितोपदेश', जिसकी प्रथम प्रति १०७३ ई० की मिली है, पञ्चतन्त्र के आधार पर तैयार किया गया ग्रन्थ है। "वेतालपञ्चविंशति" कहानियो का एक सुन्दर सङ्ग्रह है। इसी प्रकार की लोककथाओ का एक सङ्ग्रह 'सिहासन—द्वात्रिंशिका" है जो विक्रम चरित के नाम से प्रसिद्ध है। 'शुक सप्तति' मे ७० कथाएँ सङ्ग्रहीत हैं जो शुक द्वारा कही गयी हैं। आचार्य हेमचन्द्र किसी रूप मे 'शुक सप्तति' से परिचित थे, ऐसा डॉ० ए० बी० कीथ का निश्चित मत है। वे लिखते हैं "हेमचन्द्र द्वारा दिया हुआ एक गद्यात्मक उद्धरण 'बृहत्कथा' से लिया हुआ माना जा सकता है अथवा हो सकता है कि वह किसी पीछे के सस्करण से या दूसरे स्रोत से लिया गया है। यह सम्भव है कि हेमचन्द्र द्वारा दिये गये पैशाची शब्दो के उल्लेख और उद्धरण

इस काश्मीरी ग्रन्थ से लिए गये हो, किन्तु यह निश्चित है कि जैन ग्रन्थकार हेमचन्द्र किसी न किसी रूप में 'शुक सप्तति' से परिचित थे" ।

विश्वसाहित्य मे भारत के आख्यान-साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । मौलिकता, रचना-नैपुण्य, तथा विश्व व्यापक प्रभाव की दृष्टि से वह अनुपम और अद्वितीय सिद्ध हो चुका है । भारतीय लोक-साहित्य के परिज्ञान के लिये संस्कृत आख्यानो का अनुशीलन परमावश्यक है । उपदेशात्मक प्रवृत्ति का मनोरंजनकारी परिपाक नीति-कथाओ मे हुआ है । इनमे रोचक कहानियो द्वारा चरित्र-निर्माण का उपदेश होता है । ये नीति-कथाएँ संस्कृत भाषा की सरल एव रोचक शैली का भी आदर्श उपस्थित करती है । इन कथाओ के प्रतिपाद्य विषय सदाचार, धर्माचार तथा व्यावहारिक ज्ञान होते है ।

प्राकृत-जैन-कथा साहित्य जैन विद्वानो की एक विशिष्ट देन है । उन्होने धार्मिक और लौकिक आख्यानो की रचना कर साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया । कथा, वार्ता, आख्यान, उपमा, दृष्टान्त, संवाद, सुभाषित, प्रश्नोत्तर, समस्यापूर्ति और प्रहेलिका आदि द्वारा इन रचनाओ को सरस बनाया गया । संस्कृत साहित्य मे प्राय राजा, योद्धा, धनीमानी व्यक्तियो के ही जीवन का चित्रण किया जाता था, किन्तु इस साहित्य मे जनसामान्य के चित्रण को विशेष स्थान प्राप्त हुआ । जैन कथाकारो की रचनाओ मे यद्यपि सामान्यतया धर्मोपदेश की ही प्रमुखता है फिर भी पादलिप्त, हरिभद्र, उद्योतनसूरि, नेमिचन्द्र गुणचन्द्र, मलधारि हेमचन्द्र, लक्ष्मणगणी, देवेन्द्रसूरि, आदि कथा-लेखको ने इस कमी को बहुत कुछ पूरा किया। रीति-प्रधान शृंगारिक साहित्य की रचना की कमी रह गयी थी । उधर ११-१२ शताब्दी से लेकर १४-१५ शताब्दी तक गुजरात, राजस्थान, मालवा मे जैन धर्म का प्रभाव उत्तरोत्तर बढता जा रहा था । अनेक अभिनव कथा-कहानियों की भी रचना हुई । अनेक कथा-कोशो का संग्रह किया गया । कथा साहित्य मे तत्कालीन सामाजिक जीवन का विविध और विस्तृत चित्रण किया गया । विशिष्ट यति, मुनि, सती, साध्वी, सेठ साहूकार, मन्त्री सार्थवाह, आदि के शिक्षाप्रद चरित्र लिखे गये । इन चरितो में बीच-बीच में धार्मिक और लौकिक सरस कथाओं का समावेश किया गया ।

उपदेशात्मक कथाएँ, जिसका साक्षात् उद्देश्य मनोरंजन के साथ उपदेश है, जैन साहित्य मे प्रचुरता के साथ पायी जाती हैं । जैन विद्वानो की रुचि कहानियो मे बहुत थी, परन्तु साथ ही उनका नैतिकता की ओर विशेष झुकाव था । इसीलिये जैन लेखक प्राचीन विक्रमादित्य के आख्यानो जैसी अच्छी कहा-

नियों को एव महान् साहसिक कार्यों मे भाग लेने वाले उनके पात्रो को जैन धर्म के व्याख्याताओ के रूप मे चित्रित करने के प्रयत्न मे बिगाड देते थे। आचार्य हेमचन्द्र भी सच्चे जैन थे। वे अपने धर्म के उत्साही प्रचारक थे। धर्म मे आस्था के कारण उन्होंने वस्तुओ और घटनाओ को विकृत रूप मे देखा है। इस प्रकार की रचनाओ मे हेमचन्द्र के 'परिशिष्ठपर्वन्' को प्रथम स्थान देना चाहिये— जो उन्हींके पौराणिक काव्य 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित' का एक परिशिष्ट है।

जैन परम्परा मे पुराकथाएं शैली और कहावतो मे धार्मिक साहित्य की वृति के निकट पहुँचने की प्रवृति प्रदर्शित करती हैं। आचार्य हेमचन्द्र भी इसके अपवाद नही थे। उनका 'परिशिष्ठपर्वन्' कथा-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन कथाओ का उद्देश्य मनोरंजन की अपेक्षा उपदेश देना है। इस ग्रन्थ की अधिकाश कहानियाँ नैतिकता का प्रचार करने वाली हैं। जिन कथाओ को आचार्य जी कहते हैं, वे पौराणिक उपाख्यानो के ढग की न होकर विशेष रूप से साधारण लोककथाओसी हैं। अत एक प्रकार से पञ्चतन्त्रादि कथाओ के ही लक्ष्य को उन्होंने अपनी कहानियो मे आगे बढाया है तथा उनका अपने सम्प्रदाय के प्रचार मे समुचित उपयोग कर लिया है। यह प्रवृति प्रभाचन्द्र के प्रभावक् चरित मे भी दिखायी देती है जिसमें हेमचन्द्र के 'परिशिष्ठपर्वन्' को ही आगे बढाया है।

प्राचीन नीति-कथाओ एव लोक-कथाओ मे तथा 'परिशिष्ठपर्वन्' की कथाओ मे मौलिक अन्तर है। आचार्य हेमचन्द्र का प्रधान लक्ष्य जैन धर्म प्रचार है। इसलिये 'पञ्चतन्त्र' या 'हितोपदेश' के अनुसार केवल पशुपक्षियों की कहानियाँ 'परिशिष्ठपर्वन्' मे नहीं जिनका एकमात्र उद्देश्य सदाचार, राजनीति, व्यवहार एव कुशलता का उपदेश था। 'बृहत् कथा' अथवा 'कथासरित्सागर' के समान इन कहानियों का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है। उनका प्रधान लक्ष्य धर्मप्रचार होने के कारण उनमे ऐतिहासिक तथ्यों को भी तरोड-मरोड कर सम्प्रदायानुकूल बनाया गया है। 'हितोपदेश' और 'पञ्चतन्त्र' सम्प्रदाय-निरपेक्ष हैं, किन्तु हेमचन्द्र की कथाओ का उद्देश्य जैन-धर्म-प्रचार है। यथा—'परिशिष्ठपर्वन्' का नवम सर्ग, एकबार स्थूलभद्र अपने पुराने मित्र धनदेव के यहा गये, धनदेव की धनहानि बहुत हो गयी थी इसलिये वह कहीं बाहर गया हुआ था। धनदेव की पत्नी से धन घर मे ही छुपे रहने की बात स्थूलभद्र ने बतलायी। धनदेव के वापिस आने पर उसने यह बात सत्य पायी। फिर धनदेव पाटलीपुत्र गया और जैन-धर्म मे दीक्षित हो गया। स्थूलभद्र के दो शिष्य थे—महागिरि और

स्तूहस्सिन् । स्थूलभद्र ने उन्हे पढाया । फिर वे जैन-धर्म के प्रचार के लिये विचरण करने लगे ।

आचार्य हेमचन्द्र का 'परिशिष्ठपर्वन्' न केवल जैन कथा सङ्ग्रहो मे श्रेष्ठ है अपितु सम्पूर्ण सस्कृत कथासाहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है । उसमे 'पञ्चतन्त्र' के अनुसार नीतिधर्म का उपदेश है और 'बृहत्कथा', 'कथासरित सागर' के अनुसार मनोरजन भी है । अत 'पञ्चतन्त्र' और 'बृहत्कथा' का समुचित सामञ्जस्य आचार्य हेमचन्द्र की कथाओ मे पाया जाता है । इसके अतिरिक्त धर्म प्रचार के साधन के रूप मे भी ये कथाए साधारण जनता मे लोकप्रिय हुई । 'कथासरित् सागर' और 'परिशिष्ठपर्वन' की कतिपय कहानियो का रूपान्तर चीन की कहानियो मे भी पाया जाता है ।

समन्वय भावना का विकास—*नानारूपात्मक सृष्टि मे सामञ्जस्यका करने का* प्रयास भारतीय सस्कृति मे अनादिकाल से होता आया है । अनेकता मे एकता *तथा एकता मे अनेकता का साक्षात्कार प्रागैतिहासिक काल मे ही ऋषि-मुनियो* ने किया था । अत भारतीय दर्शन की दृष्टि प्रारम्भ से ही व्यापक रही है । *यद्यपि भारतीय दर्शन की अनेक शाखाएँ हैं तथा उनमे मतभेद भी हैं फिर भी* ये शाखाएँ एक-दूसरे की उपेक्षा नही करती हैं । सभी शाखाएँ एक दूसरे के *विचारो को समझन का प्रयत्न करती हैं । वे विचारो की युक्ति पूर्वक समीक्षा* करती हैं और तभी किसी सिद्धान्त पर पहुचती हैं । इसी प्रक्रिया से समन्वय *भावना' का उद्गम हुआ है । भारतीय दर्शन की इस व्यापक एव उदार दृष्टि* से ही भारतीय दर्शन मे समन्वय भावना का विकास हुआ है तथा भारतीयो मे परमत सहिष्णुता, परधर्म-*सहिष्णुता आयी है ।*

'एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' इत्यादि उपनिषद्—वाक्य अथवा 'स्तैनाय *नम' स्तेनानापतये नम ' इत्यादि रुद्रसूक्त के मन्त्र समन्वय भावना के ही प्रतीक* हैं । गौतम बुद्ध के 'मज्झिम मग्ग' (मध्यम मार्ग) की भी यही भावना है । *जीवन का व्यवहार समुचित ढग से चलान के लिये भगवान कृष्ण ने गीता मे* मध्यम मार्ग का ही उपदेश दिया है । ऐकान्तिक उपवास से शरीर सुखाने का *उपदेश वे नही करते । खाना ही ध्येय है, ऐसा वे नहीं कहते । उसी प्रकार मन* तथा शरीर के विकारा को कुचलकर समाप्त करने की अपेक्षा धर्माविरुद्ध काम के पक्ष मे वे उपदेश देते हैं । (गीता ६–१७, ७–११)

वेदपुराणो की बात तो समन्वयात्मक है ही, समय समय पर साधु सन्तो ने, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के क्यो न हो, सहिष्णुता का उपदेश देकर सम-

साहित्य मे देखने को मिलता है। जैन धर्म की अनेकान्त दृष्टि से वे इतने समरसा न्वय भावना का विकास ही किया है। जैन दार्शनिको ने वैदिक, आस्तिक,बौद्धादि दार्शनिको के विचारो का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् ही अपने तत्व-दर्शन की रचना की है। इसीलिये परस्पर-विरोधी विचार-पद्धतियो का समन्वय करने वाले 'अनेकान्तवाद' का निर्माण वे कर सके। जैन दार्शनिको का कथन है कि प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक होती है। किसी वस्तु के सम्बन्ध मे हम जो कुछ विचार करते हैं, उसकी सत्यता हमारी विशेष दृष्टि पर निर्भर करती है। हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि किसी विषय मे कोई एक मत एकान्त सत्य नहीं होता, दूसरो के मत भी सत्य हो सकते है। इसीलिये जैन-दर्शन मे अन्यान्य मतो के प्रति समादर का भाव विद्यमान है, आचार्य हेमचन्द्र ने अपने साहित्य मे इसी समन्वय-भावना का विकास किया है।

'योगशास्त्र' मे ध्यानयोग, आसन, आदि का वर्णन उन्होने पातञ्जल-योग के सदृश ही किया है। यह भी उनकी असकीर्णता का परिचायक है। उनके मोक्ष का आनन्द भी वैदिक मोक्ष के समान ही है। आचार्य हेमचन्द्र ने 'सस्कृत द्वयाश्रय काव्य' मे अर्हन तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एक रूपत्व दिखाया है। उसमे शिवस्तुति भी प्रचुर मात्रा मे की गयी है[१] तथा बीसवें सर्ग मे तो शिवभक्ति का सुन्दर वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण 'द्वयाश्रय काव्य'मे शिवमहिमा का वातावरण एव वैदिक सस्कृति का प्रभाव है। इस दृष्टि से उनका साहित्य ब्राह्मण सस्कृति से प्रभावित है, ऐसा कहा जा सकता है। योगशास्त्र मे रूपस्थ ध्यान का वर्णन करते समय अष्टम प्रकाश मे ब्राह्मण-मन्त्रो के ॐ ह्रीं इत्यादि बीजाक्षर वैसे के वैसे ही आचार्य हेमचन्द्र ने स्वीकार किये हैं। पदस्थ ध्यान मे भी वैदिकों के मन्त्र-शास्त्र की पद्धति को स्वीकार किया है। अन्तर इतना ही है कि वे प्रणव के साथ "अर्हन" पद जोड देते हैं। उनके साहित्य मे पुराणो के दृष्टान्त, स्वर्ग के इन्द्रादि देवताओं का वर्णन भी पाया जाता है। पूजा-पद्धति भी पौराणिको के अनुसार पायी जाती है। इसलिये वे स्वय जैनाचार्य होते हुवे भी सोमेश्वर की यात्रा मे कुमारपाल के साथ गये थे तथा पञ्चोपचार विधि से उन्होंने भगवान शिव का पूजन किया। भगवान् की मनौती किये जाने का भी वर्णन उनके साहित्य में आता है। साधना, आत्मसाक्षात्कार, समाधि का आनन्द इत्यादि सब बातें वैदिक दर्शनानुसार ही उनके साहित्य मे पायी जाती हैं। पुष्पोञ्चय, सम्मार्जन, दक्षिणा इत्यादि बातो का वैदिक सस्कृति के अनुरूप मधुर चित्र उनके

१ —द्वयाश्रय-१।७६ तथा ५।१३१

हो गये थे कि वे अपने उपदेशो में सम्प्रदायातीत हो जाते थे ।

आचार्य हेमचन्द्र के धार्मिक ग्रन्थो में ज्ञान और भक्ति मे पृथकत्व मानते हुए भी अपृथक्त्व का निर्वाह हुआ है । आगे चलकर हिन्दी के जैन भक्त कवियो को यह बात विरासत मे ही मिली । भक्ति और ज्ञान दोनो से ही स्वात्मोपलब्धि होती है । स्वात्मोपलब्धि का नाम ही मोक्ष है । आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार भगवन्निष्ठा और आत्मनिष्ठा दोनो एक ही हैं । अत भक्ति और ज्ञान की एकरूपता जिस प्रकार जैन शास्त्रो में विशेषत. आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो में घटित होती है वैसी अन्यत्र नही । जैन भक्ति की यह विशेषता उसकी अपनी है और इसका श्रेय अधिकांश में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो को ही है । यह अनेकान्तात्मक परम्परा के अनुरूप ही है ।

आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थो मे चरित्र और भक्ति का उत्कृष्ट समन्वय पाया जाता है । दूसरे शब्दो म वहाँ चरित्र की भी भक्ति की गई है । उनका आराध्य केवल दर्शन और ज्ञान से नही अपितु अलौकिक चरित्र से भी अलङ्कृत था । चरित्र की शिक्षा नि सन्देह आदर्श नागरिक निर्माण के लिए उपादेय है । चारित्र-भक्ति का सम्बन्ध एक ओर बाह्य ससार से है, तो दूसरी ओर उसका सम्बन्ध आत्मा से है । इससे व्यक्तित्व का समुचित विकास होने के साथ लोकप्रिय व्यवहार भी बनता है । आत्मा मे परमात्मा का दिव्यालोक फैलता है ।

आचार्य हेमचन्द्र किसी भी ऐकान्तिक पक्ष को मानने वाले नही थे । आत्यन्तिक अशनत्याग के भी व विरोधी थे । 'तेल से दीपक और पानी से वृक्ष की भांति शरीरधारियो के शरीर आहार से ही टिकते है । आज का दिन बिना भोजन के व्यतीत किया उसी प्रकार अब भी यदि मैं आहार ग्रहण न करूँ और अभिग्रहनिष्ठ बना रहूँ, तो उन चार हजार मुनियो की जो दशा हुई थी अर्थात् भूख से पीडित होकर जिस प्रकार वे व्रतभग्न हुए उसी प्रकार भविष्य के मुनि भी भूख से पीडित होकर व्रतभग्न होगे, यह विचार करके ऋषभदेव भिक्षा के लिये चल पडे'[1] । आत्मा के सम्बन्ध मे भी आचार्य हेमचन्द्र के विचार एकपक्षीय नही है । आत्मा को एकान्त और नित्य माने तो यह अर्थ होगा कि आत्मा म किसी प्रकार का अवस्थान्तर अथवा स्थित्यन्तर नही होता अर्थात् उसे सर्वथा कूटस्थ नित्य मानना पडेगा, और इसे स्वीकार करने पर सुख-दुःखादि भिन्न अवस्थाएँ आत्मा म घटित नही होगी । एकान्त अनित्य मानने से भी वे ही आपत्तियां खडी होती हैं । इसीलिये आचार्य हेमचन्द्र आत्मा को नित्यानित्य मानते हैं । एकान्त नित्य-

१—त्रिषष्टिशलाका पर्व १—सर्ग ३—श्लोक २३६ से ४२ तक ।

वाद अथवा अनित्यवाद सदोष है किन्तु नित्यानित्यवाद निर्दोष है। गुड कफ करने वाला है, सोठ पित्तजनक किन्तु मिश्रण मे ये दोष नही रहते। (वीतराग) हेमचन्द्र के मतानुसार सत्व-रज-तम इन परस्पर विरुद्ध तीन गुणो से युक्त प्रकृति को स्वीकार करके सांख्य दर्शन ने स्याद्वाद को ही स्वीकार किया है। एकही वस्तु मे भिन्न धर्मों,लक्षणो एव अवस्थाओ के परिणामो की सूचना करता हुआ योगदर्शन स्याद्वाद का ही चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार आचार्य हेमचन्द्र प्रत्येक दर्शन मे समन्वय को ही देखते है। इस प्रकार के सोचने से अनेकान्त दर्शन से परस्पर भिन्न दृष्टिकोण अभिन्नता की ओर जाते है। परमत सहिष्णुता बढती है। दृष्टि व्यापक होती है। भगवान मे भी वे समन्वय भाव से ही देखते हैं। इस प्रकार अनेकान्त के आधार पर वे समन्वय का प्रचार करते हुए 'विश्वबन्धुत्व' एव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जनमानस मे प्रचारित करने का प्रयास करते हैं।

समन्वय-भावना के विकास ने कला के क्षेत्र मे भी प्रभूत योगदान दिया है। जैन लोग सरस्वती के भक्त थे। उनका यह भक्तिभाव केवल स्तुति-स्तोत्रो मे ही नही, वरन मनमोहक, मूर्तियो मे भी व्यक्त हुआ है। दसवी से तेरहवी शताब्दी तक जितनी सरस्वती की मूर्तियां बनी उनमे जैन-सरस्वती-प्रतिमाओ की भव्यता की तुलना किसी से नही की जा सकती। धार की भोजशाला मे प्राप्त सरस्वती की मूर्ति, जो आजकल 'ब्रिटिश म्यूजियम, मे स्थित है, जैन शैली मे ही है।

आचार्य हेमचन्द्र समन्वय भावना का केवल साहित्य मे ही प्रतिपादन करके सन्तुष्ट नही हुए। उन्होने अपने दैनिक आचरण मे समन्वय-भावना का ही व्यवहार किया। इसीलिये जैन-मन्दिरा के लिये काशी से पुजारी बुलाए गये थे। उन्होंने स्वयं सोमनाथ की पूजा की थी। सिद्धराज जयसिंह को आचार्य हेमचन्द्र ने दृष्टान्तो एव सुरुचिपूर्ण कहानियों के द्वारा समन्वय का ही उपदेश दिया था। वे अपने आश्रयदाता, सिद्धराज जयसिंह को जैनधर्म का उपदेश देकर उन्हें जैन धर्म मे दीक्षित होने के लिये प्रेरित कर सकते थे। किन्तु आचार्य हेमचन्द्र ऐसा करते तो वे साम्प्रदायिक कहलाते-केवल जैन सम्प्रदाय के महान् प्रचारक के रूप मे ही प्रसिद्ध होते। किन्तु आज तो वे जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार करके भी समन्वय-भावना के अनुरूप प्रत्यक्ष आचरण करने के कारण धर्मनिरपेक्ष सम्प्रदायातीत युगप्रवर्तक युगपुरुष हो गये। कुमारपाल राजा दैनन्दिन आचार-विचार मे पूर्ण श्रावक के अनुसार रहते हुए भी अन्त तक "परममाहेश्वर"

अर्थात् परम शिवभक्त बने रहे। आचार्य हेमचन्द्र के प्रभाव से हिन्दू मन्दिरो का भी निर्माण हुआ और फलत. हिन्दू धर्म का भी विकास हुआ।

अत. समन्वय–भावना जो कभी रवीन्द्रनाथ के शान्ति निकेतन मे प्रकट होती थी अथवा महात्मा गाधी के सेवाग्राम मे दिखायी देती थी, उसका प्रारम्भ आचार्य हेमचन्द्र ने ही अपने आचरण से किया था। आचार्य हेमचन्द्र की इस समन्वय-भावना के विकास के कारण गुजरात मे धार्मिक कलह कभी नही हुए। धर्म के नाम पर कभी भी अशान्ति नही हुई। समन्वय-भावना के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे अभूतपूर्व विकास हुआ। सम्भवत विशाल यात्रा, व्यापक पर्यटन के कारण भी आचार्य हेमचन्द्र की दृष्टि अधिक व्यापक बनी थी। विद्या, कला, साहित्य, सभ्यता के क्षेत्र मे उन्होंने समन्वय-भावना का ही प्रसार किया। उनकी दृष्टि मे ससार के सभी दर्शन अपनी-अपनी दृष्टि से सत्य हैं। उनके जीवन मे भी दुराग्रह के लिये कोई स्थान नहीं था। राजदरबार मे अथवा छात्रो को उपदेश देने मे उन्होंने कभी भी दुराग्रह से काम नही लिया। उपदेश करने के पश्चात् 'यथेच्छसि तथा कुरू' इस गीतोक्ति का उन्होंने सदैव अनुसरण किया। गुजरात, मालवा, राजस्थान आदि प्रदेशो मे जैन-धर्म के प्रसार का जो महान् कार्य किया गया वह किसी धार्मिक कट्टरता के बल पर नही, किन्तु नाना धर्मों के प्रति सद्भाव व सामञ्जस्य-बुद्धि द्वारा ही किया गया था। यही प्रणाली जैन धर्म का प्राण रही है, और हेमचन्द्राचार्य ने अपने उपदेशो एव कार्यो द्वारा इसी पर अधिक बल दिया था।

हेमचन्द्र का भारतीय साहित्य में महत्व एवं परवर्ती लेखकों पर प्रभाव —

आचार्य हेमचन्द्र जैसे प्रतिभाशाली और उत्तमोत्तम गुणो के धारक थे वैसा ही उनका शिष्यसमूह भी था। कहते हैं कि १०० शिष्यो का परिवार उन्हे नित्य घेरे रहता था और जो ग्रन्थ गुरू लिखाते थे उनको वह लिख लिया करता था। रामचन्द्रसूरि, बालचन्द्रसूरि, गुणचन्द्रसूरि, महेन्द्रसूरि, वर्धमानगणी, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, एव यशश्चन्द्र उनके प्रख्यात शिष्य थे। इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र की कृतियो पर टीकाएँ तथा वृत्तियां लिखी है। साथ ही इनके स्वतन्त्र ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। रामचन्द्रसूरि इन सभी शिष्यो मे अग्रणी थे। उनमे प्रखर प्रतिभा एव साधुत्व का अलौकिक तेज था। ये ही 'कुमार विहारशतक' के रचयिता हैं। इन्हे 'प्रबन्धशतकर्ता' कहा जाता है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र सूरि ने मिलकर 'नाट्य दर्पण' की रचना की। महेन्द्रसूरि ने 'अभिधानचिन्तामणि', 'अनेकार्थमाला', 'देशी नाममाला' और 'निघण्टु' पर टीकाएँ लिखी हैं। देवचन्द्र सूरि ने 'चन्द्रलेखा

विजय प्रकरण' और बालचन्द्र गणी ने 'स्नातस्था' नामक काव्य की रचना की। उदयचन्द्र का नाम व्याकरण की बृहद्वृत्ति की टीका की प्रशस्ति मे आया है। 'कुमार विहार–प्रशस्ति' मे वर्धमान गणी का नाम भी मिलता है। 'सुपार्श्वनाथ चरित' के कर्ता लक्ष्मणगणी श्री चन्द्रसूरि के गुरुभाई और हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने वि० स० ११९९ मे राजा कुमारपाल के राज्याभिषेक के वर्ष मे इस ग्रन्थ की रचना की। लेखक ने आरम्भ मे हरिभद्रसूरि आदि आचार्यों का बडे आदरपूर्वक उल्लेख किया है। 'महावीर चरित' के अध्ययन से लेखक गुणचन्द्र गणी (वि०स० ११३९) के मन्त्र-तन्त्र विद्यासाधन तथा वाममार्गियो और कापालिको के क्रियाकाण्ड आदि के विशाल ज्ञान का पता लगता है। गुणचन्द्रगणी के ही ग्रन्थ 'पार्श्वनाथ चरित' (वि० सं० ११६८) मे भी मन्त्र-तन्त्रो मे कुशल वाममार्ग मे निपुण भीगुरायण नाम का पात्र रहता है।

डा० विन्टरनीत्ज अपने भारतीय साहित्य के इतिहास मे अमरचन्द्र के 'पद्मानन्द' महाकाव्य का उल्लेख करते हैं जिसमे आचार्य हेमचन्द्र का अनुकरण किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र के स्तोत्रो से प्रभावित होकर १४ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे श्री जिनप्रभसूरि ने "चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्" और "चतुर्विंशति-जिनस्तुतय." की रचना की। हेमचन्द्राचार्य के "नेमिस्तवन" से प्रभावित होकर उनके शिष्य श्री रामचन्द्रसूरि ने १७ साधारण जिनस्तवन् 'श्री मुनि सुव्रत देव-स्तव.' और 'श्री नेमिजिनस्तव.' की रचना की थी। पण्डित आशाधर का सहस्रनामस्तवन श्रुतसागरीय और स्वोपज्ञवृत्तियो के साथ प्रकाशित हो चुका है। 'विविधतीर्थ कल्प' के कर्ता श्री जिनप्रभसूरि के 'उज्जयन्तस्तव', 'ढीपुरीस्तव', 'हस्तिनापुरतीर्थस्तवन' और 'पञ्च कल्याणक स्तवन' विविध तीर्थ कल्प मे निबद्ध हैं। हरिभद्र जिनचन्द्रसूरि के शिष्य श्रीचन्द्र के शिष्य थे। कवि ने ग्रन्थ रचना अणहिलपाटन–पत्तन मे वि० स० १२१६ मे की थी। हरिभद्र ने सिद्धराज और कुमारपाल के आमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय मे रहकर अपने ग्रन्थ की रचना की थी।

साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र के परवर्ती संस्कृत लेखको पर आचार्य हेमचन्द्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रभाचन्द्रसूरि का "प्रभावकचरित" निःसन्देह आचार्य हेमचन्द्र के 'परिशिष्टपर्वन्' से प्रभावित है। 'कुमारपाल प्रतिबोध' के रचयिता सोमप्रभाचार्य एवं 'मोहराजपराजय' नाटक के लेखक यशपाल तो आचार्य हेमचन्द्र के लघुवयस्क समकालीन ही थे। इनके अतिरिक्त जयसिंहसूरि (वि० स० १४२२) जिनमण्डन उपाध्याय (वि० स० १४९२) चरित्र सुन्दर-

गणी, राजशेखरसूरि (वि० स० १४०५) इत्यादि लेखक आचार्य हेमचन्द्र से पूर्णतया प्रभावित थे। आचार्य जी का 'काव्यानुशासन' देखकर तत्कालीन मन्त्री वागभट ने भी 'काव्यानुशासन' की रचना की। डॉ कीथ के अनुसार इसमे हेमचन्द्र का असफल अनुकरण किया गया है। काव्य के क्षेत्र मे भी आचार्य हेमचन्द्र की परम्परा आगे एक शती तक पल्लवित होती रही। कथापुराण के क्षेत्र मे उनका अनुकरण पर्याप्त मात्रा मे हुआ है।

आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थ निश्चय ही सस्कृत साहित्य के अलकार है। वे लक्षणा, साहित्य, तर्क, व्याकरण एव दर्शन के परमाचार्य है। आचार्य हेमचन्द्र की साहित्य-साधना बहुत विशाल एव व्यापक है। विद्वत्ता तो जैसे उनकी जन्मजात सम्पत्ति है। व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, कोश एव काव्यविषयक इनकी रचनाएँ अनुपम है। इनके ग्रन्थ रोचक, मर्मस्पर्शी एव सजीव है। पश्चिम के विद्वान् इनके साहित्य पर इतने मुग्ध हैं कि उन्होने इन्हें 'Ocean of Knowledge'— ज्ञान का महासागर कहा है। इनकी प्रत्येक रचना मे नया दृष्टिकोण, और नयी शैली वर्तमान है। जीवन को सस्कृत, सम्बन्धित और सचालित करने वाले जितने पहलू होते हैं उन सभी को उन्होने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। श्री सोमप्रभसूरि ने इनकी सर्वांगीण प्रतिभा की प्रशसा करते हुए लिखा है —

क्लृप्त व्याकरण नव विरचित छन्दो नवो द्वयाश्रया।
लकारो प्रथितो नवो प्रकटित श्री योगशास्त्रम् नवम्॥
तर्क सजनि तो नवो, जिन वरादीना चरित्र नवम्।
बद्ध येन न केन केन विधिना मोह कृतो दूरत॥

आचार्य हेमचन्द्र की विद्वत्ता जन्मजात सम्पत्ति थी, तो हृदय भक्त का मिला था, 'अर्हत स्तोत्र', 'महावीर स्तोत्र', 'महादेव स्तोत्र' इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। उनमे रस है, आनन्द है, और है हृदय को आराध्य मे तल्लीन करने की सहज प्रवृत्ति। जैन साहित्य मे, विशेषकर उसके धार्मिक क्षेत्र मे, आचार्य हेमचन्द्र का नाम अग्रणी है। गुजरात मे तो जैन सम्प्रदाय के विस्तार का सबसे अधिक श्रेय इन्हे ही है।

आचार्य हेमचन्द्र केवल शास्त्रो के निर्माता ही नही थे किन्तु सुन्दर काव्य के रचयिता भी थे। वे पण्डित कवि थे, शास्त्र कवि थे तथा पुराणेतिहासज्ञ भी थे। उनके काव्य में पाण्डित्य, शास्त्र (व्याकरण) तथा इतिहास की त्रिवेणी का सगम हुआ है। आचार्य हेमचन्द्र ने एक ही काव्य मे अश्वघोष, हर्ष तथा भट्टि का मधुर सङ्गम किया है। इस दृष्टि से सस्कृत साहित्य मे आचार्य

हेमचन्द्र का महत्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा। संस्कृत साहित्य पर भी उनका प्रभाव अमिट है। आचार्य हेमचन्द्र के कारण संस्कृत साहित्य परिपुष्ट, प्रफुल्लित एवं विकसित हुआ है और उसकी गरिमा बढ़ी है। प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य की दृष्टि से भी उनकी कृतियाँ बहुमूल्य हैं।

हेमचन्द्र की साहित्य सेवा का मूल्याङ्कन —

अपारे काव्य संसारे कविरेक प्रजापति.।
यथा स्मै रोचते विश्व तथा विपरिवर्तते ॥

इस अपार काव्य-संसार मे कवि ही एकमात्र प्रजापति होता है। साहित्य की विपुलता एव विस्तार की दृष्टि से आचार्य हेमचन्द्र 'साहित्य सम्राट' की उपाधि के योग्य हैं। किंबहुना यथार्थता की दृष्टि से यह उपाधि भी बहुत छोटी है। आजतक विशालकाय ग्रन्थ-रचना की दृष्टि से महाभारतकार महर्षि व्यास ही सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थकार माने जाते रहे और उनका सर्वग्राहित्व बताने के लिये 'व्यासोच्छिष्ट जगत् सर्वम्' यह कहावत प्रसिद्ध हुई, किन्तु आचार्य हेमचन्द्र के विशालकाय विपुल ग्रन्थसमूह को देखकर 'हेमोच्छिष्ट तु साहित्यम्' ऐसा भी यदि कहा गया तो वह अत्युक्ति न होगी।

श्री हेमचन्द्राचार्य का वास्तविक मूल्य उनकी विविधता और सर्वदेशीयता मे है। उन्होंने व्याकरण-काव्य, न्याय, कोश, चरित, योग, साहित्य, छन्द—किसी भी विषय की उपेक्षा नही की और प्रत्येक विषय की अतिविशिष्ट सेवा की है। लोग इनके कोश देखें अथवा व्याकरण पढ़ें, योग देखें अथवा अलङ्कार देखें, उनकी प्रतिभा सार्वत्रिक है। उनका अभ्यास परिपूर्ण है। उनकी विषय की छानबीन सर्वावयवी है। ऐसे महान् पुरुष को समुचित न्याय देने के लिये सो अनेक मण्डल आजीवन अभ्यास करें तो ही कुछ परिणाम आ सकता है। आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजयजी द्वारा प्रस्तुत हेमचन्द्राचार्य-कृतियो का सख्या-निर्माण निम्नानुसार है —

सिद्धहेमलघुवृत्ति	६,००० श्लोक
सिद्धहेमबृहद्वृत्ति	१८,००० श्लोक
सिद्धहेमबृहन्न्यास	८४,००० श्लोक
सिद्धहेमप्राकृतिवृत्ति	२,२०० श्लोक
लिङ्गानुशासन	३,६८४ „
उणादिगण विवरण	३,२५० „
धातु पारायण विवरण	५,६०० „

अभिधान चिन्तामणि	१०,००० श्लोक
,, परिशिष्ट	२०४ ,,
अनेकार्थकोश	१,८२८ ,,
निघण्टुकोश	३९६ ,,
देशी नाम माला	३,५०० ,,
काव्यानुशासन	६,८०० ,,
छन्दोनुशासन	३,००० ,,
संस्कृत द्वयाश्रय	२,८२८ ,,
प्राकृत द्वयाश्रय	१,५०० ,,
प्रमाण मीमांसा (अपूर्ण)	२,५०० ,,
वेदांकुश	१,००० ,,
त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र	३२,००० ,,
परिशिष्ट पर्व	३,५०० ,,
योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति सहित	१२,७५० ,,
वीतराग स्तोत्र	१८८ ,,
अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका (काव्य)	३२ ,,
अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका (काव्य)	३२ ,,
महादेवस्तोत्र	४४ ,,

क० मा० मुन्शी ने कहा है–"इस बाल साधु ने सिद्धराज जयसिंह के युग के आन्दोलनो को हाथ मे लिया, कुमारपाल के मित्र और प्रेरक की पदवी प्राप्त करके गुजरात के साहित्य का नवयुग स्थापित किया। इन्होने जो साहित्य प्रणालिकाएँ स्थापित की, ऐतिहासिक दृष्टि का पोषण किया, एकता की भावना का विकास कर जिस गुजराती अस्मिता की नींव रखी उसके ऊपर अगाध आशा के अधिकारी एक और अवियोज्य गुजरात का मन्दिर निर्माण कर सकते हैं।"

आचार्य हेमचन्द्र का विपुल ग्रन्थ–भण्डार एक विशाल ज्ञानकोश है। विभिन्न रुचियो के पाठको के लिये विभिन्न स्तरानुकूल सामग्री उनके ग्रन्थो मे मिलती है। आचार्य हेमचन्द्र का साहित्य एक सुन्दर उपवन के समान है जिसमे तरह-तरह के प्रफुल्लित, सुविकसित वृक्ष हैं। अत उसमे विभिन्न एव विविध रसास्वाद हैं। सहृदय रसिक उनके साहित्य मे रसमाधुर्य के साथ–साथ रस-वैविध्य का भी अनुभव करते हैं।

आचार्य हेमचन्द्र एक असामान्य सङ्ग्रहवर्ता थे। उनके साहित्य मे तत्तद् विषयो के सम्बन्ध मे तदवधि तक ज्ञात प्राय सभी अन्य ग्रन्थो के उद्धरण प्राप्त होते हैं। सङ्ग्रहकर्तृत्व के सम्बन्ध मे आचार्य हेमचन्द्र सचमुच अनुपमेय हैं। इस क्षेत्र मे उनकी बराबरी करने वाला कोई अन्य साहित्यकार नही उपलब्ध होता। उनके प्रत्येक ग्रन्थ मे अन्य लेखको के उद्धरणो का विशाल सङ्ग्रह होते हुए भी उनकी मौलिकता अक्षुण्ण रहती है। व्याकरण मे तो उन्होंने अपना एक नया सम्प्रदाय ही चलाया। काव्य मे भी काव्य, शास्त्र, तथा इतिहास इन तीनो को सयुक्त कर अपनी मौलिकता एव श्रेष्ठता सिद्ध की है।

इस ग्रन्थ मे उल्लिखित ग्रन्थो के अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र ने 'सप्त-सधान महाकाव्य' (७-७ कहानियों का एक ही काव्य) 'नाभयनेमि', 'द्विसधान काव्य', 'द्रौपदी नाटक', 'हरिश्चन्द्र चम्पू', 'लघु अर्हन्नीति', इत्यादि ग्रन्थ लिखे थे, ऐसा कहा जाता है किन्तु ये ग्रन्थ अभीतक अनुपलब्ध हैं। 'सप्तसधान महाकाव्य' के होने की पुष्टि श्री भगवतशरण उपाध्याय ने अपने 'विश्वसाहित्य की रूपरेखा' मे भी की है। 'लघु अर्हन्नीति' का उल्लेख प्रो० ए० बी० कीथ ने अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे किया है। श्री सोमेश्वर भट्ट ने 'कीर्ति कौमुदी' मे आचार्य हेमचन्द्र के विषय मे निम्नाकित प्रशस्ति की है—

सदा हृदि वहेम श्री हेमसूरे सरस्वतीम्।
सुवत्या शब्दरत्नानि ताम्रपर्णी जितायया॥

कलिकाल-सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र जैसे ज्ञान के अगाध सागर का पार पाना अत्यन्त दुष्कर है। यदि जिज्ञासुओ के लिये मार्ग करने के लिये यह ग्रन्थ थोडा बहुत भी प्रेरणा देने मे समर्थ होगा तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। अन्त मे श्रद्धा के पुष्प, भले ही वे सुवासित, प्रफुल्लित न हो, अत्यन्त श्रद्धा से श्रद्धेय आचार्य जी के चरणो मे समर्पित करता हूँ।

त्वदीयं वस्तु गुरो तुभ्यमेव समर्पये।
त्व पे प्रीतोऽसि साफल्यं सर्वथाऽस्य भविष्यति॥
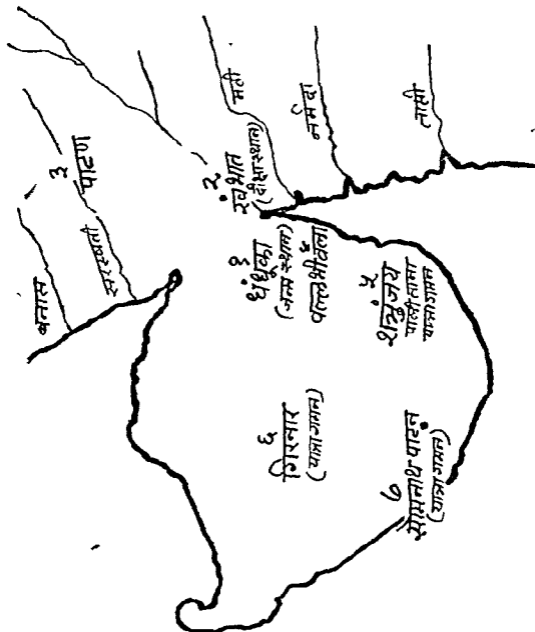
आचार्य हेमचन्द्र से सम्बन्धित विशिष्ट स्थान

श्री हेमप्रशस्तिः

सुमस्त्रिसंध्य प्रभुहेमसूरेरनन्य तुल्यामुपदेशशक्तिम्
अतीन्द्रियज्ञान विवर्जितोऽपि यः क्षोणिभर्तुर्व्यधित प्रबोधम्
सत्वानुकपा न महीभुजा स्यादित्येष क्लृप्तो वितथः प्रवादः
जिनेन्द्र धर्मं प्रतिपद्यथेन श्लाघ्यः स केषा न कुमारपालः ?

—सोमप्रभाचार्य—कुमारपाल प्रतिबोध

इत्थ श्री जिनशासनाभ्रतरणेः श्री हेमचन्द्र प्रभो
रज्ञानान्धतमः प्रवाह हरणं मांत्रा दृशा मादृशाम् ॥
विद्यापंकजिनी विकास विदित राज्ञोऽतिवृद्ध्यै स्फुरत् ।
वृत्तं विश्वविबोधनाय भवतात् दुःकर्मभेदाय च ॥

—प्रभावक्चरित्त — हेमसूरिप्रबन्ध

पूर्वं वीरजिनेश्वरे भगवति प्रख्याति धर्मं स्वयं ।
प्रज्ञा वत्यभयेऽपि मन्त्रिणि न या कर्तुं क्षम. क्षोणिकः ॥
अक्लेशेन कुमारपाल नृपतिस्तां जीवरक्षां व्यधात् ।
यस्यासाद्य वचस्सुधासु परमः श्री हेमचन्द्रो गुरुः ॥ १२४ ॥
श्री चौलुक्य ! त्व दक्षिणस्तव करः पूर्वं समासूत्रित ।
प्राणिप्राणविघात पातकसखः शुद्धो जिनेन्द्रार्चनात् ॥
वामोप्येष तथैव पातकसखः शुद्धि कथं प्राप्नुया ।
न्न स्पृश्येत करेण चेद्यतिपतेः श्री हेमचन्द्र प्रभो ॥१२५॥

—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह —

एषु श्री जयसिंह देव नृपतिस्तीर्थेषु यात्रां व्यधात् ।
सिद्धः प्रोद्धरधर्मभूधरशिरः कोटीररत्नाङ्कुरः ॥
राजर्षिस्तु कुमारपालविपुलापालः कृपालुः कलौ
श्रुत्वा सममिहोपदेशवचसा श्री हेमसूर प्रभो ॥

—पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह

काशी निवासी स्वकसतकलापदासीकृताशेषजनः प्रकाशी ।
तद्वेव बोधः कृतवादिरोधः शुश्राव नामन्यकृतावबोधम् ॥
श्री हेमचन्द्रेण समं विवादं कर्तुं समगात् समदेन तत्र ।
अहो ! सहन्ते नहि मानवन्तस्तेजः परेषामधिकं समर्षाः ॥५॥

—जिनमण्डनकृत कुमारपाल चरित पंचमसर्ग–प्रथम वर्ग

—०—

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत

ग्रन्थ	लेखक / प्रकाशन
१– अभिनवभारती	अभिनवगुप्त गा० ओ० सी० १९३६
२– अमरटीका	भानूजी दीक्षित
३– अमरकोश	अमरसिंह
४– अनेकार्थ सङ्ग्रहकोश	हेमचन्द्र – चौखंबा १९२९
५– अष्टाध्यायी	पाणिनि
६– अभिधानचिन्तामणि	हेमचन्द्र चौखम्बा
७– अलङ्कार सर्वस्व	शारदा ग्रन्थमाला, काशी
८– आप्त परीक्षा	विद्यानद–वीरसेवा मन्दिर सरसावा १९४९
९– उदयसुन्दरी कथा	सोढल, गा०ओ०सी० १९२०
१०– काव्य-मीमांसा	राजशेखर
११– काव्यानुशासन	हेमचन्द्र – महावीर जैन विद्यालय, बम्बई १९६४
१२– काव्यालङ्कार	वि०वि० प्रेस, काशी, स० १९८५
१३– काव्यालङ्कार सूत्राणि	निर्णयसागर प्रेस १९५३
१४– काव्यालङ्कारसार सङ्ग्रह	नारायण दशरथ बनहट्टी १९२५
१५– कुमारपाल प्रतिबोध	सोमप्रभसूरि मुनि जिनविजय गा०ओ०सी० १९२०
१६– कुमारपाल प्रबन्ध	जिन मण्डन उपाध्याय निर्णयसागर प्रेस १९०१
१७– कुमारपाल चरित	जयसिंहसूरि जै० आ० स० भावनगर म० १९७१
१८– कुमारपाल चरित	चरित्रसुन्दरगणि जामनगर १९१५
१९– कुमारविहारशतक	रामचन्द्रसूरि
२०– त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित	हेमचन्द्र जै० ध० प्र० स० भावनगर १९०६ तथा जॉनसन कृत अङ्ग्रेजी अनुवाद गा० ओ० सी०
२१– द्वात्रिंशिका	हेमचन्द्र
२२– न्यायसूत्र	गौतम
२३– नलविलास	गा० ओ० सी० १९२९
२४– न्यायावतार	सिद्धसेन – श्वे० जैन सभा बम्बई १९२८

२५– प्रमेयकमल मार्तण्ड — प्रभाचन्द्र – निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९४१
२६– प्रमाण मीमासा — हेमचन्द्र (सिंधी जैन ज्ञानपीठ कलकत्ता)
२७– प्रबन्ध चिन्तामणि — मेरुतुंगाचार्य सिंधी जैन ज्ञानपीठ १९४०
२८– प्रबन्धकोश — राजशेखर ,, ,, ,, १९३५
२९– पुरातन प्रबन्ध सङ्ग्रह — सम्पा० मुनि जिनविजय ,, सं० १९९२
३०– प्रभावकचरित — निर्णयसागर प्रेस तथा विद्याभवन १९४०
३१– मोहराज पराजय — यशपाल गा०ओ० सी० १९२०
३२– मुनिसुव्रत स्वामीचरित — चन्द्रसूरि
३३– महावीर चरित — हेमचन्द्र जैन आत्मा भावनगर सं० १९७३
३४– मुद्रितकुमुदचन्द्र — यशश्चन्द्र यशोजैग्र नं० ८ बनारस १९०५
३५– मुक्तिबोध — बोपदेव
३६– पतञ्जलिकालीन भारत — डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री
३७– पाणिनिकालीन भारत — डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
३८– टीका-सर्वस्व — सर्वानंद
३९– सिद्धहेम प्रशस्ति — हेमचन्द्र
४०– द्वयाश्रय काव्य — अभयतिलकगनी – ए०व्ह० कथावटे सस्कृत प्राकृत सी० पूना, १९२१
४१– विविध तीर्थकल्प — जिनप्रभसूरि
४२– वेदार्थदीपिका — षड् गुरुशिष्य
४३– सिद्ध हेमशब्दानुशासन — हेमचन्द्र य०शो०जै०ग्र० बनारस १९०५
४४– लिङ्गानुशासन — हेमचन्द्र भारतीय विद्याभवन बम्बई
४५– सरस्वती कठाभरण — भोज
४६– रघुवश कालिदास
४७– युक्त्यनुशासन — समन्तभद्र – वीर सेवा मन्दिर सरसावा १९५१
४८– वीतराग स्तोत्र — हेमचन्द्र
४९– योगसूत्र — पातञ्जलि
५०– योगसूत्र भाष्य — शकराचार्य
५१– प्रमाणमीमासा — (आर्हत मत प्रभाकर सस्था भवानीपेठ पूना)
५२– छन्दोऽनुशासन — मोतीलाल लाधाजी १९६ पूना
५३– नाट्यशास्त्र — भरतमुनि विद्याविलास प्रेस बनारस १९२९

प्राकृत तथा अपभ्रंश

१— कुमारपाल चरित	हेमचन्द्र
२— जैना शिलालेख सङ्ग्रह भाग १	डॉ० हीरालाल जैन
३— देशी नाममाला	हेमचन्द्र भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
४— सिद्धहेमचन्द्र	प्राकृत प्रक्रियावृत्ति या ढुढिका, उदय सौभाग्य गणि
५— प्राकृत व्याकरण	सम्पादक प० ल० वैद्य, पूना १९२८
६— प्राकृत पैंगल	सम्पादक श्री चन्द्रमोहन घोष–१९०२
७— प्राकृत द्वयाश्रय काव्य	ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, पूना १९३६
८— प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	अनु० हेमचन्द्र जोशी- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना १९१८
९— प्राकृत शब्दानुशासन की भूमिका	पी० एल० वैद्य शोलापुर १९५४
१०— देशी नाममाला	गुजराती सभा बम्बई स० २००३

अङ्ग्रेजी

१— एस्पेक्ट ऑफ संस्कृत लिटरेचर-एस०के०डे०

२— ब्रिटिश पेरैमाउन्ट एन्ड जीनियस इन्डीया-ग्रन्थ १,२ क० मा० मुन्शी

३— एडीशन ऑफ़ अनेकार्थ सङ्ग्रह — थ टचरइ

४— गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर-के०-एम० मुन्शी भारतीय विद्याभवन बम्बई १९३३

५— हिस्ट्री ऑफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर कृष्णमाचारियर

६— हिस्ट्री ऑफ इन्डियन लिटरेचर—विंटरनित्ज ग्रन्थ १,२,३

७— हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोएटिक्स	पी० वी० काने
८— " " " "	एस० के० डे०
९— हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर	एस० एन० दास गुप्ता तथा डे०
१०— हिस्ट्री ऑफ इन्डियन साहित्य	डॉ० सतीशचन्द्र
११— इन्ट्रोडक्शन टू देशी नाममाला	प्रो० बेनर्जी
१२— जैनीज्म इन गुजरात	सी० बी० सेठ बम्बई १९५३
१३— लाइफ ऑफ हेमचन्द्र	डॉ० ब्यूलर सिंघी जैन सिरीज १९३६
१४— काव्यानुशासन	रसिकलाल पारीख
१५— प्रबन्ध चिन्तामणि	टॉनी

१६– रसमाला डॉ० फार्ब्स
१७– सिस्टीम्स ऑफ संस्कृत ग्रामर डॉ० वेलवेलकर
१८– स्याद्वाद मंजरी डॉ० ध्रुव
१६– स्थविरावलिचरित डॉ० जेकोबी–कलकत्ता १८६१, १६३२
२०– त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित ग्रन्थ हेलन जान्सन गा० ओ० सी० १६३१

हिन्दी

१– अपभ्रंश साहित्य प्रो० हरिवंश कोछड़–भारतीय साहित्य मन्दिर दिल्ली १६३५
२– अभिधान चिन्तामणि हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा ६४
३– अपभ्रंश भाषा और साहित्य डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन–भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी १६६५
४– अपभ्रंश भाषा का अध्ययन विरेन्द्र श्रीवास्तव
५– आचार्य हेमचन्द्र का अपभ्रंश व्याकरण—प० शालिग्राम उपाध्याय भारतीय विद्याप्रकाशन वाराणसी १६६५
६– आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-डॉ नेमिचन्द शास्त्री,चौखम्बा६३
७– आचार्य विजयवल्लभसूरि का स्मारक ग्रन्थ
८– आप्तमीमांसा–समन्तभद्र अनंतकीर्ति ग्रंथ भ० ४ बम्बई
६– काव्यप्रकाश टीका आचार्य विश्वेश्वर
१०– काव्यमीमांसा राजशेखर प० केदारनाथ शर्मा सारस्वत पटना १६५४
११– काव्यादर्श–दण्डी ब्रजरत्नदास–काशी
१२– जैन दर्शन न्याय विजय, पाटन गुजरात १६५२ हिन्दी १६५६
१३– जैन इतिहास भाग १ हीरालाल हुमराज
१४– जैन भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि डॉ० प्रेमसागर जैन
१५– तत्वार्थसूत्र–उमास्वाति प० सुखलाल भारत जैन महामंडल वर्धा १६५२
१६– दर्शन संग्रह डॉ० दीवानचन्द्र
१७– धर्म और दर्शन बलदेव उपाध्याय– शारदा मन्दिर, बनारस १६४८
१८– प्राचीन भारत का इतिहास डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

१९– पुरातत्व चतुर्थ पुस्तक — वि० वि० मिराशी
२०– प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका — डॉ० रामजी उपाध्याय
२१– पञ्च तन्त्र — सम्पा० डा० प्रभुदयालु अग्निहोत्री
२२– प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० नेमिचन्द्र शास्त्री तारा पब्लिकेशन वाराणसी १९६६
२३– प्राकृत प्रकाश — मथुरा प्रसाद दीक्षित–चौखम्बा १९४९
२४– प्राकृत भाषाओं का रूप-दर्शन — आचार्य नरेन्द्रनाथ – रामा प्रकाशन लखनऊ १९६३
२५– पुरानी हिन्दी — चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, नागरीप्रचारिणी सभा काशी स० २००५
२६– प्राकृत भाषाओं का व्याकरण — अनु० डॉ० हेमचन्द्र जोशी
२७– प्राकृत साहित्य का इतिहास — जगदीशचन्द्र जैन चौखम्बा वाराणसी १९६१
२८– बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन भाग १, २, — भरतसिंह उपाध्याय
२९– भारतीय दर्शन — दत्त तथा चटर्जी
३०– भारतीय वास्तुशास्त्र — डी० एन० शुक्ल
३१– भारतीय दर्शन — बलदेव उपाध्याय– शारदा मन्दिर बनारस, १९४८
३२– भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान — डॉ० हीरालाल जैन म० प्र० शासन १९६२
३३– लिङ्गानुशासन, शेषनाममाला, निघण्टुशेष — हीराचन्द कस्तूरचन्द जवेरी गोपीपुरा सूरत
३४– विश्वसाहित्य की रूपरेखा — भगवतशरण उपाध्याय
३५– व्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग १, २ — युधिष्ठिर मीमांसक
३६– शक्ति अङ्क कल्याण — गोरखपुर
३७– संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — नाथूराम व्यास एवं चन्द्रशेखर पाण्डे
३८– संस्कृत साहित्य का इतिहास — ए० बी० कीथ अनु० मंगलदेव शास्त्री
३९– संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय

४०– संस्कृत साहित्य का आलोच- रामजी उपाध्याय
नात्मक इतिहास
४१– सं० सा० का नवीन इतिहास कृष्णचैतन्य अनु० विनयकुमार राय
४२– स० साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला
४३– सं० साहित्य का इतिहास वरदाचारी
४४– स० साहित्य का इतिहास एस० एन० दास गुप्त, एस० के० डे०
४५– सं० काव्य शास्त्र का इतिहास पी० व्ही० काणे अनु० डॉ० इन्द्रचन्द्र
४६– साहित्यदर्पण–विश्वनाथ अनु० शालिग्राम शास्त्री वि०सवत् १९९१
४७– हेमचन्द्राचार्य ईश्वरलाल जैन–आदर्श ग्रन्थमाला, मुलतान
४८– हिन्दी सर्वदर्शन सङ्ग्रह प्रो० उमाशंकर शर्मा
४९– हेमचन्द्र मूल बूल्हर हिन्दी अनु०मणिलाल पटेल चौखम्बा बनारस

मराठी

१– छन्दोरचना डॉ० माधव ज्यूलियन
२– रसविमर्श डॉ० के० ना० वाटवे
३– वैदिक सस्कृतीचा विकास तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी
४– संस्कृत काव्याचे पञ्चप्राण प्रो० वाटवे–पूना
५– भाषा विज्ञान प्रो० गुणे

गुजराती

१– जैन साहित्यनो स क्षिप्त इतिहास मो० द० देसाई १९३३
२– जैन साहित्य का सक्षिप्त इति० मोहनलाल दलीचन्द देसाई
३– योगशास्त्र जै०ध० प्र०स० भावनगर १९२६
४– जैन श्वेताम्बरीय जैनग्रन्थ गाइड–जैन आत्मानन्द सभा–भावनगर
५– आचार्य विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ
६– त्रिपष्ठिशलाकापुरुषचरित जैनधर्म प्रसारक सभा–भावनगर
७– शक्तिसम्प्रदाय फार्ब्स गुजराती सभा
८– हेमसमीक्षा श्री,मधुसूदन मोदी

बंगाली

१– व्याकरण दर्शनेर इतिहास गुरूपद हालदार

पत्र-पत्रिकाएं

१— साहित्य संशोधक त्रैमासिक खण्ड १ अङ्क ३—पूना
२— नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६
३— जर्नल ऑफ दी रॉयल अेशियाटिक सोसायटी बॉम्बे १९३५
४— इण्डियन एन्टीक्वेरी अक्टूबर १९१४ व्हाल्यूम ३७
५— पुरातत्व—पुस्तक चतुर्थ—गुजराती
६— वुद्धिप्रकाश मार्च १९३५ गुजराती
७— अनेकान्त मासिक अप्रेल १९६७, अगस्त १९६४ वीर सेवा मन्दिर २१ दरियागज, देहली ६

—o—

४०– संस्कृत साहित्य का आलोच- रामजी उपाध्याय
नात्मक इतिहास
४१– सं० सा० का नवीन इतिहास कृष्णचैतन्य अनु० विनयकुमार राय
४२– सं० साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला
४३– सं० साहित्य का इतिहास वरदाचारी
४४– सं० साहित्य का इतिहास एस० एन० दास गुप्त, एस० के० डे०
४५– सं० काव्य शास्त्र का इतिहास पी० व्ही० काणे अनु० डॉ० इन्द्रचन्द्र
४६– साहित्यदर्पण–विश्वनाथ अनु० शालिग्राम शास्त्री वि०संवत् १९९१
४७– हेमचन्द्राचार्य ईश्वरलाल जैन–आदर्श ग्रन्थमाला, मुलतान
४८– हिन्दी सर्वदर्शन सङ्ग्रह प्रो० उमाशंकर शर्मा
४९– हेमचन्द्र मूल बूल्हर हिन्दी अनु०मणिलाल पटेल चौखम्बा बनारस

मराठी

१– छन्दोरचना डॉ० माधव ज्यूलियन
२– रसविमर्श डॉ० के० ना० वाटवे
३– वैदिक संस्कृतीचा विकास तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी
४– संस्कृत काव्याचे पञ्चप्राण प्रो० वाटवे–पूना
५– भाषा विज्ञान प्रो० गुणे

गुजराती

१– जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास मो० द० देसाई १९३३
२– जैन साहित्य का संक्षिप्त इति० मोहनलाल दलीचन्द देसाई
३– योगशास्त्र जैं०ध० प्र०स० भावनगर १९२६
४– जैन श्वेताम्बरीय जैनग्रन्थ गाइड–जैन आत्मानन्द सभा–भावनगर
५– आचार्य विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ
६– त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित जैनधर्म प्रसारक सभा–भावनगर
७– शक्तिसम्प्रदाय फार्ब्स गुजराती सभा
८– हेमसमीक्षा श्री.मधुसूदन मोदी

बंगाली

१– व्याकरण दर्शनेर इतिहास गुरुपद हालदार